



इतिहास  
की धरोहर  
एवं  
कर्म-प्रश्नोत्तरी

साध्वी प्रगुणाश्रीजी म.  
साध्वी प्रियधर्माश्रीजी म.

श्री वीतरागाय नमः

श्री आत्म-वल्लभ-समुद्र-इन्द्रदिङ्ग-नित्यानन्द सद्गुरुभ्यो नमः

# इतिहास की धरोहर एवं कर्म-प्रश्नोत्तरी

\* लेखिका एवं सम्पादिका \*

शासन-प्रभाविका पंजाबी साध्वी श्री जसवन्तश्रीजी म. की  
मातृहृदया, विदुषी शिष्या साध्वी श्री प्रगुणाश्रीजी म.  
मृदुभाषी शिविर संचालिका, साध्वी श्री प्रियधर्माश्रीजी म.



\* सहयोगिका \*

साध्वीश्री प्रियरत्नाश्रीजी म.  
साध्वीश्री प्रियसुधाश्रीजी म.

\* आशीर्वाददाता \*

परम पूज्य शासन दिवाकर, कल्याणक तीर्थोद्धारक, गच्छाधिपति आचार्य,

**श्रीमद्विजय नित्यानन्दसूरीश्वरजी म.**

सत्त 46 वर्षीतप के आराधक, तपस्वी-सम्राट, तपसूर्य, तप-चक्रवर्ती,  
परम पूज्य आचार्य,

**श्रीमद्विजय वसन्तसूरीश्वरजी म.**

\* दिव्याशीषप्रदाता \*

शासन-प्रभाविका, सरल-स्वभावी, बाल-ब्रह्मचारी, पंजाबी साध्वी

**श्री जसवन्तश्रीजी महाराज**

प्रथम आवृत्ति	-	1100
संस्करण	-	प्रथम सन् 2014
मूल्य	-	125/- रूपये

\* प्राप्ति स्थल \*

**श्री सुनीलकुमार जैन**

9/5949, गली नं. 12, रघुवरपुरा नं. 12, गाँधीनगर, दिल्ली-110 031  
मो. 93500-40927

**श्री शान्तिलाल योगेशकुमार जैन**

4019/2, पटेल रोड, अम्बाला शहर (हरियाणा)  
मो. 94160-27073

\* मुद्रक \*

**कुलदीप प्रियदर्शी द्वारा पारदर्शी कम्प्यूटर्स**

261, ताम्बावती मार्ग, आयड़, उदयपुर-313 001

चलमाष- 9413763991, 9413423929, 0294-2411029

e-mail- kuldeep.priyadarshi@yahoo.com



# जिनशासन के अणुगार

# वन्दन हो बायम्बार



प. पू. कलिकाल-कल्पतरु,  
युगवीर पंजाब केसरी, आचार्यदेव  
श्रीमद् बल्लभसूरीश्वरजी म. सा.



परमारक्षत्रियोद्धारक, चारित्र-चूडामणि  
श्रीमद् विजय इन्द्रदिनसूरीश्वरजी  
म. सा.



प. पू. राष्ट्रसन्त  
शान्तमूर्ति, समतायोगी,  
श्रीमद् विजय समुद्रसूरीश्वरजी म. सा.



प. पू. पंजाब देशोद्धारक, आचार्यप्रवर  
श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजी  
म. सा.



प. पू. तपचक्रवर्ती, तपस्वी-सम्राट,  
वचनसिद्ध, योगीराज,  
श्रीमद् विजय वसन्तसूरीश्वरजी म. सा.



प. पू. गच्छाधिपति, शान्तिदूत  
श्रीमद् विजय नित्यानन्दसूरीश्वरजी  
म. सा.



सौ  
ज  
न्य

श्री रतनचन्द, राजेन्द्रकुमार, राजेशकुमार जैन  
राजा कलेक्शन, लुधियाना (पंजाब)





विदुषी साध्वी  
श्री प्रगुणाश्रीजी  
म. सा.



मृदुभाषी साध्वी  
श्री प्रियधर्माश्रीजी  
म. सा.



शासन-प्रभाविका, पंजाबी साध्वी  
श्री जसवन्तश्रीजी म. सा.



साध्वी  
श्री प्रियरत्नाश्रीजी म. सा.



साध्वी  
श्री प्रियसुधाश्रीजी म. सा.

## प्रस्तावना

जैन धर्म का इतिहास आकाश के समान विशाल, पृथ्वी के समान विस्तृत तथा सागर समान गम्भीर है। लेकिन इनकी जानकारी परमात्मवाणी से होती है। परमात्मवाणी में अनुरक्त और जिनवाणी को हृदय में धारण करने वाली भव्यात्माएँ तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करके परित्त संसारी बन जाती हैं। इसी जिनवाणी का आधार लेकर अनन्त आत्माएँ संसार-सागर से तर चुकी है, वर्तमान में संख्याबद्ध जीव तर रहे हैं और भविष्य में भी अनन्त जीव तरेंगे। आत्मा का ज्ञान जिनवाणी के श्रवण से और पठन से होता है।

ज्ञानियों का कथन है कि महापुण्योदय से मनुष्य का भव मिलता है उसमें भी उत्कृष्ट पुण्योदय हो तो आर्य क्षेत्र और जैन धर्म की प्राप्ति होती है। सर्वोत्कृष्ट पुण्य की प्रबलता हो तो वीतराग देवाधिदेव द्वारा प्ररूपित धर्म का श्रवण तथा पंच महाव्रतधारी गुरुओं का समागम मिलता है। गुरुओं के समागम तथा उनके मुख से जिनवाणी का श्रवण करने से जीवन में परिवर्तन आता है। परन्तु मात्र श्रवण करने से प्रत्येक वचन स्मृति-पथ पर नहीं रहता है। कई श्रोता प्रतिदिन प्रवचन श्रवण करते हैं परन्तु प्रवचन हॉल से बाहर निकलते ही सुनी हुई सभी बातें हवा की तरह आकाश में बिखर जाती है। यदि उसी जिनवाणी को संकलित तथा सुनियोजित रूप से गुंथित किया जाए और ग्रन्थ तथा पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाए तो उससे अत्यधिक लोग लाभान्वित हो सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का लेखन 'स्वान्तः सुखाय, बहुजन हिताय' की भावना से किया है।

वर्तमान युग में टी.वी. विडियो, केबल, सीरियल, फिल्मों में दिखाए जाने वाले विभत्स दृश्य और मौज-शोक के साधनों ने मानव के सुसंस्कारों पर कुठाराघात किया है। सद्गुण और संस्कार-ऑक्सीजन पर जी रहे हैं। आज मानव-मानव न रह कर दानवता की नींव पर खड़ा है जो वीरता और अहिंसा, संयम और सत्य का आग्रही था वह परिग्रही और विलासी बन गया है। जो श्रमजीवि तथा बन्धुत्वजीवि था वह आलसी और झगड़ाखोर बन गया है। अर्थ और काम में संलग्न मानव अपने धर्म तथा

कर्तव्य को भूल गया है। जीवन का संध्याकाल शान्त सरोवर में क्रीड़ा करने वाले हंस के समान बिताना चाहिए परन्तु आज मानव अशान्ति में सिक रहा है। अशान्त मन को शान्ति देने वाला, भूले-भटकों को सन्मार्ग दिखाने वाला स्वाध्याय है।

स्वाध्याय संजीवनी बूटी है। स्वाध्याय से मनुष्य की सुषुप्त अन्तरात्मा में विवेक जागृत होता है। जिससे मनुष्य मन के कलुषित विचारों, विकारों और दुर्भावों का नाश करके परम आनन्दमय आत्म स्वरूप का दर्शन कर लेता है। परम शान्ति, आनन्द तथा ज्ञान के इच्छुक मानव के लिए सत्साहित्य का स्वाध्याय कल्पवृक्ष के तुल्य है। अतः स्वाध्याय आत्मकल्याण में अति उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तक में इतिहास के कुछ पृष्ठों को तथा उनके तत्त्वों का दिग्दर्शन कराया गया है। मुख्य रूप से श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की गौरवगाथा का वर्णन करके उनके उद्धारों का शत्रुञ्जय माहात्म्य पुस्तक के आधार पर संक्षिप्त वर्णन किया है। श्री गिरनार तीर्थ पर नेमीनाथ परमात्मा की प्रतिमा का इतिहास भी प्रस्तुत किया है। तपागच्छ के अधिष्ठायाकदेव श्री मणिभद्रवीरजी का विस्तृत जीवन चरित्र देकर उनके प्रभाव का वर्णन किया है। इसी के साथ 20 तीर्थकरों की निर्वाण भूमि श्री सम्मत्तशिखरजी तीर्थ के अधिष्ठायाकदेव श्री भोमियाजी का आद्योपान्त जीवन चरित्र भी इसी पुस्तक में दिया है। इसके अतिरिक्त संक्षेप से अन्य भी प्रेरणा प्रसंग दिए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में शत्रुञ्जय उद्धार लिखने के लिए पू. श्री हेमरत्नसूरिजी म., पू. श्री रत्नसेनसूरिजी म. द्वारा लिखित पुस्तक का आधार लिया है। श्री मणिभद्रवीरजी का जीवन चरित्र पू. श्री महाबोधिविजयजी म. द्वारा लिखित गुजराती पुस्तक 'जय माणिभद्र' तथा श्री भोमियाजी का जीवन पू. श्री जिनोत्तमसूरिजी म. द्वारा लिखित पुस्तक के आधार पर लिखा है।

गुजराती भाषा में जैन इतिहास का साहित्य बहुत प्रकाशित है। परन्तु हिन्दी भाषा में बहुत कम मिलता है। हिन्दी भाषी लोग प्रस्तुत पुस्तक को पढ़कर लाभान्वित हो इसी लक्ष्य को लेकर यह पुस्तक लिखी है।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में जैन धर्म विषयक कर्म सिद्धान्त सम्बन्धी लगभग 200

प्रश्नोत्तरी दी है। जिसमें आठों कर्मों का तथा आठ करण का सरल हिन्दी भाषा में वर्णन किया है। इस प्रश्नोत्तरी को लिखने में प्रवचन प्रभाविका, शिविर संचालिका, मृदुभाषी, साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. ने अत्यधिक परिश्रम किया है तथा इस पुस्तक को व्यवस्थित करने का काम भी सा. प्रियधर्माश्रीजी ने किया है। सा. श्री प्रियरत्नाश्रीजी, सा. श्री प्रियसुधाश्रीजी म. ने प्रुफ देखने में खूब परिश्रम किया है।

कोई भी कार्य व्यक्ति अपनी शक्ति से नहीं करता है। उसके पीछे गुरुजनों का आशीर्वाद होता है। हमारी परम उपकारी, संसार-सागर से तारने वाली, वीर दाणी का अमृतपान कराकर प्रकृति का परिवर्तन कराने वाली, ज्ञान दान द्वारा आध्यात्मिक का पान कराने वाली, अणु-अणु में व्यापक, शासन प्रभाविका गुरुवर्या, गुरुमाता पू. श्री जसवन्तश्रीजी म. की अदृश्य परमकृपा से ही इस पुस्तक को प्रारम्भ किया और पूर्ण किया। हमारे में कहाँ शक्ति है कि हम कुछ लिख सके। आज हम जो कुछ भी हैं पू. गुरुणीजी म. के आशीर्वाद के कारण ही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक को छपाने में अनेक महानुभावों ने अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग किया है। श्रुत सेवा का लाभ भी पुण्योदय से ही प्राप्त होता है। ज्ञान भक्ति के रागी, सुकृत में सहयोगी व्यक्तियों की नामावली भी पुस्तक में दी गई है।

पाठकों से अनुरोध है कि पुस्तक को शान्त चित्त से और एकान्त शान्त स्थान पर बैठ कर पढ़ने का प्रयास करें। जैसे बरसात धीमें-धीमें बरसे तो पानी धरती और मिट्टी के भीतर समा जाता है उसी प्रकार पुस्तक का वांचन धीमी गति से तथा विचारपूर्वक किया जाए तो भाव आत्मा को स्पर्श कर जाते हैं। हृदय-स्पर्शी वांचन ही हितकारी होता है।

इस पुस्तक में यदि कोई त्रुटि हो गई हो तो पाठक हंसचंचु की भाँति पढ़ें। जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ लिखा हो तो मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

शासन प्रभाविका पंजाबी सा.  
श्री जसवन्तश्रीजी म. की सुशिष्या  
- सा. प्रगुणाश्री



## पूज्या साध्वीद्रय का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

चरम तीर्थपति शासननायक तीर्थकर श्री महावीरस्वामीजी के इस जिनशासन रूपी गगन में अनेकानेक साधु-साध्वीजी भगवन्त देदीप्यमान नक्षत्र हुए हैं, जिन्होंने सदा ही अपने आचार, विचार एवं ज्ञान रूपी प्रकाश से इस धरा को आलोकित किया है।

विश्व के अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों में जहाँ एक ओर नारी को विकृति का केन्द्र माना है, वहीं दूसरी ओर जैन धर्म में नारी को मोक्ष का अधिकारी मानकर उसे समाज में शोचनीय से आदरणीय दृष्टि प्रदान की है।

जिनशासन में अनेक शासन-प्रभाविकाएँ साध्वीजी हुई हैं। उसी परम्परा में आज भी उसी पथ पर चलकर समाज को दिशा देने वाली साध्वीजी भगवन्तों में विशेष नाम आता है- शान्तिदूत, वर्तमान गच्छाधिपति आचार्यदेवेश श्री नित्यानन्द-सूरीश्वरजी म. सा. की सुशिष्याएँ-

- \* मातृहृदया, विदुषी साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म. सा.
- \* मृदुभाषी, श्रुतानुरागिनी साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा.
- \* प्रसन्न-वदना साध्वीश्री प्रियरत्नाश्रीजी म. सा.
- \* सेवाभाविनी, तपस्वी साध्वीश्री प्रियसुधाश्रीजी म. सा.

साधु-साध्वीजी का जीवन उस पुस्तक की तरह है जिसका प्रत्येक पृष्ठ नई शिक्षा प्रदान करता है। आगम-ग्रन्थों में चार प्रकार के योग बताएँ गए हैं, जिनका समाराधन कर व्यक्ति आत्मकल्याण एवं समाजोद्धार को एक नई दिशा प्रदान करने में सक्षम होता है। ज्ञान-योग, भक्ति-योग, तप-योग एवं कर्म-योग की गंगा में जो निःस्वार्थ भाव से आराधना करता है, वह निश्चित ही पुण्यानुबन्धी पुण्य उपार्जित

कर जीवन को सफलता की राह पर ले आता है। दीक्षा के 50वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म. सा. एवं संयम-पर्याय के 40वें वर्ष में आराधन करती साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा. का जीवन भी सुदेव-सुगुरु-सुधर्म को समर्पित रहा है। चारों योगों का सम्यक् आराधन करते हुए पूज्या साध्वीजी जिनशासन प्रभावना के अनेकविध अनुमोदनीय-अनुकरणीय कार्य कर रही हैं।

## ज्ञानयोग की गम्भीरता-

जिनशासन में सम्यग्ज्ञान की बहुत महत्ता है। मात्र पढ़ना अथवा रटना ज्ञान नहीं है, अपितु सम्यक् स्वाध्याय कर उन्हें आत्मा में उतारना ज्ञान है। आचारांग-सूत्र में कहा गया है- 'आगम चक्यु साहु' अर्थात् साधु-साध्वीजी का प्राण प्रभु वीर की वाणी यानि आगम शास्त्र है, ज्ञान है।

साध्वीश्री जसवन्तश्रीजी म. सा. एवं उनकी सुशिष्या परिवार ने सदैव ही स्वाध्याय के प्रकाश से अपने संयम जीवन को आलोकित किया है। आचार्यश्री विजयसमुद्रसूरीश्वरजी म. सा. के अमृत आशीर्वाद से अहमदाबाद में साध्वी परिवार ने तीन वर्ष रहकर सतत् ज्ञानार्जन किया। तभी से विदुषी साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म. सा., श्रुतरागिनी साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा. आदि के अन्तर्मानस में ज्ञान के प्रति विशेष रुचि है। साध्वीवृन्द ने जैन आगमों का, षट्-दर्शनों का गूढ़ अध्ययन किया है। आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी, आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी, महोपाध्यायश्री यशोविजयजी आदि अनेकानेक मनीषियों द्वारा लिखित ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन साध्वीजी म. सा. ने किया है। अपने अहर्निश परिश्रम, बौद्धिक कुशलता एवं सुगुरु-योग से ही साध्वीजी ज्ञानयोग की अक्षुण्ण साधना में लीन रहती है, जिसके कारण सरस्वती माता की विशेष कृपा प्राप्त है।

ज्ञान को जनोपयोगी बनाने हेतु साध्वीजी म. सा. ने अपने अविरत श्रुतज्ञान से विविध विषयों पर कलम चलाकर सामान्य जन को लाभ हो, इसी उद्देश्य से ज्ञान के प्रचार में रत रहती हैं। विशेष रूप से साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी एवं साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी द्वारा लिखित-संग्रहित-सम्पादित पुस्तकों ने सैंकड़ों घरों में सम्यग्ज्ञान

के प्रकाश को फैलाने का अनुमोदनीय कार्य किया है। इन प्रकाशनों में निम्नलिखित अति-महत्त्वपूर्ण, अति-उपयोगी सिद्ध हुई है-

1. प्रवचन-सरिता
2. प्रवचन-सुधा
3. प्रवचन-ज्योति
4. जसवन्त ज्योति
5. जीवन दीप जलाएँ
6. प्रवचन-पुंज
7. आनन्द जसवन्त ज्ञान मंजरी
8. जीवन जागृति एवं जैन प्रश्नोत्तरी
9. तीर्थ-दर्शन अनानुपूर्वी
10. सचित्र देववन्दन माला
11. चौबीस जिन चैत्यवन्दन
12. चलो आराधना करें
13. तिथि आराधना विधि
14. पर्वाराधन कीजिए
15. जीना सीखें जिनवाणी से
16. ज्ञान-गर्भित जैन प्रश्नोत्तरी
17. जरा याद करो कुर्बानी एवं जैन प्रश्नोत्तरी
18. सिद्धचक्र स्तोत्र एवं पुष्पावती-मंगलसिंह चरित्र
19. जीवन निर्माण एवं चन्द्रराजा चरित्र
20. भरहेसर सज्जाय की विरल विभूतियाँ
21. भरहेसर सज्जाय की महनीय महासतियाँ
22. जीवन बनेगा उज्ज्वल
23. श्रुतसागर की लहरें।

साधु-साध्वीजी नदी की निर्मल धारा के समान जहाँ भी गतिशील होते हैं, वहीं पर सम्यग्ज्ञान की सुवास छोड़ जाते हैं। साध्वीजी म. सा. भी ज्ञान प्रचार के उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर जिस क्षेत्र में भी चातुर्मास करती हैं, वहाँ विशेष रूप से धार्मिक शिविरों का आयोजन अवश्य करती हैं। महिलाओं में धर्म-जागृति एवं बालक-



बालिकाओं में चरित्र निर्माण के उद्देश्य से साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म. सा. की निश्रा में 'श्री आत्म-वल्लभ जैनदर्शन-शिक्षण शिविर' का आयोजन होता है जिसमें शिविर संचालिका साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा. जैन धर्म के इतिहास, सामान्य तत्त्व-ज्ञान, जैन भूगोल, कर्म-विज्ञान इत्यादि विषयों को सुगमता से समझाती हैं। इन शिविरों के माध्यम से अनेक बालक जिनधर्म से जुड़े हैं, अनेक महिलाएँ जिन-वचनों से जुड़ी हैं, जो इन शिविरों की सफलता का द्योतक है।

साध्वीजी महाराज ने जहाँ जैन-दर्शन के शिविरों का आयोजन करके महिलाओं में संस्कार डालने का सुन्दरतम कार्य किया, वहाँ बच्चों में धर्म के संस्कार डालने के लिए धार्मिक पाठशालाओं की भी स्थापना करवाई। जैसे-

श्री आत्म-वल्लभ जैन पाठशाला, शाहदरा, दिल्ली

श्री आत्म-वल्लभ जैन पाठशाला, रूपनगर, दिल्ली

श्री आत्म-वल्लभ जैन पाठशाला, पट्टी (पंजाब)

श्री आत्म-वल्लभ जैन पाठशाला, नवपद सोसायटी, बड़ौदा (गुजरात)

पू. साध्वीजी महाराज के ज्ञानयोग की गम्भीरता की भूरि-भूरि अनुमोदना।

## भक्तियोग की भव्यता-

सरल स्वभावी साध्वीश्री जसवन्तश्रीजी म. सा. एवं उनकी सुशिष्याएँ साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी, साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी आदि सदा से जिनेश्वर परमात्मा के प्रति अनुरक्त रही हैं। मोक्षदायक ऐसी प्रभु से प्रीति होती है। स्तोत्रों, स्तवनों आदि साधनों से इष्ट जिनेश्वरदेव की साधना-भक्ति साध्वीजी करती ही हैं। तथापि श्रावक-श्राविका वर्ग को जिन-जिनप्रतिमा-जिनमन्दिर से जोड़कर शासन की उत्कृष्ट धर्म-प्रभावना कर रही हैं। निवर्तमान गच्छाधिपति आचार्यश्री इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म. सा. एवं वर्तमान गच्छाधिपति आचार्यश्री नित्यानन्दसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए समय-समय पर शासन-सेवा का प्रमाण देते हुए परमात्म-भक्ति निमित्ते जिनमन्दिर

निर्माण, जिनालय जीर्णोद्धार, जिनेश्वर रथ निर्माण, तीर्थ-पट्ट निर्माण आदि की सुन्दरतम प्रेरणा संघ-समाजों को दी है। यथा-

- \* **आगरा-** आचार्यश्री इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञा को शिरोधार्य करते साध्वीश्री जसवन्तश्रीजी म., साध्वीश्री प्रियदर्शनाश्रीजी म., साध्वीश्री प्रगुणा-श्रीजी म. आदि ने बालूगंज, आगरा में जिनमन्दिर निर्माण की प्रेरणा दी तथा सम्पूर्ण मन्दिर तैयार करवाया। आचार्यश्रीजी के हस्त-कमलों से धूमधाम से उसकी प्रतिष्ठा हुई।
- \* **हस्तिनापुर तीर्थ की तलहटी मेरठ जैन नगर-** शासन शिरोमणी आचार्यश्री इन्द्रदिन्नसूरिजी म. की आज्ञा से मेरठ जैन नगर में श्री शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर तथा साध्वी जसवन्तश्री जैन उपाश्रय का नव निर्माण करवाया।
- \* **पंजाब के पट्टी शहर-** में चातुर्मास में प्रेरणा देकर 120 वर्ष प्राचीन श्री आत्मानन्द जैन उपाश्रय का भूमितल से लेकर सम्पूर्ण जीर्णोद्धार करवाया तथा माता पद्मावतीजी का एवं गुरुदेवों का नूतन मन्दिर बनवाया।
- \* **बड़ौत यू. पी.-** में श्री विमलनाथ भगवान की भव्य प्रतिमा बनवाई।
- \* **पावागढ़ तीर्थ-** में माता पद्मावतीदेवी की प्रतिमा तथा पालीताणा कमल विहार मन्दिर में माता पद्मावतीदेवी की प्रतिमा बनवाई।
- \* **जंडियाला गुरु-** के जैन स्कूल में पंजाब केसरी, आचार्यश्री विजयवल्लभ-सूरिजी म. सा. की प्रतिमा बनवाई। श्री आदीनाथ भगवान के मन्दिर की मुख्य चौखट तथा देवी-देवता के गोखले बनवाए।
- \* **अहमदाबाद साबरमती मोटेरा संघ-** में श्री आत्म-वल्लभ आयम्बिल भवन का नव निर्माण करवाया तथा आराधना भवन में श्री आत्म-वल्लभ विभाग बनवाया।

- \* **दिल्ली रूपनगर**- के चातुर्मास में श्रीसंघ को प्रेरणा देकर चाँदी का रथ बनवाया ।
- \* **दिल्ली रोहिणी**- के चातुर्मास में श्री वासुपूज्य भगवान के पीछे सोने-चाँदी की पछेड़ी बनवाई तथा श्री आत्म-वल्लभ जैन भवन बनवाया ।
- \* **मेवाड़ के उदयपुर शहर**- व थोब की वाड़ी में ऐतिहासिक चातुर्मास करके श्री जिनमन्दिर के 5 भव्य भण्डार बनवाए ।
- \* **अम्बाला शहर**- के हाई स्कूल में पू. श्री आत्मारामजी म. की देहरी का जीर्णोद्धार कराया तथा श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर में श्री गौड़ी पार्श्वनाथ भगवान के परिसर का जीर्णोद्धार करवाया ।
- \* **यमुना नगर**- में श्री आत्म-वल्लभ जैन उपाश्रय का नव निर्माण करवाया ।
- \* **हस्तिनापुर निसहीजी में, अम्बाला जैन मन्दिर में, कांगड़ा तीर्थ मन्दिरजी में, पालीताणा पंजाबी धर्मशाला में तीर्थों के सुन्दर चित्रपट्ट बनवाए ।**

इस प्रकार जिस संघ और समाज में जो न्यूनता लगती थी उसे साध्वीजी म. ने प्रेरणा देकर पूर्ण करने का प्रयास किया और कर रही हैं ।

संघ और समाज के कार्यों के साथ-साथ इनका तपोमय जीवन भी अनुमोदनीय है । इन्होंने अपने संयममय जीवन की विशुद्ध साधना के साथ-साथ कर्म निर्जरा का मुख्य साधन तपधर्म को भी जीवन का अंग बनाया । इन्होंने अट्टाई, वर्षीतप, 500 आयम्बिल तप, वीसस्थानक तप, नवपद ओलियों की आराधना, वर्धमान तप की अनेक ओलियाँ तथा पर्व तिथियों की आराधना की है ।

इस प्रकार साध्वीजी महाराजजी की पावन प्रेरणा एवं अनुपम आशीर्वाद से प्रभु-भक्ति व प्रभु-समर्पण के अनेकानेक कार्य सम्पन्न होते रहे हैं । भक्ति की पराकाष्ठा से ही उत्कृष्ट शक्ति मिलती है जो शासन प्रभावना करने में सहायक बनती है । साध्वीजी



स्वयं तो प्रभु-भक्ति व गुरु-भक्ति में लीन रहती हैं, बल्कि अन्यो को भी प्रभु-भक्ति से जुड़ने हेतु प्रतिबोधित करती रहती हैं। प्रभु-भक्ति, गुरु-भक्ति से साध्वीजी के संयम जीवन को सदा ही सही दिशा मिलती है, ऐसा उनका स्वयं का अनुभव है।

साध्वीजी महाराज के भक्तियोग की भव्यता की भूरि-भूरि अनुमोदना !

\* **प्रवचन कौशल**- आचार्यश्री विजय वल्लभसूरीश्वरजी म. सा. ने साध्वी संघ के उत्थान हेतु उन्हें प्रवचन करने की आज्ञा प्रदान की थी। साध्वी समुदाय ने भी सदा उनके विश्वास को बनाए रखा एवं उनके आज्ञानुरूप संघ संचालन में कार्य किए। साध्वीजी के विलक्षण, तेजस्वी एवं मेधावी रूप से सम्पूर्ण समाज आलोकित हुआ है। प्रवचन-प्रभाविका साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी एवं प्रवचन-दक्षा साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी के सारगर्भित प्रवचनों से अनेकों श्रावक-श्राविकाओं के जीवन में आशातीत परिवर्तन आया है।

साध्वीवर्या ने अनेकों सुश्रावक-सुश्राविकाओं को 12 व्रतधारी श्रमणोपासक बनाया है।

\* **मण्डल गठन**- गुरु वल्लभ कहा करते थे कि धर्म का बोझ आज माताओं-बहनों के कन्धों पर टिका है। इसी धर्म जागृति के उद्देश्य से साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म., साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. ने श्राविकाओं को सुदृढ़, धर्मनिष्ठ एवं सुव्यवस्थित करने हेतु अनेक मण्डलों की स्थापना की है एवं भविष्य की नींव रखने वाली भावी पीढ़ी में सुसंस्कार सिंचन हेतु बाल मण्डलों की स्थापना की है। सभी मण्डलों की विशेषता यही है कि उनके नाम गुरु आत्म-वल्लभ पर ही रखे गए हैं। यथा-

- \* आगरा में युवती मण्डल
- \* मुरादाबाद में श्री आत्म-वल्लभ तरुणी मण्डल एवं युवती मण्डल
- \* लुधियाना वल्लभनगर में विजय समुद्रसूरि तरुणी मण्डल
- \* कोटकपुरा में श्री आत्म-वल्लभ जैन महिला मण्डल
- \* जंडियाला में श्री आत्म-वल्लभ महिला मण्डल का पुनर्गठन

\* गुड़गाँव में श्री आत्म-वल्लभ सामायिक मण्डल

\* बड़ौत में श्री आत्म-वल्लभ तरुणी मण्डल

साध्वीजी म. का जन्म यद्यपि पंजाब में हुआ परन्तु इन्होंने राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, यू. पी. आदि सभी स्थानों पर चातुर्मास करके स्थान-स्थान पर जैनदर्शन के शिविर लगाकर धर्म का प्रचार किया है तथा कर रही हैं। साध्वीजी का सम्पूर्ण जीवन एक प्रेरणा है। कहा गया है- 'महापुरुष कुछ अलग कार्य नहीं करते, बल्कि कार्य को अलग ढंग से करते हैं।' साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म., साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म. आदि जैसी सतियों के संयम से ही यह संसार अपने क्रम से चलता है। साध्वीजी निरन्तर आत्मोन्नति को प्राप्त हों, शासन सेवा-शासन प्रभावना की असीम शक्ति प्राप्त हो, ऐसी शुभकामना ! एसी शुभाशंसा !!

- हिमांशु जैन,  
लिगा, दिल्ली

## श्रुत-भक्ति के रागी

- \* सेठ धर्मचन्द दयाचन्द जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, सादड़ी (राज.)
- \* श्री आत्मानन्द जैन सभा, रोहिणी, पीतमपुरा, दिल्ली
- \* बाबू अर्मीचन्द पन्नालाल आदीश्वर जैन टेम्पल, वालकेश्वर, मुम्बई  
की बहिनों की ओर से
- \* श्री कल्याण पार्श्वनाथ श्राविका संघ, किचलुनगर, लुधियाना-पंजाब
- \* श्री रमेशकुमार, सरोजरानी, संजय, अतुल जैन, महावीर डाईंग एण्ड  
फिनिशिंग इण्डस्ट्रीज, पट्टी वाले, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री श्वेताम्बर जैन श्राविका संघ, सुन्दरनगर, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री हंसराज, अमरचन्द, रिट्टू, नवीन जैन, महावीर एप्रिल,  
लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री चमनलाल, कमलावनती, जितेन्द्र, अणु जैन, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री शान्ताबाई पुखराज राठौड़, श्री खूबीलाल गुलाबचन्दजी सादड़ी  
वाले, राठौड़ ज्वेलर्स, पूना
- \* श्री विमलचन्द माँगीलाल धोका, सादड़ी (ऋषभ ग्रुप, मुम्बई)



विदुषी मातृवत्सला साध्वी  
श्री प्रगुणाश्रीजी म. सा.



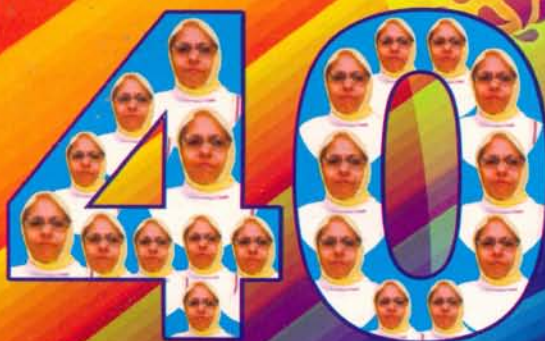
के 50 वें संयम  
पर्याय



एवं

प्रवचन-प्रभाविका साध्वी

श्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा.



के 40 वें संयम  
पर्याय

की अनुमोदना सहित श्रीचरणों में वन्दना !

पारदर्शी उदयपुर मो. 09413763991

सौ  
ज  
न्य

श्री आत्मानन्द जैन सभा  
रूपनगर, दिल्ली



# द्रव्य-सहयोगी



श्री शान्तिलालजी जैन सराफ श्रीमती शशिरानी जैन  
अम्बाला शहर (हरियाणा)



स्व. श्री इन्दरलालजी जैन  
भूतपूर्व प्रधान, श्रीसंघ रूपनगर, दिल्ली



श्री सुरेन्द्र मोहनजी, लुधियाना श्रीमती आजारानी जैन  
प्रधान, श्री आत्मानन्द महासभा पंजाब लुधियाना



श्री अशोककुमारजी जैन  
अम्बाला शहर (हरियाणा)



स्व. श्री रमणिकलालजी मरडिया श्रीमती किरण मरडिया  
दिल्ली



श्रीमती त्रिशलारानी जैन  
दिल्ली

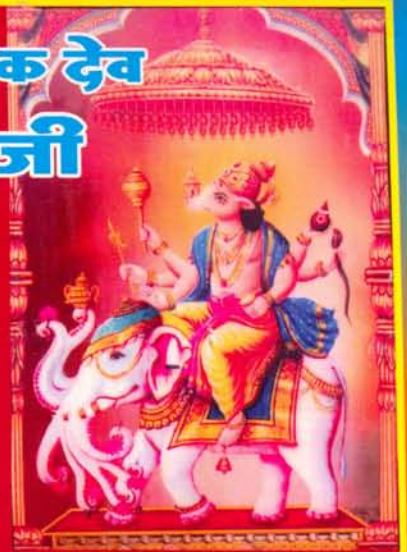
- \* श्री शान्तिनाथजी बड़ा उपाश्रय, सादड़ी (हस्ते- शुकुनराज सुराणा)
- \* श्री सतपाल, अनिलकुमार, सकलकुमार, सक्षम जैन, सरिता रानी, खानगा डोगरे वाले, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री दर्शनलाल, सुशीलकुमार, डिप्टीकुमार, कृष्णकान्त, संजय, दीक्षित, वल्लभ, निटर, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री विजयकुमार, सुरेशकुमार, अमिनव, गुणमाला, कुसुम जैन, डी. के. होजरी, लुधियाना (पंजाब)
- \* श्री किशोरीलाल, संजयकुमार, सार्थक, समर्थ, मन्जूरानी जैन, जंडियाला वाले, अम्बाला
- \* श्री दौलतराम, दविन्द्रकुमार, सुनीलकुमार, राजेशकुमार, संजीवकुमार जैन, सामाना वाले, दिल्ली
- \* श्री यशकुमार, जगदीशकुमार, रमेशचन्द, करबावाला, सादड़ी (राज.)



# अनुक्रम

क्या ?	कहाँ ?
1. तपागच्छ के अधिष्ठायक श्री मणिभद्र वीरजी का जीवन-चरित्र	17
2. सम्मत्तशिखर तीर्थ तथा अधिष्ठायक श्री भोमियाजी देव	45
3. तीर्थ की महत्ता	59
4. शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा	60
5. सिद्धगिरि पर हुई सिद्ध आत्माएँ	65
6. 'तीर्थनी आशातना नवी करिए' तीर्थ की आशातनाओं से बचें	68
7. श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ के चौथे तथा पाँचवें आरे में हुए उद्धार	71
8. गिरनार तीर्थ के उद्धारक श्री रत्नसार श्रेष्ठी	122
9. भाई हो तो वस्तुपाल जैसा	128
10. राणकपुर तीर्थ के निर्माता धन्य हैं धरणा शा	130
11. माँ मिले तो गंगा माँ जैसी	132
12. सम्पत्ति का सदुपयोग	138
13. कर्म विषयक जैन प्रश्नोत्तरी	145

# वपागच्छ के अधिष्ठायक देव श्री मणिभद्रवीर्यजी



सौ  
जन्य

श्रीमती लीलाबहिन-रूपचन्दजी, संगीता-राजीवजी, ऋषभ जैन  
तखतगढ़ वाले (अँधेरी-मुम्बई)



## तपागच्छ के अधिष्ठायक श्री मणिभद्र वीरजी का जीवन-चरित्र

इस संसार में प्रत्येक शुभ वस्तु के कोई न कोई अधिष्ठायक होते हैं । अधिष्ठायक देव समय आने पर श्रमण-श्रमणियों की, श्रावक-श्राविकाओं की सहायता करते हैं ।

जैन शासन में भी अनेक आचार्य भगवन्तों ने गुरु भगवन्तों ने, शासन-रक्षक अधिष्ठायक देव-देवियों और इन्द्रों ने जब-जब भी शासन प्रभावना तथा शासन रक्षा का अवसर आया तब समाधि हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से जिनशासन की महान सेवा की है ।

वर्तमान काल में प्रगट प्रभावी विघ्नों का हरण करने वाली, इच्छाओं की पूर्ति करने वाली पुरुषादानी श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्ति यदि हमें प्राप्त हुई है तो माता पद्मावती की सहायता से ।

माँ चक्रेश्वरी और विमलेश्वर देव ने नवपद के आराध्यक महाराजा श्रीपाल के जीवन में घड़ी-घड़ी आने वाले विघ्नों को दूर किया ।

नवांगी टीकाकार महर्षि आचार्यदेव श्री अभयदेवसूरिजी के कोढ़ रोग को शासन देवी ने दूर किया था ।

नमिऊण स्तोत्र के रचयिता श्री मानतुंगसूरिजी की मानसिक अस्वस्थता के समय धरणेन्द्र देव स्वयं पधारे थे और अनशन कर रहे गुरुदेव को रोका था ।

युग प्रधान वज्रस्वामीजी को देवों ने आकाशागामिनी विद्या तथा वैक्रिय लब्धि अर्पण की थी जिसके बल से उन्होंने खूब शासन प्रभावना के कार्यों को किया था ।

उपवास के तप में श्रियक की मृत्यु होने पर साध्वी यक्षा को शासन देवी महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधरस्वामी भगवान के पास ले गई थी ।

अष्टापद पर्वत पर प्रभु भक्ति में तल्लीन बने हुए त्रिखण्डाधिपति महाराजा रावण को धरणेन्द्र देव ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था ।

आबू के मन्दिर निर्माण में आ रहे विघ्नों को दूर करने के लिए जब विमलशा मंत्री ने अड्डम किया था । तब माँ अम्बिका देवी ने विशेष सहायता की थी ।

गिरनार तीर्थ की मालिकी के विवाद के समय अम्बिका देवी की सहायता से आचार्यश्री बप्पभट्टसूरिजी ने इस तीर्थ को श्वेतांबरों के कब्जे में कराया था ।

जब-जब मरकी प्लेग आदि रोगों का उपद्रव हुआ, तब-तब प्रभावक गुरु भगवन्तों ने अधिष्ठायक देव-देवियों के सान्निध्य से प्रभावक स्तोत्रों की रचना करके रोगों को दूर किया था ।

ऐसे एक नहीं अनेकों प्रसंग हैं कि जब-जब भी चतुर्विध संघ तथा शासन पर कोई भी कष्ट आया तभी सम्यग् दृष्टि देवों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सभी पर उपकार किया है । प्रस्तुत पुस्तक में सभी का वर्णन न करके केवल मात्र तपागच्छ के अधिष्ठायक देव यक्षाधिराज श्री मणिभद्रदेवजी का वर्णन कर रहे हैं । जिस गच्छ में आज हजारों श्रमण-श्रमणियाँ आराधना कर रहे हैं ।

जैन धर्म के प्रत्येक मन्दिर तथा उपाश्रय में वर्तमान काल में श्री मणिभद्र-देवजी विराजमान हैं । उनका पूर्व जीवन कैसा था वे कैसे मणिभद्र वीर बने तथा कैसे तपागच्छ के अधिष्ठायक बने उनका सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार है ।

इसी भरत क्षेत्र के मध्यप्रदेश में क्षिप्रानदी के किनारे उज्जैनी नाम की नगरी है जो कि धार्मिक नगरी के रूप में प्रसिद्ध है ।

भगवान महावीर के शासन में हुए अतिमुक्तक मुनि ने यहाँ पर श्मशान में जाकर तपस्या की थी ।

श्रीपाल-मयणासुन्दरी को यहाँ के ही आदिनाथ जिनालय में चमत्कार के रूप में हाथ में बिजोरा और माला की प्राप्ति हुई थी ।

आचार्यश्री सिद्धसेन दिवाकरजी ने गुप्तवेश में यहाँ के कुण्डगेश्वर मन्दिर में पधार कर कल्याण-मन्दिर स्तोत्र की रचना करके अवन्ती पार्श्वनाथ प्रभु को प्रकट किया था ।

इसी नगर में महाराजा भोज, महा पराक्रमी, पर-दुःखभंजन महाराजा विक्रमादित्य, कवि कालीदास जैसे पण्डित इस धरती की गोद में हुए ।

ऐसी उज्जैनी नगरी में वीशा ओसवाल जाति का धर्मप्रिय नामका एक सेठ रहता था । वैसे तो वह सेठ पाली राजस्थान का वतनी था परन्तु व्यापार हेतु वह वहाँ पर ही रहता था । विशाल प्रसिद्धि तथा दिव्य समृद्धि का वह स्वामी था । आराधना और धर्मानुष्ठानों से उसका जीवन भरपूर था ।

जैसा सेठ था वैसी ही उसकी सेठानी थी । सेठानी का नाम था जिनप्रिया । जैसा नाम था वैसे ही दोनों में गुण थे । परमात्मा और परमात्मा द्वारा प्ररूपित धर्म दोनों को अतिशत प्रिय था ।

दोनों का जीवन सुखमय और धर्ममय व्यतीत हो रहा था । संसारिक सुखों को भोगते हुए एक दिन सेठानी गर्भवती हुई । गर्भकाल व्यतीत होने पर वि. सं. 1541 महासुदी पंचमी (वसंत पंचमी) के शुभ दिन सेठानी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

बालक के मुख को देखकर माँ के आनन्द का, पिता की प्रसन्नता तथा स्वजनों के हर्ष का पार नहीं था । एक गोद से दूसरी गोद में क्रीड़ा करता हुआ बड़ा हो रहा था । माता-पिता ने उस बालक का नाम रखा माणेक ।

माणेक वास्तव में माणिक रत्न जैसा ही तेजस्वी था । उसका रूप उसकी कान्ति उसका तेज अदभुत ही था । माता-पिता के सुन्दर संस्कारों को ग्रहण करता हुआ माणेक जैसे-जैसे बड़ा हो रहा था वैसे-वैसे उसकी प्रतिभा, चतुराई भी बढ़ रही थी ।



संसार में सभी दिन एक जैसे किसी के नहीं रहते । दिन के साथ रात, उदय के साथ अस्त, प्रकाश के साथ अंधकार रहा ही हुआ है । माणिकचन्द कुछ बड़ा हुआ कि उसके जीवन में एक करुण घटना घटित हो गई, जिसने माणिक के जीवन निर्माण में कोई कमी नहीं रखी थी ऐसा उसका धर्मनिष्ठ पिता सेठ धर्मप्रिय का अचानक एक दिन निधन हो गया । बाल्यावस्था में ही पिता की छाया माणिक के सिर से उठ गई । युवावस्था में ही जिनप्रिया पत्नी का आधार संसार से विदा हो गया ।

जिनप्रिया बहुत समझदार और धर्मनिष्ठ थी । जीव-जगत और जीवन के स्वरूप को अच्छी तरह जानती थी । पति के विरह की वेदना तो उसे थी परन्तु अब वह हिम्मतवान भी बन गई । पति विरह के शोक के बादलों को दूर करके अब वह माणिक के जीवनरूपी बाग को सजाने में तत्पर बन गई । अब उसने अपने जीवन को तप, त्याग और वैराग्य में जोड़ दिया । अधिक समय अपने ही मकान में बनाए हुए गृहमन्दिर में भक्ति और पूजा में व्यतीत करने लगी ।

बालक माणिक के लिए अब उसकी माँ ही सर्वेसर्वा थी । उसके हृदय में माँ के प्रति असीम भक्ति भाव था । माता की आज्ञा को देवाज्ञा के समान मानना था, माता और पुत्र का प्रेम समस्त उज्जैन नगरी के लिए एक आदर्श रूप हो गया था । बड़ा होने पर जिनप्रिया एक उपाध्याय के पास व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु तथा उपाश्रय में गुरु भगवन्त के पास धर्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए माणिक को भेजने लगी और घर में धर्म सिंचन का कार्य तो चालू ही था । इस प्रकार अभूतपूर्व त्रिवेणी संगम ने माणिक को जीवन को धर्मी, संस्कारी तथा व्यवहारकुशल बना दिया ।

अब माणिक युवावस्था को प्राप्त हो गया । पिता की सम्पत्ति का मालिक तो था ही, साथ ही साथ उसने अपनी बुद्धि और चतुराई से अपने व्यापार के विस्तार को इतना बढ़ा लिया कि उज्जैनी के श्री श्रेष्ठी, श्रीमन्तों की श्रेणी में अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर लिया । सभी लोग उसे माणिक शा के नाम से पुकारने लगे ।

माणिक शा का नाम और काम समस्त मालव प्रदेश में इतना प्रसारित हो गया कि बड़े-बड़े श्रीमन्त अपनी पुत्री की शादी उसके साथ करने के लिए उत्सुक हो गए । अन्त में धारा नगरी के अत्यन्त श्रीमन्त श्रेष्ठी की पुत्री आनन्दरति के साथ माणिक शा का विवाह हो गया ।

आनन्दरति इतनी गुणवान थी कि ससुराल आकर विनयादि गुणों से उसने माँ जिनप्रिया के हृदय को जीत लिया, निःस्वार्थ प्रेम भाव से पति को वश में किया । दोनों के विचारों में अभूतपूर्व समन्वय था । दोनों ही वीतराग देव को मानते थे, दोनों ही तपागच्छीय आचार्य श्री हेमविमलसूरिजी तथा श्री आनन्दविमलसूरिजी को गुरु रूप में मानते थे । दोनों को प्रभु पूजा, गुरु सेवा तथा मातृ भक्ति में खूब आनन्द आता था । दोनों का तन अलग था मन एक ही था । माता जिनप्रिया का हृदय भी ऐसी पुत्रवधू को प्राप्त करके फूला नहीं समाता था ।

आज के युग में ऐसी पति-पत्नी की जोड़ी मिलनी बहुत मुश्किल है । आज तो पति को तप करना अच्छा लगे तो पत्नी को होटल में जाना, पति को प्रतिक्रमण की इच्छा हो तो पत्नी को पिक्चर जाने की, पति को तीर्थ स्थान जाने की भावना हो तो पत्नी को हिलस्टेशन घूमने की इच्छा होती है । पत्नी पूर्व में तो पति पश्चिम में जाता है । तभी तो एक कवि ने लिखा है कि—

मैं पूर्व को जाता हूँ तो वह पश्चिम को पाँव उठाती है ।  
 मैं आम जिसे कहता हूँ वह नीम उसे बतलाती है ।  
 पैरों की जूती पगड़ी पर अपना अधिकार जमाना चाहती है ।  
 अर्धांगिनी काहे को सर्वांगिनी बनना चाहती है ॥

यदि पुत्रवधू अपने ससुराल को स्वर्ग बनाना चाहती है तो उसे पति से पहले अपने विनयादि गुणों के द्वारा अपनी सासु की प्रियपात्र बनना चाहिए ।

आनन्दरति ने अपने गुणों के द्वारा सभी के मान, पान और सम्मान को प्राप्त कर लिया । तीनों का संसारी जीवन निर्विघ्न चल रहा था सभी

देव-गुरु-धर्म की उपासना एवं आराधना में अपना जीवन सुखमय व्यतीत कर रहे थे ।

स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं कर सकते ऐसी ही एक घटना एक दिन माणिक शा के जीवन में विक्रम संवत् 1563 में घटित हो गई । समय-समय पर उज्जैनी नगरी में पधारने वाले गुरुदेव श्री हेमविमलसूरीश्वरजी अन्यत्र विहार कर गए । यह अवसर देखकर लोकागच्छ के आचार्य श्री पद्मनाभसूरिजी ने उज्जैनी में प्रवेश किया । उज्जैनी के मध्य भाग में एक विशाल उपाश्रय में उन्होंने स्थिरता की ।

‘लोकागच्छ के यतियों की मुख्य मान्यता थी कि प्रतिमा की पूजा नहीं करनी, प्रतिमा में परमात्मा की स्थापना एक बनावट है । वास्तव में पूज्य, आराध्य, उपास्य यदि कोई तत्त्व है तो अपनी आत्मा है । पत्थर पूजा में पृथ्वी, जल, पुष्प में जीवों की विराधना होती है ।’

लोकागच्छ के आचार्य पद्मनाभसूरि ने प्रतिदिन प्रवचनों में ऐसी बातों का कहना चालू कर दिया । उनकी वाक्छटा तथा प्रवचन शैली ऐसी थी कि प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी । बढ़ती संख्या को देखकर उत्सूत्र प्ररूपणा करनी शुरू कर दी ।

चारों तरफ उनके प्रवचनों की चर्चा होने लगी । माणिक शा के कानों में भी यह चर्चा पहुँची । एक दिन कतूहलवश वह भी उनके प्रवचन सुनने चला गया । उनकी वाक्पटुता से आकर्षित होकर वह भी उनका प्रतिदिन का श्रोता बन गया । यतियों की चकोर दृष्टि से वह छिपा न रहा । माणिक शा जैसे उज्जैनी के अग्रगण्य श्रेष्ठी पर अपने विचारों की असर होती देखकर आचार्य के आनन्द का पार न रहा । सूरिजी की वाक् धारा के प्रवाह में माणिक शा का कुलाचार धर्म भी प्रवाहित हो गया ।

किसी ने ठीक ही कहा है कि एक ही एक झूठ आप छः बार सुनो तो सातमी बार वह आपके लिए सत्य ही बन जाएगा । प्रतिदिन प्रतिमा और पूजा

विरुद्ध प्रवचनों को सुनकर अनन्य प्रभु भक्त माणेक शा मूर्ति पूजा का कट्टर विरोधी बन गया । उसके मन में, दिल और दिमाग में यह बातें बैठ गई कि निराकार की उपासना से ही निराकार पद की प्राप्ति होती है, जड़ प्रतिमा चैतन्य पर कोई उपकार नहीं कर सकती । ऐसे-ऐसे विचारों से उसकी श्रद्धा, विश्वास और समर्पण समाप्त हो गया । वर्षों की मजबूत श्रद्धा की इमारत एक क्षण में मटियामेट हो गई । किसी ने ठीक ही कहा है कि—

ध्वंस बहुत आसान है, मगर निर्माण कठिन है,  
पतन बहुत आसान है, मगर उत्थान कठिन है ।

माणेक शा के विचारों में इतना जबरदस्त परिवर्तन आ गया कि यतियों के पास उसने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली कि अब मैं कभी भी किसी जिनालय में दर्शन-पूजन के लिए कदम नहीं रखूँगा । अपने घर मन्दिर में भी नहीं जाऊँगा । इसके जीवन को देखकर यति तो आनन्द से भर गए ।

घोर मिथ्यात्व के उदय से और अत्याधिक दृष्टि राग के कारण माणेक शा आस्तिक से नास्तिक बन गया । अपने परम उपकारी गुरुदेव श्री हेमविमलसूरिजी की हितशिक्षा को भी भूल गया । योगसार ग्रन्थ में आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी ने कहा है कि—

दृष्टि रागो महामोहो, दृष्टि रागो महाभयः  
दृष्टि रागो महामारो, दृष्टि रागो महाज्वर ।

दृष्टि राग एक प्रकार का महान मोह है,  
दृष्टि राग सबसे बड़ा भय है,  
दृष्टि राग महान नाशक और महाज्वर है ।

माणेक शा ने यतियों के पीछे लग कर प्रभु पूजा, दर्शन, धर्म क्रिया आदि सब बन्द कर दिया । जिनालय में मधुर कण्ठ से जो प्रतिदिन आरती भक्ति करता था वह सब कुछ बन्द कर दिया । मिथ्यायतियों को ही गुरु मानने लगा । प्रतिमा को पत्थर मानने लगा ।

माणक शा ने जब यह सब छोड़ दिया तो सबसे अधिक दुःख हुआ तो उसकी जन्मदातृ माता जिनप्रिया को और उसकी पत्नी आनन्दरति को ।

जिस पुत्र को मातृ हृदय ने बाल्यावस्था में ही धर्म के संस्कारों से सिंचित किया था, बाल हृदय की सुकोमल भूमि में धर्म भावना का अमूल्य बीजारोपण किया था, वही आज धर्म मार्ग से च्युत हो जाने से माँ के हृदय पर भारी वज्रघात लगा । बुद्धिशाली, समझदार पुत्र की धर्म भावना पर अचानक ऐसा गम्भीर परिवर्तन कैसे आ गया । यह माँ के लिए एक विषम पहेली बन गई ।

माँ और पत्नी की आखों से श्रावण-भाद्रवा बरसने लगा । दोनों ने माणेक को समझाने में, सत्य मार्ग पर लाने के लिए कोई कमी नहीं छोड़ी परन्तु माणेक एक का दो नहीं हुआ । दोनों ने अन्य कई उपाय उसे सुधारने के कर लिए परन्तु उस पर कोई असर न हुआ ।

शास्त्रकार कहते हैं कि जब बाजी हाथ से निकल जाए, सभी प्रयत्न निष्फल हो जाए तो उस कार्य को भवितव्यता पर छोड़ देना चाहिए और प्रभु भक्ति तथा प्रार्थना पर बल देना चाहिए ।

अब माता तथा पत्नी दोनों ने अपनी धर्मारोधना को बढ़ा दिया । पहले से अधिक परमात्मा की भक्ति करने लगी । पूजा आदि करने के पश्चात् दोनों भावपूर्वक प्रभु से प्रार्थना करने लगी कि—

हे प्रभो ! मेरे पुत्र को सन्मति देना, पुनः सन्मार्ग पर स्थिर करना । पत्नी कहती— हे देवाधिदेव ! मेरे स्वामी को आप प्रभु भक्ति की राह पर लगाओ ।

इस प्रकार करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया । माणेक शा अपने विचारों से टस से मस भी नहीं हो रहा था । माँ का मन अति बेचैन हो गया । जिस घर में परमात्मा की पूजा न हो वह घर-घर नहीं श्मशान कहलाता है । ऐसी जिनप्रिया की मान्यता थी । उसने विचार किया कि यदि बेटे के मन में परिवर्तन नहीं आता है तो मुझे बेटे की खातिर अपने जीवन में परिवर्तन लाना पड़ेगा । ऐसा सोचकर माँ ने एक दिन मन्दिर में जाकर परमात्मा के सामने घोर

अभिग्रह धारण कर लिया कि जब तक मेरा पुत्र जिन पूजा चालू नहीं करेगा तब तक मेरा छः विगई का त्याग ।

आज कल के युग में जिनप्रिया जैसी कितनी माता मिलेंगी ? तू होमवर्क नहीं करेगा तब तक बाहर जाने नहीं दूँगी, तब तक टी.वी. देखने नहीं दूँगी, ऐसा कहने वाली बहुत माताएँ होंगी, परन्तु तू मन्दिर नहीं जाएगा तो नाश्ता नहीं मिलेगा, पूजा नहीं करेगा तो भोजन नहीं मिलेगा, तू पाठशाला धर्माक्षर सीखने नहीं जाएगा तो टी.वी. नहीं देखने दूँगी ऐसी माताएँ आजकल बहुत विरली होंगी ।

संसार में ऐसी विरली श्राविकाएँ होती हैं जो अपने पुत्र की मात्र देह की नहीं आत्मा की चिंता करती हैं उसके एक भव का नहीं भवोभव का चिंतन करती हैं । जिनप्रिया का नम्बर ऐसी माता में था माणेक शा के इस लोक की नहीं अपितु परलोक की भी चिंता करती थी ।

दोपहर का समय हो गया, माता जिनप्रिया खाना खाने के लिए बैठी, पुत्रवधू आनन्दरति ने गर्म-गर्म भोजन परोसा, जैसे ही थाली में देसी घी से चुपड़ी रोटी रखी तो माँ ने कहा कि बेटा ! मेरे लिए बिना घी की रूखी रोटी लेकर आओ । बहू बोली- माँ ! आज कोई विशिष्ट तिथि नहीं है तो घी का त्याग क्यों किया ? माँ ने कहा- बेटा ! आज से मेरा मात्र घी का ही नहीं छः ही विगई का त्याग है । सुनकर आनन्द को धक्का लगा, बोली माँ ! त्याग का कारण क्या है ? जैसे ही माँ ने अपने हृदय गत अभिग्रह की बात की तो बहू की आँखों से अविरल अश्रुधारा छूट गई और बोली- माँ ! यह कैसा न्याय ? भूल कोई करे और सजा कोई भरे ।

जिनप्रिया ने बहू के सिर पर प्यार से हाथ रखकर कहा- बेटा रति ! प्रभु की कृपा से सब ठीक हो जाएगा, तू मेरी चिंता मत कर । माँ ने आनन्दरति को शान्त करने के बहुत प्रयत्न किए परन्तु वह नहीं मानी और माँ के सामने खड़ी होकर हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक आपका छः विगई का त्याग, तब तक मेरा भी छः विगई का त्याग ।



माँ जिनप्रिया अपनी पुत्रवधू को अश्रुभरे नेत्रों से देखती रह गई ।

एक दिन आनन्दरति ने विचार किया कि यदि मैं माता के छः विगई के त्याग की बात अपने पति को करूँ तो शायद उनके जीवन में परिवर्तन आ जाए क्योंकि वे मातृभक्त हैं, हो सकता है कि वे पुनः धर्म मार्ग में स्थिर हो जाएँ । एक दिन अवसर देखकर पत्नी ने माँ के त्याग की सारी बात पति के सामने कर ही दी । जिसे सुनकर माणेक शा का मन अत्यधिक व्यथित हो गया । सोचने लगा माताजी मेरे निमित्त अपनी काया पर इतना जुल्म क्यों कर रही हैं । इसी चिन्तन और वेदना से उसकी आँखें आँसुओं से भर गई । मस्तक लज्जा से नीचे झुक गया । फिर भी साहस करके माँ के पास आया और बोला— माताजी ! साधुओं के परिचय में मुझे इतना विश्वास तो हो गया है कि मोक्ष मार्ग की साधना में और सिद्धि पद की प्राप्ति में मूर्ति पूजा अनिवार्य नहीं है । आगमों में भी मूर्ति पूजा का उल्लेख नहीं है ।

माणेक शा कुछ आगे बोले कि उससे पहले ही माँ जिनप्रिया ने कहा— बेटा ! आगम और शास्त्र तो मैंने पढ़े नहीं हैं परन्तु इतना तो मैं भी जानती हूँ कि मानव के आचार और विचारों की शुद्धि के लिए मूर्ति पूजा अनिवार्य है इस विषमकाल में जिनविम्ब जिनालय, जिनागम यही तरने के साधन हैं । माता के विविध प्रकार से समझाने पर भी माणेक के मस्तिष्क में कोई बात नहीं उतरी । समय वर्त सावधान... इस न्याय को समझ कर माता ने मौन धारण कर लिया ।

समय व्यतीत हो रहा था, एक दिन उज्जैनी के आँगन में सोने का सूरज उदय हुआ, क्षिप्रा नदी का प्रवाह आज गति नहीं मानो नृत्य कर रहा हो, जैन श्रावकों के घर-घर में आज आनन्द का अवसर आ रहा था । कारण कि तपागच्छ की 55 वें पाट पर शोभायमान आचार्यश्री हेमविमलसूरीश्वरजी आज उज्जैनी नगरी में पधार रहे थे । श्री हेमविमलसूरिजी अर्थात् आनन्दविमलसूरिजी के गुरु और माणेक शा के कुलगुरु ।

श्री हेमविमलसूरिजी भीष्म तपस्वी थे । इन्होंने 500 मुमुक्षु आत्माओं को

दीक्षा दी । इनकी निश्रा में कुल 1800 साधुओं का परिवार था । ऐसे महान ज्ञानी गुरुदेव के वर्षों बाद पधारने से उज्जैनी के सभी नागरिक खुश थे परन्तु विशेष प्रसन्नता तो माँ जिनप्रिया तथा माणक की पत्नी आनन्दरति को थी क्योंकि वे सोच रही थीं कि जो काम हम नहीं कर सकीं वे कार्य अब गुरुदेव से हो जाएगा ।

जो बात दवा से नहीं होती है, वह दुआ से होती है,  
काबिल जब गुरु मिल जाते हैं, तब बात खुदा से होती है ।

आचार्यश्री जी के साथ 70 साधु भगवन्त थे । सभी गुरु भगवन्तों का स्वागत एवं प्रवेश उज्जैन निवासियों ने धूम-धाम से कराया । सभी साधु मुनिराज उपाश्रय में पधार गए । धर्म देशना पश्चात् गुरु अपने पाट पर विराजमान हो गए । सभी भक्तजन स्वस्थान पर दर्शन वन्दन करके चले गए ।

आचार्य भगवन ने विचार किया कि महापुरुषों की रज से पवित्र बनी उज्जैनी नगरी, क्षिप्रा नदी का तट, गन्धर्व श्मशान भूमि, प्रचण्ड गर्मी के दिन ऐसे वातावरण में मुझे कोई साधना करनी चाहिए । बस विचार को आचार की फ्रेम में उतारने के लिए उन्होंने आत्मा की दृढ़ता तथा सहनशीलता को वृद्धिगत करने के लिए एक मास की विशिष्ट तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी । भीष्म तथा उग्रतप के साथ श्मशान भूमि में जाकर कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थिर रहने की साधना जिसमें मुख्य थी । इस प्रकार के ध्यान, तप और साधना में गुरु तल्लीन हो गए ।

ऐसे भीष्म तप की जानकारी जब लोगों को मिली तो सभी दाँतों तले उंगली दबाने लगे, उज्जैनी नगरी में स्थान-स्थान पर आचार्य गुरुदेव के कठोर तप की अनुमोदना तथा चर्चा होने लगी ।

माता जिनप्रिया के कानों में आचार्य गुरुदेव के कठोर तपोसाधना की बात पड़ी तो वह मन ही मन भावना करने लगी कि ऐसे घोर तपस्वी पारणे के प्रसंग पर यदि हमारे घर पधारें तो हमारा बेड़ा पार हो जाए । उसने माणक शा को

अपनी भावना प्रगट की और बोली बेटा ! गुरुदेव की उग्र तपस्या के अन्तिम दिन चल रहे हैं तू एक बार उनको वन्दन करके आ और पारणे के प्रसंग पर अपने घर पधारने की विनती करके आ । यदि अपना भाग्य जोरदार होगा तो लाभ मिल जाएगा ।

वैसे तो यतियों के संग से माणेक शा नास्तिक जैसा तथा संवेगी साधुओं का द्वेषी बन गया था परन्तु इस काली बादली के बीच एक मातृभक्ति का गुण उसमें था ।

माँ के कहने से माणेक श्री हेमविमलसूरिजी को विनती करने के लिए चल तो पड़ा, परन्तु उसका द्वेषी मन पुनः तूफान करने लगा । एक तो पहले ही तपागच्छ के साधुओं के प्रति उसे असद्भाव हो गया था । उसमें अपने कुलगुरु सूरि भगवन्त के पदार्पण से वह अधिक उग्र और व्यग्र बन गया था । उसके हृदय से आज मानवता का भी दिवाला निकल गया । गुरु के प्रति भी गुरुत्व भाव नहीं रहा, उसने श्री हेमविमलसूरिजी की कठोर अग्नि परीक्षा लेने का निश्चय किया ।

गुरु की अग्नि परीक्षा लेने के लिए चलता-चलता क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँच गया । आचार्य भगवन को ढूँढता-ढूँढता गन्धर्व श्मशान में पहुँच गया । श्मशान भूमि से थोड़ी दूरी पर हेमविमलसूरिश्वरजी को ध्यानस्थ मुद्रा में अडोल, अकम्प खड़े हुए देखा, उनको ध्यानस्थ मुद्रा में चलायमान करने के लिए परीक्षा हेतु आए माणेक ने श्मशान भूमि से एक जलती हुई लकड़ी को उठाया और गुरुदेव की दाढ़ी के साथ लगा दिया । जिससे उनकी दाढ़ी के बाल जलने लगे ।

एक तरफ माणेक शा के हृदय में क्रोध तथा द्वेष की अग्नि जल रही थी तो दूसरी तरफ सूरिजी के हृदय में ध्यानाग्नि जल रही थी, तीसरी तरफ दाढ़ी के बाल जल रहे थे ।

परन्तु कमाल-कमाल, कैसी दृढ़ता । दाढ़ी के बाल जलने पर सूरिजी

काऊसग मुद्रा में अडोल तथा स्थिर खड़े रहे । एक रोम भी उनका हिला नहीं । यह देख माणेक शा एकदम स्तब्ध रह गया । उसने तुरन्त दाढ़ी से अड़ी हुई लकड़ी को खींच लिया और जलती हुई दाढ़ी को बुझा दिया । अग्नि परीक्षा के पलों में भी मन-वचन की दृढ़ता तथा स्थिरता ने सेठ को विचार करने के लिए मजबूर कर दिया । इतना ही नहीं इस घटना ने सेठ माणेक शा के हृदय में जोरदार व्याकुलता उत्पन्न कर दी । वह पश्चात्ताप की पावक में जलने लगा ।

ओह ! मैंने कैसा अधम कृत्य कर दिया । मुनियों को साता देने के बदले मैंने घोर असाता पहुँचा दी । मैंने अति निर्लज्ज कार्य कर दिया । न मालूम अब मैं कौन से भव में इस पाप से छुटकारा पाऊँगा । मैंने प्रवचनों में कितनी बार सुना कि— 'तीर्थ भूता हि साधवः' अर्थात् साधु महाराज तो तीर्थ के समान होते हैं वे स्वयं ही तिरस्ते हैं और दूसरों को भी तारते हैं । आज मैंने तीर्थ समान गुरु की आशातना कर घोर पाप कर्मों का बन्धन कर लिया है । पश्चात्ताप की अग्नि में जलता हुआ माणेक शा वहाँ एक क्षण भी खड़ा न रह कर सीधा अपने घर की तरफ भागा और चुपचाप बिस्तर पर जाकर लेट गया । नींद नहीं आ रही थी । इधर-उधर करवटें बदल कर रात्रि व्यतीत की । इसी बीच मन ही मन निश्चय किया कि कल प्रातः सकल संघ के साथ गुरुदेव को अपने घर लेकर आऊँगा और सकल संघ के समक्ष मैंने की हुई गुरु की आशातना का प्रायश्चित्त लूँगा ।

(पाप और पश्चात्ताप के द्वन्द्व में) पाप हो जाना आसान है परन्तु पाप करने के बाद उसे स्वीकार करना और पश्चात्ताप करना यह महा कठिन है । पाप करने से जितने कर्मों का बन्धन होता है उससे अधिक कर्म तीव्र पश्चात्ताप से नष्ट हो जाते हैं ।

प्रातःकाल हुआ, आज माणेक शा जल्दी उठ गया, शीघ्र ही स्नानादि से निवृत्त होकर तैयार हो गया । यह सब देख पत्नी भी आश्चर्य चकित हो गई । उसके आश्चर्य को तोड़ते हुए माणेक ने कहा— आनन्द ! आज तू प्रसन्न हो क्योंकि आज गुरुदेव के पगले मुझे अपने घर पर कराने हैं ।

शुभ समाचार सुनकर आनन्दरति की साढ़े तीन करोड़ रोमराजी प्रसन्नता से नाचने लगी । माँ जिनप्रिया को जब यह समाचार मिला तो उसके भी आनन्द का पार न रहा ।

माणेक शा शुभ भावों को लेकर सीधा गुरुदेव के चरणों में पहुँचा और गुरु को वन्दन करके अपने घर पधारने की विनती की । गुरुदेव ने भी भावी लाभ को जानकर विनती को स्वीकार किया ।

माणेक शा ने गुरुदेव के पगले कराने हेतु अपनी विशाल हवेली को नववधू की भाँति सजा दिया, आसोपालव के तोरण बान्धे, आँगन में सुन्दर रंगोली की, पूरे मुहल्ले में सुगंधी जल का छिड़काव किया । तत्पश्चात् गुरुदेव को लेने के लिए सामने गया । सकल संघ सहित ज्ञानी गम्भीर आचार्य भगवन माणेक शा के भवन में पधारे । सभी ने गहुँली आदि कृत्य करके विधिपूर्वक गुरुवन्दन किया । धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर गुरुदेव यथोचित् स्थान पर विराजमान हुए ।

मंगलाचरण के पश्चात् धीर गम्भीर मधुर स्वर से धर्म देशना प्रारम्भ की । कल की घटना और प्रातःकाल की विनती के पीछे रहे हुए भाव सूरिजी के समक्ष थे । उन्होंने दिव्य देशना देते हुए कहा— प्रिय बन्धुओं ! प्रत्येक मानव के जीवन में पाप होने की सम्भावना है, क्योंकि मानव मात्र भूल का पात्र है । परन्तु यदि उन भूलों को, पापों को स्वीकार करके पश्चात्ताप के अश्रुओं के साथ प्रायश्चित्त लिया जाए तो भयंकर से भयंकर पाप नष्ट हो जाते हैं । जैसे टूटे हुए तन्तु जोड़े जा सकते हैं, अशुचि से भरे हुए पाँव पानी से साफ हो जाते हैं वैसे ही पश्चात्ताप की पावक में पाप कृत्य भी समाप्त हो जाते हैं ।

हे महानुभावों ! पापियों के पाप का प्रक्षालन करने वाला यह जिनशासन है । चोर, खूनी, दुराचारी आदि बड़े-बड़े नराधम भी इस जिनशासन के प्रभाव से तर गए हैं ।

गंगा के प्रवाह समान अस्खलित प्रवाहित हो रही उपदेश धारा का एकेक

शब्द माणेक शा को आत्म निरीक्षण करने की गम्भीर प्रेरणा दे रहा था । कल रात्रि की घटना की स्मृति से उसका रोम-रोम कम्पायमान हो रहा था, उसका अन्तर हृदय रो रहा था, उसकी अन्तरात्मा उसे पुकार-पुकार कर कह रही थी कि हे माणेक ! तूने जो मुनि की आशातना की है उसका प्रायश्चित्त तुझे सभी के सामने करना पड़ेगा ।

अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर माणेक शा खड़ा हो गया, उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, उसने दोनों हाथ जोड़कर, गुरु चरणों में मस्तक झुकाकर, सकल संघ समक्ष कल के दुष्कृत्य का प्रायश्चित्त माँगते हुए कहा—

हे भगवन् ! मैंने भयंकर दुष्कृत्य किया है, आप जैसे संयमश्रेष्ठ, समतामूर्ति श्रमण भगवन्त को मैंने बहुत संताप परिताप दिया है, कल परीक्षा के नाम से मैंने आपको बहुत दुःखी किया, महान कष्टकारी शारीरिक वेदना दी । हे प्रभु ! मूर्खतावश हो गया, यह दुष्कृत्य मुझे हजार-हजार बिच्छु काटने जैसी वेदना दे रहा है । मैं आज सकल संघ के समक्ष अपने इस पाप की माफी माँगता हूँ और अपने इस लज्जाजनक दुष्कृत्य की निन्दा करता हूँ । कृपया गुरुदेव ! मुझे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कीजिए ।

माणेक शा के निखालस हृदय को देखकर आचार्य भगवन् बोले— हे माणेक ! वास्तव में तुम पुण्यशाली हो, क्योंकि पुण्यशाली व्यक्ति को ही पापों का प्रायश्चित्त करने का मन होता है । तुम्हारा पश्चात्ताप तुम्हें शीघ्र ही परमपद की प्राप्ति कराएगा ।

माणेक सोचने लगा जिनशासन की कैसी भव्य विशेषता है, कैसी गजब की उदारता है, मेरे जैसे पापी और भारे कर्मी को भी गुरु भगवन्त पुण्यशाली कहकर बुला रहे हैं । माणेक ने आँखों के आँसुओं से गुरु चरणों का प्रक्षालन किया और गुरु द्वारा दिए हुए प्रायश्चित्त को स्वीकार किया ।

पाप के भार से हल्के हुए माणेक शा ने पुनः विनती के स्वर में आचार्य भगवन् को कहा— गुरुदेव ! मेरे मन एक और प्रश्न है क्या आपश्री उसका



समाधान करेंगे ? गुरुदेव ने स्वीकृति देते हुए मधुर भाषा से कहा— माणेक ! अपने मनोगत भाव स्पष्ट रूप से कहो ।

गुरुदेव ! क्या मूर्ति पूजा शास्त्र सम्मत है ? क्या शास्त्रों में इसका कहीं पर वर्णन है ?

गुरुदेव ने उसके प्रश्न का समाधान करते हुए कहा— हाँ भगवती सूत्र में, जीवाभिगम, रायपसेणी जैसे महान आगम ग्रन्थों में परमात्मा की पूजा का विधान स्पष्ट और विशद वर्णन सहित है । इतना ही नहीं हजारों, लाखों और असंख्य वर्ष पुरानी प्रतिमाएँ आज भी प्राप्त हो रही हैं । हे माणेक ! यदि मूर्ति पूजा शास्त्र विरुद्ध होती तो इतने दीर्घकाल तक क्या चल सकती थी ? भव भीरू और गीतार्थ आचार्य भगवन्त इसकी प्ररूपणा क्यों करते ? अतः मूर्ति पूजा आज की नहीं, जब से तीर्थकर हुए हैं तभी से मूर्ति भी हैं । ऐसी अनेक दलीलें, तर्क और शास्त्र पाठ देकर आचार्य भगवन्त ने माणेक शा के मिथ्यात्व के मल को धो दिया । अब माणेक शा का हृदय पुनः सम्यग् दर्शन के दीपक से देदीप्यमान हो गया । माणेक शा की श्रद्धा दृढ़ हो गई ।

निर्मल श्रद्धा के प्रगटीकरण स्वरूप उसने पुनः जिन पूजा प्रारम्भ कर दी, देव-गुरु की उपासना करने लगा । इतना ही नहीं, महासुदी पंचमी के मंगल दिन उसने श्रावक के 12 व्रतों को भी स्वीकार लिया ।

माणेक के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन देखकर माता और पत्नी के मुख पर खुशी के चार-चार चाँद चमकने लगे । गुरुदेव के महान उपकार के प्रति उनका हृदय बारम्बार कृतज्ञता भाव से नमन करने लगा । गुरु के संग से माणेक के जीवन का रंग बदल गया । अब वे सभी पहले की भाँति देव-गुरु-धर्म की उपासना में मन-वचन-काया की दृढ़ता से तत्पर हो गए और धर्म-कर्म द्वारा जीवन व्यतीत करने लगे । उज्जैनी में थोड़े दिनों की स्थिरता करके आचार्य श्री हेमविमलसूरीश्वरजी ने अन्यत्र विहार कर दिया ।

एक दिन माणेक शा व्यापार हेतु आगरा गया । इसके जीवन की एक

विर्षता थी कि प्रदेश जाने पर भी अपने पूजा के वस्त्र सामायिक के उपकरण, जिनवाणी के स्वाध्याय हेतु धार्मिक पुस्तक अपने साथ ही लेकर जाता था । एक दिन भी धर्म कृत्य किए बिना नहीं रहता था ।

आज के श्रावकों और जिनोपासकों के जीवन में उल्टी गंगा बह रही है । आज तो लोगों ने तीर्थ स्थानों को भी हिलस्टेशन और पिकनिक पोइण्ट बना दिया है । तीर्थ स्थानों में जाकर आराधना तो क्या, आशातना करके कर्मों के बन्धन कर लेते हैं । पूर्वकृत हुए पापों का प्रक्षालन तो नहीं करते अपितु दुष्कृत्य (अर्थात् पत्ते खेलना, रात्रि भोजन करना आदि) करके नए पाप बान्ध लेते हैं ।

आगरा में मुख्य जिनालय में पूजा करने के पश्चात् जैसे ही माणेक शा बाहर निकला कि उसे समाचार मिला कि परम उपकारी श्री हेमविमलसूरीश्वरजी आगरा में ही चातुर्मास हेतु विराजमान हैं । गुरु का नाम सुनकर माणेक शा का मनमयूर नाच उठा । उसके हर्ष का पार न रहा । वह तुरन्त उपाश्रय पहुँचा । गुरु वन्दन करके उनके सन्मुख बैठ गया । गुरु महाराज प्रवचन में शत्रुञ्जय महात्म्य ग्रन्थ का वाचन करते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा का वर्णन कर रहे थे । शत्रुञ्जय का नाम सुनते ही माणेक की अन्तरात्मा में आनन्द की लहरें उठने लगी ।

माणेक शा ने भी अभी शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा नहीं की थी । उसने विचार किया कि शत्रुञ्जय तो जब मेरे भाग्य में होगा तभी जाऊँगा । क्यों न हो कि मैं यहाँ पर चार महीने गुरु निश्रा में रहकर शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा सुनूँ । ऐसा दृढ़ निश्चय मन ही मन करके उसने अपना व्यापार मुनिमों को सौंप दिया और स्वयं चार महीने आगरा में रहकर प्रवचन श्रवण और आराधना में व्यतीत करने लगा ।

गुरु ने प्रवचन में गिरिराज की महिमा का वर्णन करते हुए कहा कि चौदह राजलोक में शत्रुञ्जय जैसा कोई तीर्थ नहीं है । यह शाश्वत तीर्थ है, इस तीर्थ के कंकर-कंकर में अनन्ता आत्माएँ मोक्ष गई हैं । पापी और अभवी आत्माएँ

इस तीर्थ की स्पर्शना भी नहीं कर सकते । जिसने इस तीर्थ की स्पर्शना नहीं की उसका अभी जन्म ही नहीं हुआ वह तो अभी माँ के गर्भ में ही माना जाता है ।

इन शब्दों ने माणिक शा के हृदय में व्याकुलता उत्पन्न कर दी । उसने गुरु चरणों में हाथ जोड़कर विनती की— गुरुदेव ! शत्रुञ्जय गिरिराज की महिमा सुनकर मेरा मन मेरे हाथ में नहीं रहा है । कब जाऊँ, कब दादा को भेंटूँ, कब पवित्र तीर्थ भूमि की स्पर्शना करूँ ? बस यही लगन लगी हुई है ।

गुरुदेव मेरी इच्छा है कि मैं आगरा से पैदल चलकर पालीताणा पहुँचू जब तक दादा का दर्शन नहीं होगा तब तक मेरा चारों प्रकार के आहार का त्याग, ऐसी आपश्रीजी मुझे प्रतिज्ञा दे दीजिए ।

आचार्य श्री हेमविमलसूरिजी उसकी ऐसी शुभ भावना को देखकर हृदय से अनुमोदना करते हुए बोले, हे महानुभाव ! कहाँ आगरा और कहाँ पालीताणा । दोनों के बीच सैकड़ों मील का अन्तर । रास्ते में गर्मी, सर्दी सहन करनी पड़ेगी, अपरिचित मार्ग में अनेकों कष्टों तथा संकटों को सहन करना पड़ेगा अतः प्रतिज्ञा लेने से पूर्व चारों तरफ का विचार करो ।

गुरुदेव के शब्दों को सुनकर माणिक शा ने हाथ जोड़कर कहा— गुरुदेव ! आप जैसे समर्थ सूरि भगवान का हृदय से आशीर्वाद मेरे साथ हो तो मुझे क्या चिन्ता ? अन्न—पानी तो इस जीव ने अनन्तकाल में अनन्तों बार ग्रहण किया है । गिरिराज की यात्रा करते हुए, तीर्थाधिराज का ध्यान धरते हुए यदि मेरे प्राण भी चले जाएँ तो भी मुझे कोई डर नहीं है ।

माणिक शा के दृढ़ संकल्प को देखकर गुरु महाराज ने आशीर्वाद सहित प्रतिज्ञा दे दी । वह भी शुभ दिन था आश्विन सुदि पंचमी का ।

चातुर्मास पूर्ण हुआ । दूज के दिन सेठ माणिक शा ने गुरु भगवन्त का आशीर्वाद लेकर जय शत्रुञ्जय — जय आदिनाथ नारे के साथ गिरिराज की तरफ प्रयाण किया । एक तरफ सेठ माणिक के उपवास आगे बढ़ने लगे और

दूसरी तरफ प्रवास आगे बढ़ने लगा । रात-दिन उसके कदम तीव्र गति से आगे बढ़ने लगे । रास्ते में अनेकों कष्टों का सामना करता हुआ, दादा को याद करता हुआ एक दिन माणेक शा सिद्धपुर के पास मगरवाड़ा प्रदेश में पहुँच गया।

मगरवाड़ा के आस-पास का प्रदेश भयग्रस्त था । उस प्रदेश में खूब झाड़ियाँ थीं, जिसमें चोर, डाकू, लुटेरे छिपे रहते थे और आने-जाने वाले मुसाफिरों को लूट लेते थे । माणेक शा सिद्धगिरि का ध्यान करता हुआ बड़ी सावधानी से आगे बढ़ रहा था । जैसे ही वह भयानक जंगल के बीच झाड़ियों के पास से गुजर रहा था कि चारों तरफ से मुँह को बान्धे हुए कितने ही लुटेरे उसके पीछे आकर बोलने लगे अरे ! वाणियाँ जहाँ है वहाँ पर खड़ा हो जा, तेरे पास जो कुछ भी है वह हमें सब दे दे । जरा भी इधर-उधर गया तो तुझे तलवार से मौत के घाट उतार दिया जाएगा ।

सेठ माणेक शा गिरिराज के ध्यान में मस्त था, लुटेरों की पड़कार को सुने बिना ही वह आगे बढ़ गया । चोरों ने सोचा जरूर इस सेठ के पास बहुत ज्यादा माल होगा इसीलिए यह हमारी बात को सुनी अनसुनी करके चला जा रहा है । अब इसे सजा देनी ही पड़ेगी । ऐसा सोचकर चोरों ने अपनी तलवार कालकर पीछे से सेठ के शरीर पर जोर से मारी । जिससे एक शरीर के तीन टुकड़े हो गए । सेठ के मुख से जय शत्रुञ्जय, जय आदिनाथ शब्द निकले और प्राण पखेरू उड़ गए । माणेक शा सेठ का शरीर- मस्तक, धड़ और पैर तीन भागों में बँट गया । यह दिन था विक्रम संवत् 1565 पौष वदि चौदस का ।

अन्त समय शुभ भावों से मरकर सेठ माणेकचन्द्र व्यन्तर निकाय के छोटे इन्द्र श्री माणिकभद्र यक्ष के रूप में उत्पन्न हुए ।

सेठ माणेक शा की मृत्यु का समाचार हवा की भाँति चारों तरफ फैल गया । सेठ के परिवार वालों को सुनकर बहुत भारी आघात लगा जो कि असहनीय था । इसके साथ ही धर्मनिष्ठ आत्मा की इस प्रकार की मृत्यु को सुनकर आचार्यश्री हेमविमलसूरीश्वरजी महाराज को भी आघात तो लगा परन्तु

जितना दुख था उतना दूसरे पक्ष का सुख भी था कि सेठ जीवन को धर्ममय बनाकर और अन्तिम समय सिद्धगतिदायक सिद्धगिरि के ध्यानपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ है ।

आचार्यश्री हेमविमलसूरिजी अभी आगरा में ही विराजमान थे । चातुर्मास पूर्ण होने के बाद अभी विहार नहीं किया था । इसी बीच जोरदार जरबदस्त मुसीबतों की आँधी आ गई ।

जब से लोकागच्छ के यतियों को समाचार मिला कि श्री हेमविमलसूरिजी ने माणेक शा को पुनः सत्य धर्म में स्थिर कर दिया है वह पुनः जिन पूजा, गुरु-भक्ति और जिनवाणी का श्रवण करता हुआ हठव्रती बन गया है । तभी से वे यति श्री हेमविमलसूरिजी के प्रति ईर्ष्या को धारण करने लगे । क्योंकि वे सोच रहे थे कि यदि माणेक शा जैसा व्यक्ति हमारे पक्ष में आ गया तो दूसरे हजारों लोग हमारे पक्ष को मानने वाले हो जाएँगे । परन्तु उनकी सारी आशाएँ आचार्यश्री हेमविमलसूरिजी के कारण धूल में मिल गई । इसलिए लोकागच्छ के यति उनको जहरी नाग की भाँति क्रोध भरी दृष्टि से देख रहे थे वे किसी भी प्रकार वैर का बदला लेने के लिए तड़प रहे थे इसलिए उन्होंने मन्त्र साधना का प्रयोग करके काले गोरे भैरव को अपने वश में किया ।

यतिनायक ने एक दिन भैरव देव को याद किया कि वह तुरन्त हाजिर हो गया और बोला— आपने मुझे क्यों याद किया ? जो कार्य हो कहिए, मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हूँ ।

सत्तावाही स्वर से यति श्री ने कहा— कि तुम आचार्य हेमविमलसूरिजी के साधुओं को समाप्त कर दो । मन्त्र शक्ति से बन्धे हुए देव ने तथास्तु कहा और चला गया ।

दूसरे ही दिन काले-गोरे भैरव ने यति की आज्ञा का पालन करने के लिए आचार्य श्री हेमविमलसूरिजी महाराज के विशाल साधु समुदाय में से एक साधु के शरीर में प्रवेश किया । प्रेत योनी का प्रवेश होते ही वह साधु सारा दिन चारों

तरफ घूमने लगा । निर्दयी रीति से घुमा-घुमाकर दूसरे दिन उस साधु को भैरव देव ने परलोक पहुँचा दिया । इस प्रकार प्रतिदिन एकेक साधु की अति करुण रीति से मृत्यु (कालधर्म) होने लगी ।

आचार्य हेमविमलसूरिजी महाराज के लिए अपने साधु परिवार की यह यातना असह्य हो गई । यद्यपि वे जानते थे कि मृत्यु एक दिन सभी के जीवन में आने वाली ही है कोई उसे रोक नहीं सकता परन्तु प्रतिदिन एकेक साधु का इस प्रकार कालधर्म होना वह देख न सके । साधुओं की इस प्रकार की भयंकर मृत्यु को रोकने के लिए किसी औषधि ने भी काम नहीं किया । सभी उपाय अशक्य हो गए । कोई भी इसके भेद को जान न सका ।

अन्त में आचार्य हेमविमलसूरिजी ने ज्ञान निमित्त से विचार करके इस उपद्रव को दूर करने के लिए शासन देवी की आराधना की । शासन देवी ने प्रगट होकर कहा— गुरुदेव ! कहिए आपने मुझे क्यों और किसलिए याद किया ?

गुरुदेव बोले ! हे शासन देवी ! तुम सदैव जागृत अधिष्ठायिका हो, पिछले कई दिनों से समुदाय के त्यागी, तपस्वी अनेक मुनिवर किसी मैली शक्ति के वशीभूत होकर मरण की शरण जा रहे हैं । आपका ध्यान इस तरफ क्यों नहीं गया, अभी देखो सारा संघ भयाक्रान्त है, दुःखी है, निरुपाय है, हे देवी— अब आप यह बताओ कि यह उपद्रव कौन कर रहा है और यह कब शान्त होगा ?

देवी ने कहा— गुरुदेव ! आप शान्त हो जाइए, मेरे अपराध को क्षमा कीजिए, इस उपद्रव के पीछे कोई देवी शक्ति है । उस देवी शक्ति को प्रेरित करने वाली मानवीय शक्ति की मन्त्र साधना है । हे भगवन ! आप भी चिंता मत कीजिए । यहाँ से विहार करके जब आप गुजरात की तरफ जाओगे तब आपको इस उपद्रव को दूर करने वाले देव का प्रत्यक्ष दर्शन होगा ।

देवी के इस प्रत्युत्तर से आचार्य श्री के मन का कुछ समाधान हुआ । अपने

परिवार के दस-दस साधुओं का निर्दयी रीति से घात होने के कारण अब उनका मन आगरा शहर में उदासीन रहने लगा ।

सूरिजी ने एक शुभ दिन अपने साधु परिवार के साथ आगरा से गुजरात की तरफ विहार कर दिया । अनेकों गाँव, नगर, शहरों में होते हुए एक शुभ दिन गुजरात की धरती पर पहुँच गए । पालनपुर से विहार करके जैसे ही मगरवाड़ा की धरती पर चरण रखते ही उनको सेठ माणेक शा की स्मृति आ गई । सेठ की स्मृतियों के साथ ही गुरुदेव ने मगरवाड़ा में प्रवेश किया । सूरिजी ने अद्भुत तप की आराधना की । नित्यक्रम अनुसार ध्यानावस्था में मग्न हो गए । दिनभर माणेकचन्द सेठ का हो रहा आभास रात्रि के समय एकदम स्पष्ट हो गया । एक अद्भुत देहाकान्ति से देदीप्यमान एक देव आकृति गुरुदेव के समक्ष प्रगट हुई ।

उसकी देह श्यामल वर्ण से युक्त थी, दर्शन मन को आनन्द देने वाला था, सूर्य जैसा तेजस्वी उसका मुख था, मस्तक पर सुनहरी बाल थे, कमल की पाँखड़ी जैसी उसकी आँखें थीं, पूर्णिमा के चाँद जैसा मुस्कुराता चेहरा था, मस्तक पर तेजस्वी लालवर्ण का मुकुट प्रकाश फैला रहा था, विविध अलंकारों से उसकी देह शोभायमान हो रही थी, उसके हाथ, पैर, नाक, नख, जीभ, होंठ लालवर्ण युक्त थे । श्वेत वर्ण के ऐरावत हाथी पर विराजमान थे ।

ऐसी सुन्दर देव आकृति ने भक्ति भाव भरी वाणी से कहा— गुरुदेव ! क्या आपने मुझे पहचाना ? गुरुदेव टकटकी लगाकर देखने लगे । देव बोला— गुरुदेव ! मैं आपका भक्त माणेक । इसी भूमि पर मृत्यु प्राप्त करके मैं मणिभद्र नाम का यक्ष बना हूँ । मैं व्यन्तर निकाय का छठा इन्द्र हूँ । मेरी सेवा में चार हजार सामानिक देवता, सौलह हजार आत्मरक्षक देवता, तीस हजार तीन पर्षदा के देव हैं । इसके अतिरिक्त असंख्य अभियोगिक देवता हैं । 52 वीर और 64 योगिनियाँ मेरी आज्ञा के अधीन हैं । माणेकचन्द से मुझे मणिभद्र यक्ष बनाने वाली आपकी कृपा ही है । यक्षेन्द्र रूप में अवतार मिलने पर भी मैं तो आपकी चरण-रज बनने में ही धन्यता का अनुभव करूँगा । आपश्रीजी

के मुझ पर अनन्ता उपकार हैं । उन उपकारों से कुछ ऋण मुक्ति के लिए मैं आपश्री के चरणों में उपस्थित हुआ हूँ । मेरे योग्य कोई कार्य सेवा हो तो कृपा कीजिए ।

आचार्य भगवन्त ने कहा— हे मणिभद्र ! आगरा चातुर्मास के बाद हमारे समुदाय के साधुओं पर आपत्ति रूपी तूफानों की आँधी आ गई है । मेरे दस-दस शिष्य मुनिवर चित्त भ्रमित बनकर मरण की शरण चले गए हैं । अभी भी एक मुनिराज चित्त भ्रम से पीड़ित होकर पागल की तरह घूम रहे हैं । हे इन्द्रराज ! मुनियों पर आए हुए इस घोर उपसर्ग के कारण को खोजकर उसका निवारण कीजिए और शासन की रक्षा हेतु अपनी शक्ति का सदुपयोग कीजिए ।

गुरु वचनों को सुन तुरन्त मणिभद्रजी ने कहा गुरुदेव ! आपश्रीजी निश्चिन्त हो जाइये । आप पर आए विघ्नों का शीघ्र ही निवारण हो जाएगा ।

मणिभद्रजी ने अवधिज्ञान में उपयोग देकर जाना कि इस उपद्रव को करने वाले दूसरे कोई नहीं परन्तु मेरी सेना के मेरे ही सेवक काला-गोरा भैरव हैं । दोनों को बुलाकर मणिभद्रजी ने कहा— अरे देवता के वेश में दानव को भी न शोभे ऐसे क्रूर कृत्य तुम क्यों कर रहे हो ? देवात्मा बनकर पापात्मा जैसे पाप कृत्य करते तुम्हें लज्जा नहीं आती । तप, त्याग और संयममय जीवन जीने वाले, सम्यग् ज्ञान द्वारा जगत जीवों को प्रकाशमय बनाने वाले, ऐसे महामुनि तो भक्ति के पात्र हैं और तुम उनको मृत्यु के मुख में क्यों भेज रहे हो ?

काले-गोरे भैरव ने कहा— स्वामीनाथ ! हम आपके सेवक हैं, आप हमारे स्वामी हैं । परन्तु लोकागच्छ के आचार्य ने हमारी उपासना करके मन्त्रशक्ति से हमें बान्ध लिया है, हमने भी उनको वचन दे दिया है कि तुम्हारी इच्छानुसार हम धीरे-धीरे आचार्य हेमविमलसूरिजी और उनके साधुओं को चित्त भ्रमित करके मरण की शरण भेज देंगे । हम जानते हैं कि यह हमारा पाप कार्य है, फिर भी आपके क्रोध का भाजन बनने पर भी उनके वचनबद्ध होने से हम यह



कृत्य छोड़ नहीं सकते । आप ही कहिए हम उनके साथ वचनद्रोह कैसे कर सकते हैं ?

मणिभद्रजी ने आवेश में आकर कहा— हे भैरव देवों ! तुम वचन द्रोह नहीं परन्तु स्वामी द्रोह कर सकते हो ? यदि तुम इस दुष्टकृत्य से पीछे नहीं हट सकते तो मेरे साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ । इस प्रकार के पड़कार को सुनकर काले गोरे भैरव और मणिभद्रजी का परस्पर युद्ध हुआ । अल्प समय में ही दोनों पराजित हो गए और मणिभद्रजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगते हुए बोले— हे स्वामी ! हमारा अपराध क्षमा करो । अब हम कभी भी आपके उपकारी गुरुदेव और उनके साधुओं को जरा भी हैरान नहीं करेंगे । परन्तु हमारी आपसे एक विनती है कि आपश्रीजी की जहाँ—जहाँ स्थापना हो वहाँ—वहाँ आपके सेवक के रूप में हमारी भी स्थापना होनी चाहिए । मणिभद्रजी ने मुस्कुराते हुए उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया । उसी दिन से आचार्यश्रीजी के शिष्यों पर हो रहा उपद्रव सदा के लिए दूर हो गया । बीमार साधु भी स्वस्थ हो गए ।

तत्पश्चात् मणिभद्र इन्द्र श्री हेमविमलसूरिजी के चरणों में उपस्थित होकर सविनय बोले— हे गुरुदेव ! आप अभी जिस रायण वृक्ष के नीचे विराजमान हैं इसी जगह पर मेरी देह निष्चेष्ट हुई थी, आपश्रीजी के पुण्य प्रभाव से ही मैं यक्षेन्द्र मणिभद्र बना हूँ । कृपा करके इसी स्थल पर आपश्रीजी मेरे पैर की पिण्डी की स्थापना कीजिए और मन्त्राक्षरों द्वारा उसकी प्रतिष्ठा विधि कराइये । यह मेरी एकमात्र इच्छा है ।

आचार्य भगवन ने अपनी अनुमति देते हुए कहा— हे यक्षराज ! जैसे अभी आपने हमारी सहायता की है वैसे ही भविष्य में समस्त तपागच्छ के ऊपर कोई संकट न आए उसके लिए सदैव जागृत रहना । क्योंकि तपागच्छ को सुरक्षित रखने के लिए किसी देवी बल की अपेक्षा है और वह अपेक्षा आप ही पूरी कर सकते हो ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है ।

चकोर को टकोर ही पर्याप्त होती है । मणिभद्रजी ने कहा— गुरुदेव !

वस्तुतः आज मैं अपने आपको भाग्यशाली मानता हूँ, आज मैं धन्य-धन्य हो गया हूँ ऐसा संघ का सुरक्षा कार्य भाग्यशाली के ही हाथ में आता है । इसी क्षण में आपश्रीजी के समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तपागच्छ के रक्षा सुरक्षा का कार्य अपना कर्तव्य समझकर सदैव करता रहूँगा, परन्तु मेरी भी आपश्रीजी से एक नम्र विनती है कि आपश्रीजी जानते ही हैं कि देवगति तो मौज मजा मनाने वाली गति है । इस मौज मजा में मस्त होकर कहीं मैं कर्तव्य भ्रष्ट न हो जाऊँ इसलिए तपागच्छ की पौषधशाला में मेरी स्थापना कराना जिससे भक्तों की प्रार्थना के प्रभाव से मैं सदा सजग सावधान रहूँगा । इसके साथ ही तपागच्छ में जब कोई भी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो तो कम से कम एक बार मुझे जरूर धर्मलाभ तथा दर्शन देने के लिए मगरवाड़ा पधारे । धर्मलाभ के आशीर्वाद को पाकर मेरा जीवन कृतार्थ बन जाएगा । मेरा सम्यक् दर्शन निर्मल बनेगा और जिनशासन की रक्षा और प्रभावना में मैं सहायक बनूँगा ।

आचार्यश्री हेमविमलसूरिजी महाराज ने मणिभद्र यक्ष की दोनों बातों को स्वीकार किया । जिससे मणिभद्र यक्ष प्रसन्न हो गए । गुरु चरणों की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ । इससे स्वयं को धन्य मानते हुए यक्षराज अदृश्य हो गए ।

महासुदी पंचमी के शुभ मुहूर्त में आचार्य श्रीजी ने मगरवाड़ा गाँव के बाहर योग्य स्थान पर मणिभद्रजी के पाँव की पिण्डी की स्थापना कराई और मन्त्रोच्चारण करके प्रतिष्ठा विधि कराई । आज भी मगरवाड़ा भूमि का यह स्थान प्रभावशाली है और मगरवाड़ा वीर के नाम से मणिभद्रजी की महिमा सुप्रसिद्ध है ।

आचार्य भगवन ने प्रतिष्ठा प्रसंग पूर्ण होने के बाद जिनशासन के अधिष्ठायक मणिभद्रवीरजी को तपागच्छ रक्षक की पदवी अर्पित की, जिससे मणिभद्रजी परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए ।

श्री मणिभद्रजी की कथानुसार इनके तीन स्थान हैं ।

1. मालवा में उज्जैन इनकी जन्मभूमि है । बावन वीरों के साथ रहने वाली भूमि में बहुत बड़े वटवृक्ष के नीचे मणिभद्रवीरजी का मस्तक पूजा जाता है ।

2. गुजरात में बीजापुर के पास आगलोड़ गाँव में वटवृक्ष के नीचे वीरजी ने स्वयं ही अपना स्थान माँगा था वहाँ पर मणिभद्रवीरजी का धड़ पूजा जाता है ।

3. गुजरात में पालनपुर के पास मगरवाड़ा इनकी स्वर्गभूमि है । गुरु आज्ञा से उन्होंने वहाँ पर निवास किया है अतः यहाँ पर श्रीमणिभद्रवीरजी के चरण पूजे जाते हैं ।

आगलोड़ में वीरजी के धड़ की स्थापना करने वाले आचार्य श्री शान्तिसोमसूरीश्वरजी म. थे । उन्होंने श्री मणिभद्रवीरजी को प्रत्यक्ष करने के लिए 121 उपवास की दीर्घ साधना की थी । तब मणिभद्रवीरजी ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था । वीरजी के कथनानुसार आचार्यश्रीजी ने वि. सं. 1733 महासुदी पंचमी के शुभ दिन आगलोड़ नगर के बाहर मणिभद्रवीरजी द्वारा बताए हुए स्थान पर मिट्टी से बने हुए पिण्ड का धड़ स्थापित किया । आचार्य श्री शान्तिभद्रसूरिजी ने ही उनकी प्रतिष्ठा कराई थी । तभी से आगलोड़ में मणिभद्रजी की महिमा अत्यन्त वृद्धिगत हुई ।

पूज्य आचार्य भगवन्त को मणिभद्रजी ने कहा कि आचार्य पदवी होने के बाद जो भी गुरु भगवन्त मगरवाड़ा तक न जा सके वे आगलोड़ आकर भी यदि आराधना करें और मुझे धर्मलाभ की आशीष दें मैं उनकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करूँगा और जिनशासन की प्रभावना में सदैव सहायता करता रहूँगा ।

आचार्य हेमविमलसूरिजी महाराज वि. सं. 1583 आसो सुदी तेरस को वीसनगर में कालधर्म का प्राप्त हुए । इन्होंने यक्षाधिराज मणिभद्रजी की सहायता से संघ, शासन और समुदाय के बहुत कार्य किए । इनके कारण ही तपागच्छ थोड़े ही समय में खूब सुरक्षित और संवर्धित बना ।

इनके पाट पर विराजमान पूज्य श्री आनन्दविमलसूरिजी महाराज ने भी

गुरु की प्रभाविकता को अत्यधिक आगे बढ़ाया । इन्होंने वर्षों से प्रतिबन्धित मारवाड़, सौरठ आदि की तरफ का विहार क्षेत्र खुल्ला कराया । साधु-साध्वीजी के विचरण के अभाव से जैसलमेर तरफ से लगभग 64 जितने जिन मन्दिर कण्टकाकीर्ण बन चुके थे जहाँ पर जाना भी दुर्गम था । आचार्य आनन्दविमलजी ने शिष्य परिवार सहित वहाँ पर जाकर लोगों को मूर्ति पूजा की महिमा को, परमात्म भक्ति को समझाया । जिससे वर्षों से बन्द पड़े मन्दिरों में पुनः पूजा सेवा, भक्ति, आराधना चालू हो गई । सौराष्ट्र में गुरुओं का विचरण प्रारम्भ होने से लुंपकमत का प्रचार घटने लगा इतना ही नहीं लुंपकमत के 78 जितने साधुओं ने कुमत का त्याग करके तपागच्छीय दीक्षा को इनके वरदहस्त से स्वीकार किया । जिससे मूर्ति पूजा की महिमा सर्वत्र व्याप्त हो गई ।

मन्त्री कर्माशा द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ का 16वाँ उद्धार भी आचार्य आनन्दविमल-सूरिजी के सदुपदेश से ही हुआ । 1587 वैशाख वदि छठ रविवार को शत्रुञ्जय का आज तक का उद्धार इतिहास में अंकित है ।

श्री आनन्दविमलसूरिजी महाराज का तपोमय जीवन आश्चर्य युक्त है । 14-14 वर्ष तक छोटे-बड़े अनेकों तप किए । तत्पश्चात् छठ के पारणे आयम्बिल से छठ का भीष्म अभिग्रह धारण किया । अन्त में मर्यादित अनशन स्वीकार करके अन्तिम आराधना करते हुए अहमदाबाद निजामपुरा में वि. सं. 1596 चैत्र सुदी सप्तमी की प्रभात में देह त्याग किया । उस दिन उनका नवमा उपवास था । इनकी पाट पर अनुक्रम से श्री दानसूरिजी महाराज, श्री हीरविजयसूरिजी महाराज, श्री विजयसेनसूरिजी महाराज जैसे धुरन्धर आचार्य हुए ।

आचार्य हेमविमलसूरिजी तथा आचार्य आनन्दविमलसूरिजी इन दोनों ने शासन की रक्षा और प्रभावना के लिए अनेकों कार्य किए। इनकी सम्पूर्ण आराधना और प्रभावना के मूल में दो महत्वपूर्ण कारण थे । एक तो यक्षराज मणिभद्र की शासन रक्षक देव तरीके प्रतिष्ठा तथा दूसरी उत्कृष्ट संयम पालन के साथ किया हुआ क्रियोद्धार । इन्हीं के प्रभाव के कारण तपागच्छ परम्परा की

पताका गगनचुम्बी बनकर लहरा रही है और इनके उपकार की गंगोत्री अविरल रूप प्रवाहित हो रही है ।

आज भी भारत के जैन मन्दिरों में, उपाश्रयों में श्री मणिभद्रवीरजी की सुन्दर देहरी, गोखले निर्मित हैं जिसमें सिन्दूर, मिट्टी, पाषाण, पंच धातु आदि के विविध मुद्रा में दर्शनीय पिण्ड और प्रतिमाएँ सुशोभित हो रही हैं ।

तपागच्छ अधिष्ठायक, प्रगट प्रभावी, एकावतारी, भद्र परिणामी श्री मणिभद्रजी को हमारी प्रार्थना है कि—

हे यक्षाधिराज ! विक्रम की सोलहवीं सदी से भी इक्कीसवीं सदी का वातावरण अधिक विकृत है अतः आज के इस विषमकाल में आपकी अत्याधिक आवश्यकता है अतः पधारो— पधारो, रक्षा करो, रक्षा करो, तपागच्छ पर अपनी कृपादृष्टि की वृष्टि करो यही आपसे अभ्यर्थना है ।

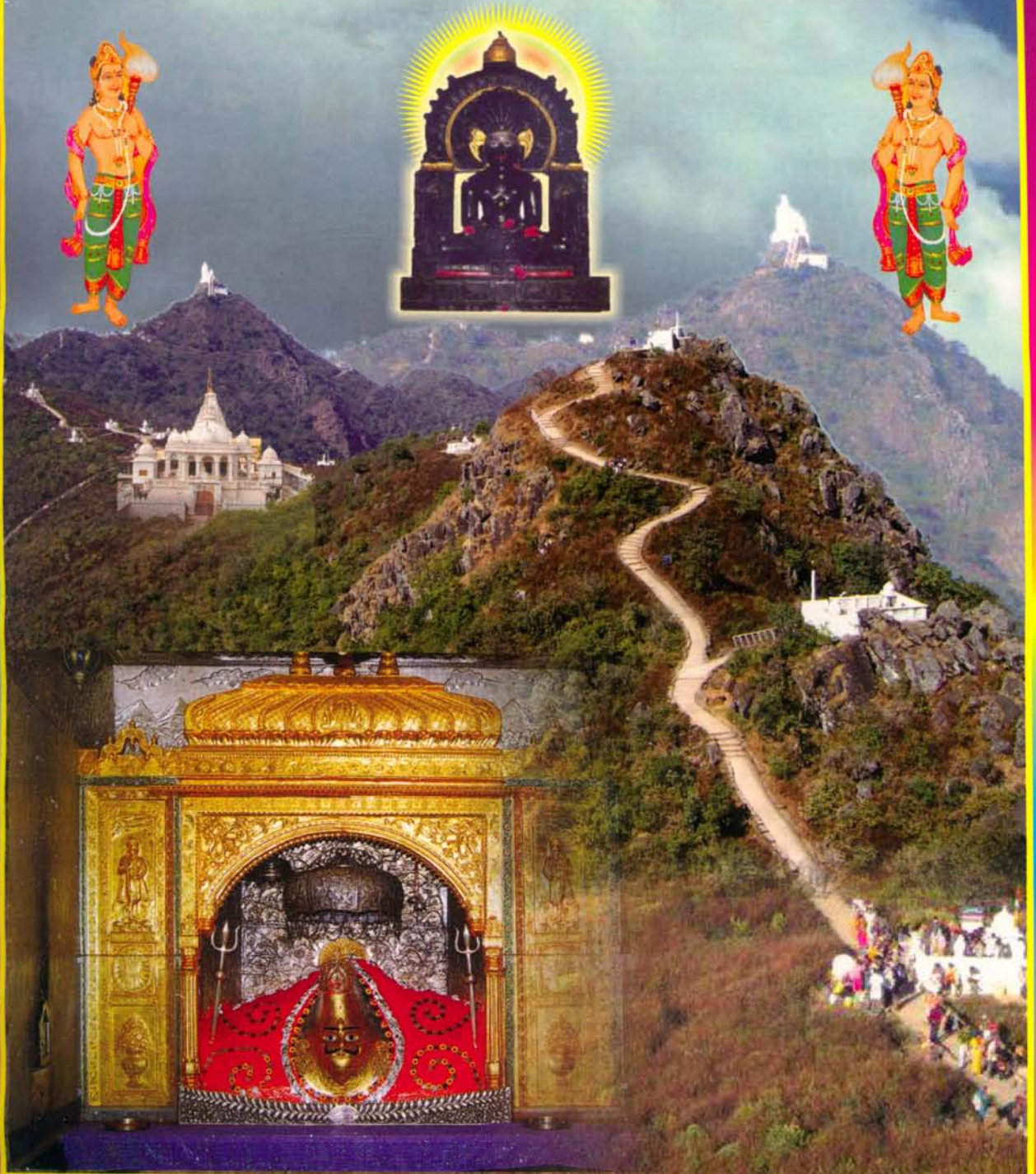
अंधियारे तमे घोरे, चिद्वृत्ति पाणिणो बहु ।  
को करिस्सई उज्जोसं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥

उत्तमध्ययन 23/25

आज चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया है, सीधे-सादे और भद्र जीव इस अन्धकार में इधर-उधर भटक रहे हैं । इस भयंकर अन्धकार की कालरात्रि का कब अन्त होगा ? कौनसा सूर्य इस पृथ्वी पर प्रकाश की रश्मियाँ बिखेर कर, इस संसार को आलोकित करेगा ।



# वीस तीर्थकर निवारण भूमि श्री सम्मेशिखरजी तीर्थ



सौ  
ज  
न्य

श्रीमती प्रभावहिन-दविन्द्रकुमार, इन्दू-मनीषकुमार,  
निधि-अरुणकुमार जैन कास्को परिवार, गुड़गाँव, दिल्ली



## सम्मेतशिखर तीर्थ तथा अधिष्ठायक श्री भोमियाजी देव

बीस-बीस तीर्थकरों की निर्वाण भूमि सम्मेतशिखर तीर्थ के नाम से कोई भी अपरिचित नहीं है । ऋषभदेव भगवान, वासुपूज्य स्वामीजी, नेमीनाथ प्रभु और चरम तीर्थपति भगवान महावीर स्वामीजी को छोड़कर शेष बीस तीर्थकरों ने इसी भूमि पर निर्वाण पद को प्राप्त किया था । प्राचीनकाल में सम्मेतशिखर पहाड़ की बीस टूँकों पर भव्य जिन मन्दिर बने हुए थे । किन्तु विधर्मी आक्रमणों के कारण मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होकर विध्वंस हो गए । नवीं शताब्दी में वनवासी गच्छ के आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरिजी महाराज ने इन्हीं निर्वाण स्थलों पर स्तूपों की स्थापना कराई । विक्रम सम्वत् 1526 में आगरा के सेठ कुमारपाल सोनपाल लोढ़ा ने इसका जीर्णोद्धार कराया । मुर्शिदाबाद के सेठ फतेहचन्द के पुत्र जगत सेठ महताबराय ने विक्रम सम्वत् 1812 में इस पारसनाथ पहाड़ को कर मुक्त घोषित कराया । सेठ की प्रबल भावना थी कि इसका जीर्णोद्धार कराया जाए और चरण पादुका स्थापित की जाए । परन्तु योगानुयोग उनका अचानक देहवसान हो गया । जीर्णोद्धार की योजना अधूरी रह गई ।

जगत सेठ के दो पुत्र थे सेठ खुशालचन्द तथा सेठ सुगानचन्द । बादशाह आलम ने वि. सं. 1822 को सेठ खुशालचन्द को जगत सेठ की पदवी दी । तीर्थ के जीर्णोद्धार का कार्य चालू हो गया ।

जगत सेठ खुशालचन्द जीर्णोद्धार का कार्य देखने के लिए मुर्शिदाबाद से हाथी पर बैठकर आया जाया करते थे । इसी बीच पंन्यासप्रवर श्री देवविजयजी गणि सम्मेतशिखर की यात्रा के लिए पधारे । जगत सेठ खुशालचन्द ने गुरु के पास जाकर वन्दन आदि करके कहा— पूज्य गुरुदेव जी ! मेरी भावना है प्रत्येक तीर्थकरों के निर्वाण स्थल पर उनकी चरण पादुकाएँ स्थापित की जाएँ । परन्तु मूल स्थान कौन-सा है इसका निर्णय कैसे और कौन करें ?



पंन्यासजी ने कहा— सेठजी ! आप अद्धम तप करके प्रभु पार्श्वनाथ की अधिष्ठायाका देवी पद्मावती की आराधना करो । यह मन्त्र है, इसका जाप करो ।

गुरु महाराज के आदेशानुसार जगत सेठ ने अद्धम तप करके मन्त्र पाठ से देवी की आराधना की । प्रसन्न होकर देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया । और कहा—हे वत्स ! मुझे क्यों याद किया है ? जगत सेठ ने अपने मन का संकल्प देवी के सामने रख कर कहा— हे मात ! मुझे मार्गदर्शन दो ।

माता पद्मावती ने कहा— प्रातःकाल तुम पहाड़ पर जब जाओगे तब जहाँ—जहाँ पर केसर के स्वास्तिक दिखाई दें वही स्थान तीर्थकरों के निर्वाण स्थल समझना ।

सेठ ने कहा— माँ ! मुझे यह कैसे प्रतीत होगा कि किस तीर्थकर का निर्वाण स्थल कहाँ है ? देवी ने कहा— वत्स ! जिस स्थान पर जितने स्वास्तिक हो उसी संख्यानुसार भगवान के निर्वाण स्थल समझ लेना । इतना कह पद्मावती माताजी अन्तर्धान हो गई ।

प्रातःकाल स्नान आदि करके पूजा सामग्री साथ लेकर जगत सेठ परिवार सहित पहाड़ पर चढ़े । स्वप्न के अनुसार जहाँ पर जितनी संख्या में केसर के स्वास्तिक देखे वहाँ—वहाँ पर सेठ ने उसी तीर्थकर का नाम अंकित कर दिया ।

यात्रा करके वापिस आकर सेठ ने पंन्यास श्री देवविजयजी को स्वप्न सम्बन्धी तथा पहाड़ पर नाम अंकित सम्बन्धी सारी बातें बताई । गुरुदेव ने प्रसन्न होकर कहा— सेठजी ! आप तो महान पुण्यशाली हैं जो कार्य बड़े—बड़े आचार्य नहीं कर सके वह आपने कर दिया है । सेठ ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा— गुरुदेव ! मुझमें जरा भी शक्ति नहीं है यह सब तो आपश्रीजी की कृपा एवं आशीर्वाद से ही हुआ है ।

जीर्णोद्धार का कार्य तेजी से प्रारम्भ हो गया । सैकड़ों कारीगर तथा मजदूर काम में लग गए । जगत सेठ ने देवी की सूचनानुसार निर्वाण स्थलों पर उसी-उसी तीर्थकर की देहरी बनवा कर उसमें उसी भगवान की चरण पादुकाएँ स्थापित कराईं। पहाड़ पर जहाँ जलकुण्ड था वहाँ पर जलमन्दिर बनवाया । उसमें भव्य जिनालय बनवाकर शामलिया पार्श्वनाथ आदि प्रभु प्रतिमाओं की स्थापना की । विक्रम सम्बत् 1825 में माघ सुदी पंचमी के शुभ दिन शुभ मुहूर्त में भगवान महावीरस्वामीजी की 66वीं पाट परम्परा में विराजित पूज्य श्री धर्मसूरीश्वरजी के करकमलों से सभी देहरियों में चरण पादुका तथा जलमन्दिर में जिन बिम्बों की भव्य प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई ।

सम्मेतशिखर तीर्थ के 20 उद्धार तो वीस तीर्थकरों के समय में ही हुए थे । 21 वाँ उद्धार जगत सेठ खुशालचन्द के हाथों सम्पन्न हुआ । इस उद्धार के पश्चात् प्राकृतिक उपद्रवों के कारण अनेक चरण पादुकाएँ क्षत-विक्षत हो गई । तब क्रलकत्ता, अजीमगंज, मुर्शीदाबाद, अहमदाबाद संघों के परस्पर सहयोग से जीर्णोद्धार होते रहे । अन्तिम जीर्णोद्धार साध्वीश्री रंजनश्रीजी की प्रेरणा से आचार्य श्री माणेकसागरसूरिजी की निश्रा में वि. सं. 2017 को सम्पन्न हुआ ।

यह तीर्थ तन, मन को आच्छादित करने वाला आध्यात्मिक ऊर्जा से भरा हुआ है । इस तीर्थ के अधिष्ठायक देव भोमियाजी देव हैं, जिनके जीवन का इतिहास बहुत कम लोगों को मालूम है । तीर्थ वन्दना को जाने वाले यात्री पहाड़ पर चढ़ने से पहले सर्वप्रथम भोमियाजी देव के दर्शन करके जाते हैं । समकित धारी भोमियाजी देव तीर्थ यात्रियों की निर्विघ्न यात्रा में सहायक बनते हैं । यदि कोई रास्ता भूल जाए तो उसे श्वान के रूप में आकर मार्ग दर्शक बनते हैं और यदि कोई आशातना करे या दर्शन करके न जाए तो उसे मधुमक्खी के रूप में अपना परिचय देते हैं ।

तीर्थ रक्षक भोमियाजी देव कौन हैं ? कैसे बने ? इसका वर्णन चन्द्रशेखर रास में किया गया है । जो कि संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है—

वाराणसी नगरी में महसेन नाम के राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम यशोमती था । उनका एक पुत्र था जिसका नाम चन्द्रशेखर था । योग्य वय होने पर राजा ने उसे युवराज पद से विभूषित किया । चन्द्रशेखर धर्मपरायण, सुसंस्कारी तथा देव, गुरु, धर्म पर दृढ़ श्रद्धा रखने वाला था । एक बार महारानी तथा युवराज राजदरबार में सिंहासन पर बैठे हुए थे कि नगर के पाँच प्रमुख श्रेष्ठी राजा के पास उपहार लेकर आए । उन्होंने महाराजा को प्रणाम किया और भेंट देकर यथोचित स्थान पर बैठ गए ।

राजा ने पूछा— कहिए श्रेष्ठीवर ! सब कुशल मंगल तो है ? एक श्रेष्ठी ने सिर झुका कर कहा—राजन ! आपके राज्य में सभी तरह से आनन्द मंगल है । महाराज ! हम बनारस के श्रावकजन सम्मेलनशिखर तीर्थ की यात्रा करने जाना चाहते हैं आपकी आज्ञा लेने के लिए हम सभी आए हैं ।

राजा ने कहा— हे श्रेष्ठीवर ! आपका विचार बहुत अच्छा है । राज्य की तरफ से यदि कोई सहायता चाहिए तो वह भी आपको प्राप्त हो जाएगी । तभी पास में ही बैठे हुए युवराज चन्द्रशेखर ने पूछा— श्रेष्ठीवर ! सम्मेलनशिखरजी में आप किसको वन्दना करने के लिए जा रहे हो ? उन्होंने कहा— हे युवराज ! वैसे तो वह पवित्र तीर्थ बीस तीर्थकरो की निर्वाण भूमि है परन्तु विशेष रूप से हमारे निकट उपकारी 23वें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथजी ने 135 वर्ष पूर्व वहाँ मोक्ष प्राप्त किया है । हम उनका दर्शन वन्दन करने जा रहे हैं ।

राजा महसेन ने कहा— युवराज ! हम जिस गौरवशाली पवित्र वंश में उत्पन्न हुए हैं उसी वंश में ही पार्श्वनाथ भगवान का जन्म हुआ था । पिताजी ! हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमें उस वीतराग परमात्मा के वंश में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । धन्य है मेरा जीवन, हाथ जोड़कर कुमार ने कहा— हे प्रभु ! क्या मुझे भी इस जीवन में आपको वन्दन करने का पुण्य अवसर प्राप्त होगा ? क्या मैं इतना भाग्यशाली हूँ ?

युवराज की भावना को देखकर श्रेष्ठी बोले— हे युवराज ! यदि आपकी इतनी तीव्र भावना और इच्छा है तो आप भी हमारे साथ चलो । एक पंथ दो

काज होंगे ! निर्वाण भूमि को वन्दना और तीर्थ की स्पर्शना होगी तथा हमें आपका योग्य साथ मिलेगा ।

महारानी यशोमती भी युवराज चन्द्रशेखर की भावना को देख रही थी उसने हाथ जोड़कर राजा से कहा— स्वामीनाथ ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरी भी भावना है कल्याणक भूमि का दर्शन तथा स्पर्शना करने की । राजा बोला— महारानी ! इस शुभ कार्य के लिए कौन मना करेगा ? आप राजकुमार को लेकर तथा परिवार के अन्य कोई भी सदस्य जाना चाहे उन सबको साथ लेकर आप परमात्मा पार्श्वनाथ की निर्वाण स्थली पर अवश्य जाइये ।

राजा महसेन ने दण्ड अधिकारियों को आदेश देते हुए कहा कि जाओ राज परिवार की यात्रा की व्यवस्था कीजिए । अच्छे घोड़सवार तथा सुरक्षाकर्मी साथ में भेजना, क्योंकि मार्ग में भयंकर लम्बी अटवी तथा अनार्य प्रदेश पड़ता है इसीलिए सभी प्रबन्ध सुचारु रूप से करके चलो ।

शुभ मुहूर्त में महारानी, युवराज चन्द्रशेखर तथा युवराज्ञी आदि राज परिवार ने अनेकों सुरक्षाकर्मियों को साथ लेकर श्रेष्ठीवर्य प्रमुख श्रावक संघ के साथ पार्श्वनाथ भगवान का नाम स्मरण करके उनका जयघोष करके प्रस्थान किया । मार्ग में अनेक अटवियों को, भयानक जंगलों को पार करता हुआ यात्रा समूह सम्मत्शिखर की तलहटी पर पहुँच गया । युवराज ने घोड़े से उतरकर निर्वाण भूमि की मिट्टी को मस्तक पर लगाया और मन ही मन तीर्थ भूमि को प्रणाम करता हुआ बोला— धन्य है यह पवित्र भूमि जहाँ बीस तीर्थकरों ने अनेक भव्यात्माओं सहित मोक्ष पद को प्राप्त किया ऐसी भूमि का स्पर्श करके आज मेरा जीवन कृतकृत्य हो गया है ।

उसी समय सम्मत्शिखर की तलहटी क्षेत्र में स्थित पालगंज के राजा ने सपरिवार आकर उनका हार्दिक स्वागत किया । दूसरे दिन प्रातःकाल ही पालगंज नरेश के सुरक्षा सेवक आ गए और बोले— युवराज ! पहाड़ी का मार्ग अति विकट है, हम सुरक्षाकर्मी आपके साथ जाएँगे । आपकी सम्मत्शिखर की यात्रा में मार्गदर्शक बनेंगे ।

सुरक्षा कर्मचारियों के साथ समस्त राज परिवार और श्रावक वर्ग ने तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की । युवराज के मन में अति उल्लास था । मन में हर्ष समा नहीं रहा था । निर्वाण भूमि को भेटने की तीव्र उत्कण्ठा से तेज गति से आगे-आगे बढ़ रहे थे ।

मार्गदर्शकों ने ऊँची टोंच पर चढ़कर बताया— हे युवराज ! वह इस पर्वत की सबसे ऊँची टूँक है । तेइसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ भगवान का निर्वाण इसी स्थान पर हुआ था । अश्वारूढ़ हुए कुमार शीघ्र ही सुवर्ण भद्र टूँक पर पहुँचे । कुमार का हृदय हर्ष से गद्गद् हो रहा था । रोमराजी विकसित हो गई थी । कुमार ने तीन बार उस स्थान की प्रदक्षिणा दी । तत्पश्चात भाव विभोर होकर बोला— हे प्रभु ! आज मेरा जीवन धन्य हो गया । आपकी पवित्र निर्वाण भूमि का स्पर्श करके मेरे जन्म-जन्म के पापों का प्रक्षालन हो गया । युवराज की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे । भावों के प्रवाह में बहता हुआ राजकुमार नाचने लग गया । संध्या के समय सभी लोग वापिस पर्वत के नीचे तलहटी में आ गए ।

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराज ने मार्गदर्शकों से पूछा— क्या पहाड़ के सामने से ऊपर चढ़ने का कोई सीधा मार्ग नहीं है ? वे बोले— युवराज ! सीधा मार्ग अत्यन्त विकट है । यह देखो पहाड़ की सीधी चढ़ाई, आजू-बाजू गहरी खाइयाँ, सघन झाड़ियाँ और उसमें छिपे हुए सिंह, भालू आदि जंगली जानवर । यह सीधा मार्ग अति विकट है । सभी यात्री पीछे-से होकर ही पहाड़ पर जाते हैं ।

युवराज चन्द्रशेखर ने कहा— भैया ! कोई बात नहीं, हमें वह सीधा मार्ग बताओ । हम उसी रास्ते से आज जाएँगे । देखो कुमार! वह सामने सीता नाला है, उसके पास ही ऊपर जाने के लिए एक सीधी पगडण्डी है । कुमार घोड़े पर बैठा और बोला— आप सभी यहाँ ठहरो, मैं अकेला ही पहाड़ पर जाकर रास्ता ढूँढ़ूँगा ।

युवराज अश्वारूढ़ होकर सीता नाले के पास से धीरे-धीरे पगडण्डी के

सहारे पहाड़ पर चढ़ने लगा । वहाँ के प्राकृतिक वातावरण को देखकर सोचने लगा कि ओह ! कितने सघन और बड़े-बड़े वृक्ष हैं । पहाड़ों से गिर रहे झरने, स्वच्छ पानी के यह नाले, कितने सुहावने लग रहे हैं । जैसे ही राजकुमार और ऊपर चढ़े कि विकट भयावना मार्ग आ गया । पहाड़ की सीधी चढ़ाई चालू हो गई । दोनों तरफ गहरी खाई दिखाई देने लगी । कुमार ने भयभीत मन से विचार किया कि यदि यहाँ पर सावधानी न रही तो खाई में गिरकर चकनाचूर हो जाऊँगा, अतः धीरे-धीरे घोड़े को चलाता हुआ आगे बढ़ने लगा । तभी उसे गर्जना करते हुए शेर की दहाड़ सुनाई दी । घोड़ा चढ़ता-चढ़ता रुक गया । सामने चोटी पर खड़ा केसरी सिंह उन्हें घूर रहा था । कुमार ने परमात्मा को याद किया । हे भगवान ! सामने शेर खड़ा है, पीछे गहरी खाई है, अब तो न मालूम क्या होगा । हे प्रभु ! अब तो एकमात्र आपके नाम का आधार है ।

अपने स्वामी को बचाने के लिए घोड़ा मुड़ने के लिए पीछे की तरफ हटा कि उसका पैर फिसल गया और वह पाताल जैसी गहरी खाई में जा गिरा । गिरते-गिरते युवराज के मुंह से ध्वनि निकली, 'नमामि पार्श्व' हे पार्श्वनाथ प्रभु मुझे आपका शरण हो ।

खाई में गिरते ही घोड़े के प्राण पंखेरू उड़ गए । युवराज भी उछलकर दूर खाई में जा गिरा । गिरते-गिरते भी वह जीवन की अन्तिम श्वास तक पार्श्व प्रभु का स्मरण तथा ध्यान करता रहा ।

इधर तलहटी में नीचे खड़े राज सेवकों ने एक दूसरे को कहा कि संध्या का समय होने लगा है अभी तक हमारे युवराज लौटकर न मालूम क्यों नहीं आए । सभी यात्री तथा सम्बन्धी चिन्तातुर हो गए । प्रातःकाल आठ दस राजसेवक राजकुमार की खोज के लिए पहाड़ की ओर चल पड़े । सभी घोड़े के पैरों के निशान देखते-देखते पहाड़ पर धीरे-धीरे चढ़ने लगे । चलते-चलते खोजी दल एक स्थान पर जाकर रुक गया । यहाँ तक घोड़े के पाँवों के निशान हैं, इससे आगे नहीं है । इससे अनुमान लगता है कि घोड़ा यहीं पर ही कहीं



गिरा है । सभी लोग इधर-उधर नाले और खाइयों में झाँकने लगे । टकटकी लगाकर स्थान-स्थान पर देखने लगे । तब एक व्यक्ति ने कहा- देखा-देखो, वो नीचे घोड़े का मुँह दिखाई दे रहा है । सभी को विश्वास हो गया कि हमारा युवराज भी यहाँ पर कहीं गिरा होगा । सभी सोचने लगे कि ओह ! सैकड़ों हाथ नीचे गहरी खाई में कैसे उतरेंगे । सभी नीचे उतरने की योजना बनाने लगे ।

कुछ ही क्षणों में विचार करके उन्होंने पास वाले बड़े-बड़े वृक्षों से रस्सी को बान्धा, चार-पाँच व्यक्ति उस रस्सी के सहारे नीचे खाई में उतर गए । परस्पर इधर-उधर देखकर बोले- अरे देखो, घोड़ा यहाँ मरा पड़ा है, अरे उधर देखो- वहाँ किसी व्यक्ति का पैर जैसा दिखाई दे रहा है । फिर चारों तरफ आजू-बाजू की झाड़ियों में झाँककर देखा- अरे ! यह तो अपने राजकुमार हैं, राजकुमार का शरीर कैसा लहलुहान हो गया है ।

सभी राजकुमार के क्षत-विक्षत मृत शरीर को झाड़ियों में से निकालकर बाहर लाए । उसकी आकृति को देखकर सभी राजसेवक गमगीन गए । सभी के होश हवास उड़ गए । वहाँ से बड़ी कठिनता से राजकुमार के शव को पहाड़ से उतारकर सीता नाला के पास खड़े जन समूह के सामने लाकर रख दिया । सर्वत्र शोक छा गया । महारानी तथा रानियाँ आदि सर्व परिवारजन विलाप करने लगे । पालगंज के राजा भी सैकड़ों लोगों सहित वहाँ पर आ गया । मधुबन में युवराज के मृत शरीर को देखकर सभी करुण-क्रन्दन कर रहे थे । राजा ने सभी को धैर्य धारण करने को कहा ।

तत्पश्चात् महाराज ने राज सेवकों से पूछा- अब युवराज का अग्नि संस्कार कहाँ किया जाए ? एक कर्मचारी ने कहा- महाराज ! मधुबन में प्राचीन विशाल वट वृक्ष है, इसी स्थान पर युवराज का संस्कार किया जाए तो ठीक रहेगा ।

हजारों लोगों की उपस्थिति में वटवृक्ष के नीचे युवराज चन्द्रशेखर का अग्नि संस्कार हुआ । सभी सुबक-सुबक कर रोने लगे । थोड़ी ही देर में अग्नि

की ज्वालाओं ने कुमार की देह को तिरोहित कर दिया । कौन किसको आश्वासन दे यही प्रश्न सभी के सामने था ।

चन्द्रशेखर कुमार कालधर्म होने के पश्चात् व्यन्तर योनि में देव बने । दो-तीन दिन के बाद शोक निवृत्त होकर यात्री संघ तथा राज परिवार बनारस की ओर चला गया ।

कुछ दिनों के पश्चात् रात्रि के समय वटवृक्ष के नीचे कुछ लोग बैठे हुए थे अचानक उसी वृक्ष के पास चारों तरफ प्रकाश-प्रकाश फैल गया । उसी प्रकाश के बीच एक दिव्य मुखाकृति मण्डरा रही लोगों को दिखाई दी, जिसे देखकर लोग डर कर भागने लगे । तभी एक आवाज आई....

डरो मत, भागो मत, मैं इसी तीर्थ का सेवक हूँ, तीर्थ की रक्षा के लिए पहरा दे रहा हूँ ।

दूसरे दिन आजू-बाजू के गाँवों के सैकड़ों लोग वटवृक्ष के नीचे एकत्रित हो गए । किसी ने कहा- यह गाँव के देवता लगते हैं । कोई बोला- यह क्षेत्र रक्षक भैरव बाबा है । किसी ने कहा- नहीं-नहीं यहाँ भवानी माता का चमत्कार हुआ है । धीरे-धीरे लोग वहाँ पर फल-फूल, तेल, नैवेद्य आदि चढ़ाने लगे । कुछ स्वार्थी लोगों ने कहा- अरे यह तो साक्षात् भवानी माता है, इसे प्रसन्न करने के लिए बलि दो । यदि बलि नहीं चढ़ाई तो यह कुपित होकर भस्म कर देगी । इस प्रकार लोगों में अन्ध श्रद्धा पैदा कर दी गई । कुछ लोगों ने वहाँ पर पशुबलि चढ़ानी चालू कर दी । दूर-दूर से लोग क्षेत्रपाल बाबा मानकर मनौती माँगने लगे । इस प्रकार लोग धन की कामना, सन्तान की कामना, रोग मुक्ति की कामना के लिए वहाँ पर आने लगे । बाबा के नाम पर तेल, सिंदूर चढ़ाते, प्रसाद बाँटते । कभी-कभी कोई अघोरी आकर वहाँ पर पशु बलि भी चढ़ा देता । इस तरह दूर-दूर तक क्षेत्रपाल बाबा के चमत्कार की बातें फैल गई । इस प्रकार वर्षों बीत गए ।

अठारहवीं सदी में लगभग दो हजार वर्ष पश्चात् मुर्शीदाबाद (पश्चिम

बंगाल) से जगत सेठ का परिवार सम्पत्तिशिखरजी की यात्रा करने आया । उनके साथ वहाँ के यतिजी तथा अन्य सैकड़ों लोग थे । शिखरजी की यात्रा के पश्चात् सेठ ने यतिजी से कहा— इस महान पवित्र तीर्थ की दुर्दशा देखी नहीं जाती । यति बोले— सेठजी ! आप तो समर्थशाली हैं, तीर्थ का जीर्णोद्धार करा सकते हैं । सेठ ने कहा— यतिवर ! जरा इस तरफ देखिए— इस पवित्र तीर्थ भूमि की तलहटी पर पशुबलि भी हो रही है । करुणावतार की निर्वाण भूमि पर यह हिंसा का नग्न ताण्डव ! यहाँ पर यह बिल्कुल नहीं होना चाहिए । कृपया इस हिंसा को रोकने का कोई उपाय बताइए । यतिजी बोले— सेठजी ! यदि हमने इन लोगों को जबरदस्ती रोकने का प्रयास किया तो ये गाँव के सारे मूर्ख लोग उपद्रव मचाएँगे । कुछ देर ध्यान लगाकर यति ने पुनः कहा— श्रेष्ठीवर! मुझे लगता है कि यह स्थान क्षेत्रपाल भोमियाजी का है । यह पार्श्वनाथ भगवान के परम भक्त हैं । आप अट्टम तप करके उनकी आराधना कीजिए । वे प्रकट होकर अवश्य उपाय बताएँगे ।

यतिजी के कथनानुसार सेठजी ने मन्दिर के उपासना कक्ष में तीन दिन उपवास करके मन्त्र जाप किया । तीसरे दिन रात्रि को एक आवाज आई अर्थात् व्यन्तर देव योनि में उत्पन्न हुआ युवराज चन्द्रशेखर उसने अदृश्य रूप से कहा— यह स्थान मेरा है तीर्थ के उद्धार से पहले मेरा उद्धार करो । तीन बार इस प्रकार आवाज आने से सेठ ने सिर उठाकर ऊपर देखा तो उन्हें एक तेजस्वी मुखाकृति दिखाई दी । सेठ ने हाथ जोड़कर पूछा— आप कौन हैं ? आपका स्थान कहाँ है ? मुझे क्या करना चाहिए ? तब आवाज आई— कि मैं इसी तीर्थ क्षेत्र का सेवक हूँ, वटवृक्ष के नीचे मेरा स्थान है, वहाँ पर हिंसा रोको और मुझे स्थापित करो ।

जगत सेठ ने हाथ जोड़कर कहा— हे क्षेत्रपाल देवता ! आपके आदेश का पालन होगा । प्रातःकाल सेठ ने सम्पूर्ण घटना यतिवर्य को बताई यतिजी ने कहा— वटवृक्ष के नीचे तो भवानी देवी की स्थापना की हुई है । उसे यहाँ से उठाओ और इस स्थान की शुद्धि करो ।

तत्पश्चात् सेठ ने सभी लोगों को समझाया कि यह स्थान भवानी देवी का नहीं है। यहाँ का अधिष्ठायक कोई अन्य देव है। उन्हें यह पशुबलि आदि बिल्कुल पसन्द नहीं है। यदि वे कुपित हो गए तो तुम सबका अनिष्ट कर देंगे। भयभीत होकर लोगों ने कहा— कहिए, अब हम क्या करें? हमें कुछ भी समझ में नहीं आता। आपको जो उचित लगे वही उपाय कर लीजिए।

सेठजी ने वहाँ से भवानी माँ की मूर्ति को आदरपूर्वक उठाया और नदी के किनारे इमली के वृक्ष के नीचे उसे स्थापित कर दिया। फिर यतिजी ने हवन आदि किया। मन्त्र पाठों को बोल कर वटवृक्ष के नीचे स्थान शुद्धि करवाई।

उसी रात को जगत सेठ जी को स्वप्न में एक दृश्य दिखाई दिया। विशाल पर्वतों के बीच एक तेजस्वी मुखाकृति प्रगट होकर कुछ बता रही है। मेरा स्थान यही वटवृक्ष है, मैं तीर्थ की सेवा और रक्षा करता हूँ। तत्क्षण सेठ की निद्रा टूटी और विचार करने लगा कि अवश्य इस वटवृक्ष के नीचे ही क्षेत्रपाल का स्थान है। तभी पुनः उसके सामने वही दृश्य उभरता है। सेठ ने हाथ जोड़कर कहा— हे क्षेत्रपाल देव ! आपकी इच्छानुसार ही सब कार्य होगा। प्रातःकाल होने पर सेठजी से यतिजी को स्वप्न की सारी बात कही और पूछा— हे यतिवर्य ! इस दृश्य का क्या अर्थ है ?

सेठ की बात को सुनकर यतिजी ने पूजन किया, मन्त्र पाठ करके अपने इष्ट देव का स्मरण किया। इष्ट देव प्रकट हुए, उन्होंने बताया कि पूर्व काल में चन्द्रशेखर नामक राजकुमार था। इस तीर्थ का वन्दन तथा स्पर्श करने आया था, वहाँ पर अचानक उसकी मृत्यु हो गई। यहाँ पर ही उसका अग्नि संस्कार किया गया। वही इस भूमि के रक्षक भोमियाजी (भैरव) देव हैं।

तत्पश्चात् यतिजी ने सेठजी को कहा— भैरव देव ने आपको जिस रूप में दर्शन दिया वही उनका स्वरूप है। यहाँ पर उसी स्वरूप की स्थापना करने का आदेश मिला है।

फाल्गुन मास की पूर्णिमा के शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में सेठ ने वटवृक्ष के

नीचे की भूमि को पुनः शुद्ध कराया और वहाँ पर एक सुन्दर देवालय बना कर भैरव देव (भोमिया जी) की स्थापना की। मन्त्र पाठ बोलकर प्रसाद चढ़ाकर सेठ ने भोमियाजी देव से प्रार्थना की— हे तीर्थ रक्षक देव ! इस तीर्थ स्थान की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आपके ऊपर है। आप तीर्थ की तथा तीर्थ यात्रियों की सदा रक्षा करें। सबकी यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न करें। सभी की मनोकामना पूर्ण करें। उसी दिन से भोमियाजी देव सम्मत्तशिखर तीर्थ अधिष्ठायाक रक्षक देव बन गए।

तभी से जो भी यात्री तीर्थ दर्शन के लिए आते हैं वे पहाड़ पर चढ़ने से पूर्व वे भोमिया जी महाराज का दर्शन वन्दन करते हैं प्रसाद बाँटते हैं और निर्विघ्न यात्रा सम्पन्न करते हैं।

एक बार एक यात्रा संघ दर्शन करने आया। उसमें अनेकों श्रावक—श्राविकाएँ थी। सभी भोमियाजी का दर्शन करके यात्रा करने पहाड़ पर चढ़ गए। यात्रा करके लौटते समय कुछ लोग मार्ग में भटक गए उन्हें नीचे उतरने का रास्ता नहीं मिल रहा था। सूर्यास्त हो रहा था। अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देने से सभी चिन्तातुर होकर वहाँ पर खड़े हो गए। किधर से जाएँ उनको कुछ सूझ नहीं रहा था। तभी एक काले भूरे रंग का श्वान (कुत्ता) उनके सामने आकर भौं-भौं करने लगा। एक वृद्ध श्रावक ने कहा— देखो—देखा यह कुत्ता हमें कुछ कह रहा है।

तभी वह श्वान आगे—आगे चलने लगा। ऐसा लग रहा था कि जैसे कोई अंधेरे में लालटेन लेकर रास्ता दिखा रहा हो। श्रावकगण श्वान के पीछे—पीछे चलने लगे और पार्श्वनाथ भगवान की तथा भोमियाजी देव की जय—जय बोलने लगे। इस प्रकार उस कुत्ते के पीछे—पीछे चलते हुए सभी यात्री पहाड़ से नीचे सुरक्षित पहुँच गए। जैसे ही नीचे तलहटी पर पहुँचे तो उन्होंने लोगों को आप बीती सारी बात बताई। लोगों ने कहा— इस तीर्थ पर जब भी कोई यात्री मार्ग भूल जाता है या संकट में फँस जाता है तो भोमिया जी महाराज श्वान के रूप में प्रकट होकर उनकी सहायता करते हैं।

एक बार कुछ युवक यात्रा करने के लिए पहाड़ पर जाने लगे तो उनको किसी ने कहा कि आप सभी पहले भोमियाजी का दर्शन करके तथा उनकी आज्ञा लेकर जाओ । एक युवक ने कहा— चलो—चलो अब देरी हो रही है, भोमियाजी की क्या आज्ञा लेनी है उनका दर्शन फिर कर लेंगे । हमको तो परमात्मा का ही तो दर्शन करना है । इस प्रकार तिरस्कार भरे शब्द बोलकर वे पहाड़ पर चढ़ गए ।

अभी थोड़ा—सा ही पहाड़ ऊपर चढ़े थे कि अचानक मधुमक्खियों का समूह उन पर टूट पड़ा । मधुमक्खियाँ सभी को चारों तरफ से घेर कर जोर—जोर से डंक लगाने लगी, काटने लगी । सभी एक दूसरे का मुँह देखकर परस्पर कहने लगे— अरे ! यहाँ मधुमक्खियाँ कहाँ से आ गई ? देखो—देखो आगे पूरे रास्ते पर मधुमक्खियाँ उड़ रही हैं, अपना रास्ता रोक रही है, लगता है आज हमारी यात्रा नहीं हो सकेगी । एक व्यक्ति ने कहा— भैया ! हमने भी बहुत भारी भूल की है भोमियाजी महाराज की अवज्ञा करके हम आए हैं । आगे यात्रा कैसे होगी ?

सभी युवकों का समूह वापिस नीचे उतरा । भोमियाजी का दर्शन वन्दन किया, प्रसाद चढ़ाया और हाथ जोड़कर बोले— हे भोमियाजी महाराज ! हमारी भूल—चूक माफ करो, हमसे बहुत भारी गलती हो गई, कृपया हमें क्षमा कीजिए । तत्पश्चात् वे भोमियाजी को वन्दन करके आज्ञा लेकर पहाड़ के ऊपर चढ़े, चलते—चलते जब वे सभी उसी स्थान पर पहुँचे तो देखकर बोले— अरे ! यहाँ तो अब एक भी मधुमक्खी नहीं है । सचमुच यह भोमियाजी देव का ही प्रत्यक्ष परचा है । वे आशातना करने वालों को मीठा दण्ड देकर शिक्षा देते हैं ।

इस प्रकार एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं भोमियाजी के चमत्कारों के । भोमियाजी बाबा वहाँ आने वाले सभी तीर्थ यात्रियों की रक्षा करते हैं उनकी मनोकामना भी पूर्ण करते हैं ।

तीर्थ के मुख्य मन्दिर के बाहर भोमियाजी महाराज का एक भव्य विशाल



मन्दिर बना हुआ है । यात्रा करने के लिए आने वाले यात्रियों की यहाँ भीड़ लगी रहती है भोमियाजी देव पर आस्था रखने वाले भक्तों की सभी मनोकामनाएँ सहज ही पूर्ण हो जाती हैं । यह भोमियाजी देव वर्तमान काल में भी हाजरा-हजूर जागृत देव हैं, सम्मत्शिखर तीर्थ के अधिष्ठायक हैं जो भक्त श्रद्धापूर्वक इनका वन्दन, पूजन तथा मन्त्र जाप करते हैं उनके मनोवांछित कार्य तत्क्षण सिद्ध हो जाते हैं ।

इनका जाप मन्त्र:- ॐ क्षौं क्षीँ, क्षुँ क्षः क्षेत्रपालाय भोमिया देवाय नमः

प्रतिदिन 108 बार शुद्धता पूर्वक जाप करने से कार्य सिद्धि होती है ।

जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाइं वासकोडिहिं ।  
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमित्तेणं ॥

बहुत कोटि वर्षों तक अज्ञानी जिन कर्मों को खपाता है, उन कर्मों को मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीन गुप्तियों के द्वारा गुप्त हुआ ज्ञानी एक उच्छ्वास मात्र में करके खपाता है ।

# श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ



सौ  
ज  
न्य

काँच के मन्दिर वाले उपाश्रय की श्राविकाएँ  
सादड़ी (राजस्थान)





शासन प्रभाविका पू. साध्वीश्री जसवन्तश्रीजी म. के  
हस्तलिखित विचार

**तीर्थ की महत्ता**

शासन प्रभाविका साध्वी श्री जसवन्त श्री जी म० के सुविचार (हस्तलिखित)

तीर्थ की महत्ता

जैन धर्म में ही नहीं अन्य धर्मों में भी तीर्थ स्थलों की महत्ता के  
काल में अत्यंत महत्त्व पूर्ण माना गया है, तीर्थों पर भगवन्तो  
के उदयन जन्म दीक्षा केवल ज्ञान एवं मोक्ष दून पांचो कहयाण  
की ही जीवित सुदुर स्थान प्रभुके समीप रक्षण स्थल प्रभुकी  
विचार भूमि प्रभुके चर्चुमास स्थल एवं उगके जीवनकी महत्त्व  
पूर्ण घटनाओं से संबंधित स्थल मुनि पुण्यवीकांतपी भूमि व  
निर्वाण भूमि की सी सातवाय जैन जिन माओं के चमत्कारों  
में प्रसिद्ध हुआ स्वामी श्री शंकर कलात्मक मीन्द्र व स्मारक  
एक सौ वर्षों से जमाया प्राचीन मीन्द्र व स्मारक है सण  
जैन परम्परा के पावन व पुण्यनीय स्थावर तीर्थों को  
गये हैं। यह स्थानों की यात्रा कर मानव अपना जन्म  
सफल बनाता है, इन पूनीत स्थलों के वातावरण शुद्ध व निर्मल  
गो होवे ही हैं उनमें एक ऐसी भी अतिथय शक्तियाँ रहती है  
जिसे के कारण शरीर वहां पहुंचने ही उनमें पोरणा गतिमें ल  
होकर एक अलौकिक शक्ति का अनुभव करने हैं।  
जैसे श्री लो उर कुश वर साग की देवा व दुरत दुरतक उषणी मलयानि ल  
ठंडी देवा मां रवों से श्री शंकर रहने कुश मी निर्मल देवा देती है जैसे  
जैसे अदि श्री शंकर मिलाने से फिका आरा भी भी हो जाता है।  
उसी प्रकार तीर्थों पर भगवन्तो मुनि भद्राय जी व सौं कंडो व सौं  
वका आराग्याली अहं सु दर्शकों द्वारा सौवन निरये गये स्थल भी  
उन गुह परमाणुओं से मिलगुल कर दर्शकों में रुना ऐसी अ लौ  
किक शक्ति की प्राप्ति प्रदान करने हैं जो जन्म, यात्रा के भगवन्त  
जन्म को सफल बना देते हैं।



## शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा

विश्व के प्रत्येक धर्म में तीर्थ स्थानों को मन्त्रों, यन्त्रों और पर्वों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दुनियाँ में यन्त्र तो बहुत है यन्त्राधिराज का पद सिद्धचक्र यन्त्र को मिला है। पर्व भी बहुत हैं लेकिन पर्वधिराज का विरुद्ध पर्यूषण पर्व को दिया गया है। इसी तरह विश्व में तीर्थ भी बहुत हैं परन्तु शत्रुञ्जय तीर्थ को तीर्थ न कह कर तीर्थाधिराज कहा गया है।

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव प्रभु ने पुण्डरीक गणधर के आगे कहा था कि यह तीर्थ शत्रुञ्जयगिरि मोक्ष का निवास स्थान है। इस गिरिराज पर चढ़ने वाले प्राणी अति दुर्लभ लोकाग्र पर रहे हुए सिद्धस्थल को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। जैसे पर्वतों में सुमेरु पर्वत, द्वीपों में जम्बूद्वीप मुख्य है वैसे ही सभी तीर्थों में शत्रुञ्जय तीर्थ शिरोमणि है।

इस तीर्थ स्थान की भूमि अति पवित्र है। यह सम्पूर्ण गिरिराज सिद्ध आत्माओं का स्मृति मन्दिर है। इसी गिरि के कंकर-कंकर में भूतकाल में अनन्त आत्माओं ने कर्म संचय को क्षय करके सिद्धगति को प्राप्त किया है तथा भविष्य में भी अनन्त आत्माएँ इसी प्रकार इस गिरि के आलम्बन से सिद्ध बनेंगी। इस पावन तीर्थ में सभी स्थानों पर देवताओं का निवास है। यहाँ पर देवाधिदेव की भक्ति में असंख्य देवी-देवता हाजर-हजूर रहते हैं। ऐसे गिरिराज की यात्रा भवसागर से तरने के लिए बहुत बड़े जहाज के समान है। भरतक्षेत्र के मनुष्यों का सौभाग्य है कि तीनों भुवन में तथा चौदह राजलोक में ऐसा अजोड़-बेजोड़ अद्वितीय सिद्धगिरि महातीर्थ प्राप्त हुआ है।

मनुष्य भव प्राप्त करके जो आत्माएँ इस तीर्थ की स्पर्शना नहीं करती उनका अभी गर्भावास ही माना गया है। पशु-पक्षी भी जो इस तीर्थ पर आते हैं वे भी अल्प भवों में भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। क्रूर पापी, अभव्य प्राणी इस पर्वत का स्पर्श भी नहीं कर सकते। इस तीर्थ पर किया हुआ थोड़ा-सा तप तथा दान निकाचित् कर्मों का नाश कर देता है।

नव्वाणु यात्रा इस तीर्थ की विशेष आराधना है। युगादिनाथ प्रभु ऋषभदेवजी इस गिरिराज पर केवलज्ञान की प्राप्ति पश्चात् पूर्व नव्वाणु बार पधारे थे (84 लाख को 84 लाख से गुणा करें तो एक पूर्व होता है) उसी की याद में आराधक आत्माएँ इस महान तीर्थ की 99 यात्रा करती हैं। इसी 99 यात्रा के बीच में ही 9 टूँकों की 9 यात्रा तथा डेढ़ कोसी, तीन कोसी तथा छः कोसी यात्रा भी तपस्या के साथ की जाती है। जो पुण्यवत आत्माएँ निर्जल (चौविहार) छट्ट तपपूर्वक इस तीर्थ की सात यात्राएँ करती हैं, वे प्रायः तीसरे भव में मोक्षपद को प्राप्त करती हैं।

### रायण वृक्ष-

जब प्रभु केवलज्ञान पश्चात् सिद्धगिरि पर पधारे तब रायण वृक्ष के नीचे देवताओं ने समवसरण की रचना की थी। यह रायण वृक्ष भी शाश्वत है। आदिनाथ दादा की चरण पादुका से शोभायमान है। इसके प्रत्येक पत्र, फल, शाखा पर देवी-देवताओं का निवास है। अतः कभी भी इसके पत्ते या फल तोड़ने नहीं चाहिये। इस वृक्ष की स्वर्ण, रत्न, मणि, माणिक, मोती से यदि पूजा की जाए तो उसका डाकिनी, शकिनी, भूत, प्रेत, बेताल आदि का बलगाड़ तथा उपद्रव शान्त (दूर) हो जाता है। इस वृक्ष के स्वाभाविक रूप से स्वयमेव से नीचे गिरे पत्ते-पुष्प-शाखा आदि यदि मिल जाये तो प्राणों के समान सम्भालकर रखना चाहिए, उसके जल के सिंचन करने से सभी प्रकार के अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

इस वृक्ष की पश्चिम दिशा की ओर एक दुर्लभ रसकूपिका है। उसके स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है। परन्तु जिसने अद्धम तप किया हो और चक्रेश्वरीदेवी की नित्यक्रम से आराधना, भक्ति-पूजा करता हो वह विरला पुरुष ही इस रसकूपिका को प्राप्त कर सकता है। यदि रायण वृक्ष प्रसन्न हो जाए तो उसे दूसरी किसी वस्तु की जरूरत नहीं रहती। ऐसा यह रायण वृक्ष महाप्रभावशाली है।

यह गिरिराज प्रायः शाश्वत कहा गया है। कहा भी है कि-

प्रायः ए गिरि शाश्वता, रहेगा काल अणंत,  
शत्रुञ्जय महातम सुनी, नमो शाश्वत गिरि संत

शत्रुञ्जय तीर्थ का विस्तार पहले आरे में 80 योजन था ।

दूसरे आरे में 70 योजन था ।

तीसरे आरे में 60 योजन था ।

चौथे आरे में 50 योजन था ।

पाँचवें आरे में 12 योजन प्रमाण है ।

छठे आरे में 7 हाथ रहेगा ।

ऋषभदेव प्रभु के समय शत्रुञ्जय तीर्थ का मूल विस्तार 50 योजन और ऊँचाई 8 योजन थी ।

## शत्रुञ्जयी नदी-

विमलगिरि के दोनों शिखरों के मध्य पवित्र शत्रुञ्जय नदी है । एक बार भरत नरेश्वर ने इन्द्र को पूछा- यह कौनसी नदी है ? इन्द्र ने कहा- हे चक्रवर्ती ! यह शत्रुञ्जय नदी है । यह नदी इस लोक में गंगा नदी से अधिक पवित्र और फलदायक है । इसके जल स्पर्श से कान्ति, कीर्ति, लक्ष्मी, बुद्धि, धृति, पुष्टी और समाधि की प्राप्ति होती है । और कई सिद्धियाँ वश में हो जाती हैं ।

इस सरिता की मिट्टी का विलेपन करने से शरीर के बड़े-बड़े रोगों का भी नाश हो जाता है । इस पवित्र नदी के किनारे पर रहे हुए वृक्षों के फलों का जो स्वाद भी ले लेता है तथा छः (6) मास तक इस नदी का जो जल पीता है, उसके वात, पित्त, कुष्ठ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं । शरीर स्वर्ण जैसी कान्ति वाला हो जाता है ।

. इस महान तीर्थ की विधिपूर्वक यात्रा करने से आत्मा शीघ्र ही भवबन्धन से मुक्त हो जाती है । सर्वश्रेष्ठ इस तीर्थ की यात्रा छःरी के पालनपूर्वक होनी चाहिये ।

1. पादचारी— गुरु भगवन्त के सान्निध्य में पैदल यात्रा करना चाहिए ।
2. भूमि संधारी— गुरु महाराज के समान भूमि पर रात्रि में संधारे पर सोना चाहिए ।
3. एकल आहारी— इस तीर्थ की यात्रा के दरम्यान कम से कम एकासने का तप करना चाहिए ।
4. सचित्त परिहारी— यात्रा मध्य सचित्त वस्तु (जीव वाली वस्तु) का त्याग करना चाहिये ।
5. आवश्यकधारी— यात्रा दरम्यान दोनों समय प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये
6. ब्रह्मचारी— मन-वचन-काया से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये । इस अवसर्पिणीकाल में ऋषभदेव प्रभु के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने इस तीर्थ का प्रथम उद्धार कराया था, इस तीर्थ पर ऋषभदेव प्रभु का मन्दिर निर्माण कराया था तथा इस तीर्थ का प्रथम छःरी पालित यात्रा संघ निकाला था ।

पापी को भी पुनीत बनाने वाले, पतित को पावन बनाने वाले ऐसे शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा का गुणगान जितना किया जाए उतना ही कम है । महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे श्री सीमन्धरस्वामीजी परमात्मा ने भी स्वयं अपने मुख से इस तीर्थ की महिमा का गुणगान किया है ।

इस शाश्वत एवं पुनीत तीर्थ पर अलग-अलग महानुभावों ने अपनी सम्पत्ति का सद्व्यय करके 9 टूँकों का सुन्दर निर्माण करवाया । 9 टूँकों के नाम इस प्रकार हैं— 1. मोतीशाह की टूँक, 2. सदासोम की टूँक, 3. छीपावसी की टूँक, 4. उजमफई नन्दीश्वरजी की टूँक, 5. हेमाभाई की टूँक, 6. साकरवसही



की ढूँक, 7. प्रेमवसही की ढूँक, 8. बालावसही की ढूँक, 9. विमलवसही की ढूँक ।

इन ढूँकों का इतिहास अनेक पुस्तकों में मिलता है । अतः यहाँ पर नहीं दिया गया है ।

ऐसा सम्यग्दर्शन को निर्मल करने वाला, कर्मों की निर्जरा करने वाला यह पावन तीर्थ है । इसकी यात्रा करके, ध्यान करके सभी परमपद को प्राप्त करें, यही एकमात्र अभ्यर्थना है ।

आए हम पालीताणा, दादा के भजन गाना,  
शत्रुंजा नदी नहाना, दादा बड़े दिल के ।  
रटले तू आठों याम, काट कर्म की लगाम,  
मिले तुझे मोक्ष धाम, निर्मल-सा खिलके ।  
कण-कण यहाँ सिद्ध, महिमा जग प्रसिद्ध,  
यात्रा करके हर्षाए, दादाजी से मिलके ।  
'प्रियदर्शी' आदिनाथ, जग के हैं दीनानाथ,  
पकड़ के हाथ साथ, पार हो मंजिल के ।

## सिद्धगिरि पर हुई सिद्ध आत्माएँ

चैत्री पूर्णिमा के दिन श्री पुण्डरीक गणधरस्वामी अपने पाँच करोड़ साधु परिवार के साथ मोक्ष में गए ।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन द्राविड़ और वारिखिल्लीजी मुनि भगवन्त अपने 10 करोड़ साधु परिवार सहित निर्वाण पाए ।

फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की तेरस की तिथि के शुभ दिन शाम्ब और प्रद्युम्नजी श्री नेमिनाथ प्रभु की आज्ञा से शत्रुञ्जय गिरिशिखर पर आकर अनशन करके 8½ (साढ़े आठ) करोड़ मुनियों के साथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए ।

आसोज शुक्ला पूर्णिमा को पाँचों पाण्डव 20 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए ।

श्री अजितसेनजी 17 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए ।

श्री बाहुबलीजी के पुत्र सोमयशजी 13 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए ।

श्री भरत मुनिजी 5 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए हैं ।

श्री राम-भरतजी 3 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए हैं ।

श्री नमि-विनमि विद्याधर 2 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए हैं ।

श्री सागर मुनिजी 1 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए हैं ।

श्री कदम्ब गणधर 1 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष में गए हैं ।

इतने महापुरुष करोड़ों के परिवार सहित शत्रुञ्जय पर मोक्ष में गए हैं ।

इतना पढ़ने के पश्चात् किसी के मन में शायद शंका भी हो सकती है कि ये करोड़ों की संख्या कैसे सम्भव हो सकती है ? कई लोग करोड़ों की संख्या का अर्थ अपने मन से कुछ ओर ही करने का प्रयत्न करते हैं (कई लोग कोड़ी का अर्थ 20 (बीस) भी करते हैं ।) परन्तु संख्या को तोड़-मरोड़ कर अपनी अल्प बुद्धि के अनुरूप बनाना अज्ञानता है । शास्त्रकार महर्षियों ने सिर्फ करोड़ों की ही संख्या नहीं दी है । लाख और हजार की संख्या भी दी है । वह इस प्रकार है ।

श्री नारद ऋषि 9100000 लाख की संख्या में मुनियों के साथ मोक्ष गए हैं ।

श्री भरत महाराजा के पुत्र आदित्ययशा एक लाख की संख्या में मुनियों के साथ मोक्ष गए हैं ।

श्री वसुदेव की स्त्रियाँ 35 हजार की संख्या में मोक्ष में गई हैं ।

श्री दमितारी मुनि 14 हजार की संख्या के साथ मोक्ष गए हैं ।

श्री अजितनाथ भगवान के 10 हजार साधु शत्रुञ्जय पर मोक्ष गए हैं ।

श्री थावच्चा पुत्र एक हजार श्रमणों के साथ शत्रुञ्जय पर मोक्ष गए हैं ।

श्री थावच्चा पुत्र और श्री शुक्राचार्य एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष गए हैं ।

श्री सुभद्र मुनि सात सौ मुनियों के साथ शत्रुञ्जय तीर्थ पर मोक्ष गए ।

श्री नमि विद्याधर की पुत्री चर्याप्रमुख 64 के साथ मोक्ष में गई ।

इतना ही नहीं अलग-अलग अकेले भी अनेक महात्मा मोक्ष में गए । देवकी के 6 पुत्र जाली, मयाली, उवयाली, मण्डक मुनि, सुकोशल मुनि, अइमुत्ता मुनि आदि अनेक मोक्ष में गए हैं ।

इस प्रकार सिद्धगिरि पर अनन्ता ही आत्माएँ मोक्ष में गई हैं । तभी तो कहा गया है कि— 'कांकरे-कांकरे सिद्ध अनन्ता ।' इस प्रकार संख्या की दृष्टि से विचार करने पर करोड़, लाख, हजार, सैंकड़ों एवं सौ तथा दशक की संख्या में भी जितने मोक्ष गए हैं उन सबके भी नाम यहाँ हैं । अतः किसी भी संख्या को शंका वृत्ति से असत्य या गलत ठहराना उचित नहीं है ।

इतने तो केवल शत्रुञ्जय तीर्थ पर मोक्ष गए हैं । जहाँ पर 20 तीर्थकर भगवान मोक्ष में गए हैं ऐसे सम्मत्शिखर तीर्थ पर भी अनेक तीर्थकर भगवन्त अनेक मुनियों के साथ एक मास का अनशन करके मोक्ष में गए हैं । इस प्रकार यह विस्तृत वर्णन पन्नवणाजी आगम में किया गया है ।

जितनी आत्माएँ मोक्ष में गई उतने ही जीव निगोद से बाहर निकले । ऐसे अनन्त उपकारी सिद्ध भगवन्तों का हमारे ऊपर अनन्तगुणा उपकार है । अतः हमें भी यह विचार करना चाहिये कि हम भी प्रभु के द्वारा कथित धर्म का आलम्बन लेकर यथाशीघ्र मोक्ष में जाएँ और एक जीव को निगोद वेदना से बाहर निकालें ।

जहाँ से अनन्तानन्त आत्माएँ मोक्ष में गई वह पावन भूमि हमें भी पावन करती है । वही हमारे लिए तीर्थ भूमि है ।

नवि अत्थि न ऽ विय हो हि ।

सज्झाय समं तवो कम्मं ॥

स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप न अतीत में कभी हुआ, न वर्तमान में कहीं है और न ही भविष्य में कभी होगा ।

## ‘तीर्थनी आशातना नवी करिए’ तीर्थ की आशातनाओं से बचे

अन्ये स्थाने कृतं पापं, तीर्थस्थाने विनश्यति ।  
तीर्थस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति ॥

अन्य स्थानों पर किए गए पाप तीर्थ स्थानों पर आकर आराधना करने से, यात्रा करने से नष्ट हो जाते हैं । अतः तीर्थ स्थानों में आकर किए पाप तो वज्रलेप के समान हो जाते हैं । अतः तीर्थ स्थानों में जाकर मर्यादा का सम्पूर्ण पालन करना चाहिए । शत्रुञ्जय गिरिराज की महिमा तो मेरु पर्वत के समान है । जब आप तीर्थयात्रा करने जाते हो तब आपके मन-मस्तिष्क में सतत यह ध्यान रहना चाहिए कि हम तीर्थ स्थान में आए हैं । यहाँ पर हम संसार-सागर से तिरने के लिए आए हैं, डूबने के लिए नहीं । यहाँ पर कर्म तोड़ने के लिए आए हैं, कर्म बान्धने के लिए नहीं । अन्तःकरण में यह रखना चाहिए कि यह तीर्थ स्थान है, हिल स्टेशन नहीं ।

वर्तमानकाल में जितनी सुविधाएँ बढ़ गई हैं उतना ही उनका दुरुपयोग भी बढ़ गया है । वेकेशन के दिनों में तीर्थों में आए हुए लोग स्वेच्छाचारी तथा स्वच्छन्द ही दिखाई देते हैं । कई लोग तो यात्रा के बहाने मौज-मजा ही करने आते हैं अथवा तबीयत सुधारने के लिए आते हैं । प्रिय बन्धुओं ! याद रखना-तीर्थ स्थानों में तीर्थयात्रा के आशय को छोड़कर अन्य भावों को मन में लाना मानो दुर्गति को निमन्त्रण देना है ।

शत्रुञ्जय, गिरनार, सम्मत्शिखर, राजगृही, हरितीनापुर, अयोध्या, पावापुरी आदि-आदि कल्याणक भूमियाँ तीर्थकरों की चरणरज से पवित्र बनी हुई हैं । यह अचिन्त्य प्रभावशाली तीर्थ है । इन तीर्थों पर जाकर आशातनाओं से अवश्य बचना चाहिए ।

शत्रुञ्जय गिरिराज तो महान् पवित्र भूमि है । इस तीर्थ की आशातना करने से आत्मा को भयंकर विपाक भोगने पड़ते हैं । अतः इस गिरिराज पर किसी भी प्रकार की कुप्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए ।

गिरिराज पवित्र भूमि है, यहाँ पर मल-मूत्र नहीं करना चाहिए । शत्रुञ्जय पर्वत की यात्रा नंगे पाँव करनी चाहिए ।

तीर्थयात्रा आत्मकल्याण के लिए है अतः यात्रा दरम्यान कन्दमूल का त्याग, अभक्ष्य, बारी वस्तुओं का त्याग, रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए । शराब, सिगरेट, बीड़ी, पानमसाला, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए ।

मन की पवित्रता बनाए रखने के लिए सिनेमा, टी.वी., विडियो, रेडियो, ताशपत्ते, जुगार आदि का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

गिरिराज की यात्रा करते समय अश्लील फिल्मी गीतों को नहीं सुनना चाहिए ।

गिरिराज की यात्रा नीची दृष्टि रखकर जयणापूर्वक, जीवदया का पालन करते हुए करनी चाहिए ।

गिरिराज की यात्रा हेतु हजारों लोग आते हैं किसी के मन के परिणाम हमारे निमित्त से बिगड़े इसका ध्यान रखते हुए विभत्स वस्त्र, उद्भट वेश नहीं पहनना चाहिए ।

तीर्थ स्थान में कषाय से दूर रहना चाहिए, कठोर वचन नहीं बोलने चाहिए, किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलोच नहीं करना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

तीर्थ स्थानों की महत्ता को तथा धर्म को नहीं समझने वाले, आशातनाओं को नहीं जानने वाले, सद्गुरुओं के संग से दूर भागने वाले आज के युवक-युवती वर्ग तीर्थधामों में आकर जुआ, शराब आदि से लेकर विषय सेवन तक के

घोर पापों का आचरण करते हैं । तीर्थ स्थानों में आकर यदि तीर्थों की मर्यादा और नियमों का पालन न करें तो वह यात्रा निकाचित कर्मों को बान्धने वाली बन जाती है । तीर्थ स्थानों में जाकर सेवन किया गया पाप कर्म का विपाक बताये बिना नहीं रहता है । परिणाम स्वरूप अकल्पनीय उपाधि जीवन में आ जाती है । अतः सदा सावधान होकर शान्त चित्त से विचार करना चाहिए ।

इस पवित्र तीर्थ के माहात्म्य को जानकर सभी भव्यात्माएँ शाश्वत पद के भोक्ता बनें यही मंगलकामना है ।

तपो मूला हि सिद्धयः ।

तप के महाप्रभाव से अनेक प्रकार की उत्कृष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । उत्तम तपस्वी के पास सिद्धियाँ स्वयं आने लगती हैं । तप में वह असीम शक्ति होती है, जिससे आठ प्रकार के कर्मों का क्षय हो जाता है ।

## श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ के चौथे आरे में हुए उद्धार

पहला उद्धार श्री ऋषभदेव भगवान के समय में भरत चक्रवर्ती ने किया ।  
दूसरा उद्धार भरत चक्रवर्ती के वंश में दण्डवीर्य राजा ने किया ।  
तीसरा उद्धार दूसरे देवलोक के इन्द्र इशान इन्द्र ने किया ।  
चौथा उद्धार चौथे देवलोक इन्द्र माहेन्द्र ने किया ।  
पाँचवाँ उद्धार पाँचवें देवलोक के इन्द्र ब्रह्मेन्द्र ने किया ।  
छठा उद्धार भवनपति के इन्द्र चमरेन्द्र ने किया ।  
सातवाँ उद्धार श्री अजितनाथ प्रभु के समय में सगर चक्रवर्ती ने किया ।  
आठवाँ उद्धार व्यन्तरेन्द्र ने किया ।  
नवाँ उद्धार श्री चन्द्रप्रभु स्वामी के समय में चन्द्रयश राजा ने किया ।  
दसवाँ उद्धार श्री शान्तिनाथ भगवान के समय में चक्रायुध राजा ने किया।  
ग्यारहवाँ उद्धार श्री मुनिसुव्रतस्वामी के समय में श्री रामचन्द्रजी ने किया ।  
बारहवाँ उद्धार श्री नेमीनाथ भगवान के शासन में पाण्डवों ने किया ।

## पाँचवें आरे में हुए उद्धार

तेरहवाँ उद्धार श्री महावीरस्वामीजी के तीर्थ में जावड़ शा ने किया ।  
चौदहवाँ उद्धार श्री बाहड़ शा मंत्री (अथवा शिलादित्य राजा) ने किया ।  
पन्द्रहवाँ उद्धार समरा शा ओसवाल ने किया ।  
सौलहवाँ उद्धार कर्मा शा ने किया ।  
सतरहवाँ उद्धार श्री दुप्पसहसूरीश्वरजी के उपदेश से अन्तिम उद्धार विमल वाहन राजा करेगा ।



## श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का प्रथम उद्धार

### श्री भरत महाराजा

इस अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव प्रभु प्रथम तीर्थंकर हुए । उसी प्रकार इस शाश्वत शत्रुञ्जय तीर्थ पर प्रभु के प्रथम गणधर श्री पुण्डरीकस्वामीजी पाँच करोड़ मुनियों के साथ निर्वाणपद को प्राप्त हुए । अतः यह तीर्थ पुण्डरीकगिरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

एक बार प्रभु श्री ऋषभदेवस्वामीजी विहार करते हुए विनितानगरी (अयोध्या) में पधारे । देवताओं ने समवसरण की रचना की । तुरन्त ही भरतचक्रवर्ती अपने अन्तःपुर आदि विशाल परिवार के साथ प्रभु की देशना सुनने के लिए गए । प्रभु ने धर्मदेशना में शासन प्रभावना, तीर्थयात्रा, संघभक्ति के महत्त्व का वर्णन किया ।

देशना समाप्ति के पश्चात् भरत महाराजा ने हाथ जोड़कर प्रभु से पूछ-प्रभो ! संघपति का पद कैसे प्राप्त होता है ?

प्रभु ने कहा- हे भरत नरेश्वर ! इन्द्र और चक्रवर्ती से भी संघपति का पद बड़ा है । जो व्यक्ति चतुर्विध संघ के साथ स्थ में प्रभु को बिराजमान करके गुरु के सान्निध्य में पैदल चलकर स्थान-स्थान पर गाँव-गाँव में धर्म की, शासन की प्रभावना करता हुआ शत्रुञ्जय रैवतगिरि आदि यात्रा करता है वह संघपति कहलाता है ।

प्रभु के मुख से संघ की महत्ता को सुनकर भरत महाराजा ने नाम गणधर के सान्निध्य में इस अवसर्पिणीकाल में शत्रुञ्जय महातीर्थ का प्रथम संघ निकाला । संघ में चक्रवर्ती की ऋद्धि के साथ-साथ लाखों नरनारी थे । क्रमशः चलते-चलते संघ ने सौराष्ट्र देश में प्रवेश किया । भरत महाराजा गिरिराज की पूजा से अनभिज्ञ थे । उन्होंने किसी महर्षि से पूछ- गुरुदेव ! गिरिराज की पूजा कैसे करनी चाहिए ?

महर्षि ने कहा— जैसे ही गिरिराज को दूर से देखो तो दोनों हाथ जोड़कर नमन करना चाहिए । गिरिराज के निकट आने पर सोने और मणिरत्नों से वधाना चाहिए । प्रभु के समान ही गिरिराज की सेवा—भक्ति करनी चाहिए । इसी के साथ उपवास का तप करना चाहिए ।

महर्षि के वचनानुसार भरत चक्रवर्ती ने बहुमानपूर्वक गिरिराज की उत्कृष्ट भावों से पूजा—भक्ति की । उस समय सौधर्मेन्द्र भी वहाँ आया ।

श्री नाभ गणधरजी की पावन निश्रा में भरत महाराजा तथा इन्द्र महाराजा ने संघ के साथ गिरिराज की भावपूर्वक यात्रा की ।

रायण वृक्ष के नीचे सौधर्म इन्द्र ने ऋषभदेव प्रभु की चरण पादुका स्थापित की । भरत ने उस चरण पादुका को वन्दन किया । तत्पश्चात् इन्द्र ने कहा— हे भरत नरेश्वर! यद्यपि प्रभु के चरणों से पवित्र बनी यह भूमि स्वयं तीर्थ रूप है फिर भी लोगों की भावना की अभिवृद्धि के लिए यहाँ भव्य मन्दिर का निर्माण करना चाहिए । यद्यपि अभी ऋषभदेव प्रभु स्वयं विद्यमान हैं, फिर भी लोगों की विशेष श्रद्धा हेतु प्रभु की प्रतिमा बिराजमान करनी चाहिए ।

इन्द्र की बात को सुनकर तुरन्त ही भरत ने अपने वार्द्धकी रत्न को मन्दिर निर्माण का आदेश दिया । कुछ ही समय में भरत की आज्ञानुसार त्रैलोक्य विभ्रम नाम का प्रासाद बन गया ।

मन्दिर की पूर्व दिशा में सिंहनाद, पश्चिम में मेघनाद, उत्तर में विशाल तथा दक्षिण में भद्रशाल नाम वाले 84 मण्डप बनवाए । उसमें अनेक रत्नत्रयी वेदिकाएँ बनाई । मन्दिर के मध्य में चतुर्मुख वाली रत्नों की ऋषभदेव प्रभु की प्रतिमाएँ रखी । दूसरे मन्दिरों में 24 तीर्थकरों के वर्ण, देहमान के अनुसार रत्नों की प्रतिमाएँ स्थापित की ।

भरत महाराजा ने चारों दिशाओं में चौरासी मण्डप बनवाए । जिसके रत्नत्रयी तोरण थे । मूलगम्भारे में चारों प्रतिमाओं की स्थापना की, पुण्डरीक गणधरजी की, नमीविनमीजी की काउस्सग के रूप में, नाभिराजा तथा मरुदेवी

माता की, सुनन्दा तथा सुमंगला की, ब्राह्मीसुन्दरी की, नव्याणु भाइयों की सभी मणिमय रत्नों की मूर्ति बना कर तीर्थ पर पधराई और नाम गणधरजी से प्रतिष्ठा कराई, तीर्थमाला को पहना, तत्पश्चात् गोमुख यक्ष तथा चक्रेश्वरी देवी को तीर्थ के रक्षक रूप में रखा । इस प्रकार भरत महाराजा ने तीर्थ का प्रथम उद्धार करके महान यश को प्राप्त किया । इन्द्र महाराजा ने भी भरत महाराजा की खूब-खूब प्रशंसा करते हुए कहा कि भरत महाराज की कोई भी बराबरी नहीं कर सकता । ऐसा शत्रुञ्जय माहात्म्य में वर्णन है ।

## द्वितीय उद्धार - दण्डवीर्य राजा

भरत चक्रवर्ती के मोक्ष में जाने के 6 करोड़ पूर्व वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् अयोध्या में भरत की आठवीं पाट पर दण्डवीर्य नाम का राजा हुआ । उसे साधर्मिक भक्ति में अत्यन्त रुचि थी । एक बार राजा की साधर्मिक भक्ति की परीक्षा लेने के लिए सौधर्म इन्द्र श्रावक का वेश बनाकर अयोध्या में आया । दण्डवीर्य राजा ने उसे भोजन का आमन्त्रण दिया । श्रावक वेश में रहे इन्द्र ने करोड़ों श्रावकों के लिए बनाए हुए भोजन को अकेले ने ही खा लिया । और पुनः कहने लगा कि मैं तो अभी बहुत भूखा हूँ मुझे ओर भोजन दो । उसी समय दण्डवीर्य राजा भी वहाँ आ गया । उसने पुनः भोजन तैयार कराया । परन्तु वह भोजन भी क्षण भर में उसने खा लिया ।

सभी हैरान थे कि यह कौन है ? इन्द्र ने कहा कि यदि तुम मुझे पेट भर भोजन नहीं खिला सकते तो दूसरों को क्या खिलाओगे ? तुम भरत के सिंहासन को लज्जित क्यों कर रहे हो ?

उसी समय पास में खड़े मन्त्री ने वास्तविक स्थिति को समझते हुए राजा को कहा कि यह मनुष्य नहीं लगता । श्रावक के वेश में कोई देव होना चाहिए।

उसी समय दण्डवीर्य राजा ने धूप आदि करके कहा— हे देव ! आप अपना रूप प्रकट करो । उसी समय इन्द्र ने अपना मूल स्वरूप प्रकट किया और

दण्डवीर्य राजा की खूब प्रशंसा की तथा कहा कि आप भी भरत के वंशज हो अतः आप भी शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा करो और उद्धार करो । मैं इस महान कार्य में तुम्हारी सहायता करूँगा ।

इन्द्र की बात को मान कर दण्डवीर्य राजा ने शुभ दिन शुभ मुहूर्त में विशाल संघ लेकर शत्रुञ्जय की ओर प्रयाण किया ।

मार्ग में दुष्ट वेताल ने संघ के मार्ग को रोक दिया । उसी समय राजा ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त प्रहार से वेताल द्वारा बनाए हुए पर्वत को चूर-चूर कर दिया ।

क्रमशः संघ के साथ आगे बढ़ता हुआ शत्रुञ्जय तीर्थ पर पहुँचा । राजा ने संघ के साथ भावपूर्वक यात्रा की और तीर्थ पर जीर्ण-शीर्ण मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया । इन्द्र महाराजा भी तीर्थ के उद्धार को देखकर अति प्रसन्न हुआ ।

तत्पश्चात् राजा संघ सहित गिरनार, आबू, अष्टापद, सम्मेतशिखर आदि तीर्थों की यात्रा करने के लिए गया । वहाँ पर सात जीर्ण मन्दिरों का उद्धार किया ।

अन्त में दण्डवीर्य राजा ने अरीसा भवन में केवलज्ञान को प्राप्त किया । पृथ्वीतल पर विचरण करके अनेक भव्य जीवों को धर्म-बोध देकर शाश्वत मोक्ष पद को प्राप्त किया ।

## तृतीय उद्धार - ईशान इन्द्र

दण्डवीर्य राजा के उद्धार के बाद 100 सागरोपम का दीर्घकाल व्यतीत हो गया ।

एक बार ईशान देवलोक के इन्द्र ने महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर प्रभु के मुख से शत्रुञ्जय की महिमा सुनी । प्रभु ने शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार का उपदेश दिया । जिसे सुनकर ईशान इन्द्र ने उस तीर्थ का उद्धार किया ।

## चौथा उद्धार - माहेन्द्र इन्द्र

शत्रुञ्जय महातीर्थ के तीसरे उद्धार के एक करोड़ सागरोपम काल का समय व्यतीत हो चुका था ।

एक बार अनेक देवी-देवता चैत्री पूर्णिमा के शुभ दिन शत्रुञ्जय की यात्रा के लिए जा रहे थे । तभी मार्ग के मध्य में हस्तिसेन नगर की अधिष्ठायिका सुहस्ति देवी - जो कि मिथ्यादृष्टि थी, उसने शत्रुञ्जय को नष्ट प्रायः कर दिया था । जब सभी देवी-देवता शत्रुञ्जय के निकट आए, तब उस देवी ने माया से अनेक पर्वतों की रचना कर दी ।

यह विचित्र घटना देखकर सभी देवता सोचने लगे कि यह क्या बात है ? अन्त में अवधिज्ञान के द्वारा देवों ने सत्य घटना को जाना और उस दुष्ट देवी पर कोपायमान हो गए ।

देवताओं के क्रोध को देखकर देवी ने उनसे माफी माँगी और अपनी भूल को स्वीकार किया । तत्पश्चात् उस देवी ने प्रभु की शरण को स्वीकार किया ।

शत्रुञ्जय तीर्थ पर जाकर जब तीर्थ की जीर्ण-शीर्ण स्थिति को देखा तब उनके मन में बहुत दुःख हुआ । उसके पश्चात् चौथे देवलोक के अधिपति माहेन्द्र इन्द्र ने शत्रुञ्जय के मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया ।

## पाँचवाँ उद्धार - ब्रह्मेन्द्र

शत्रुञ्जय के उद्धार को दस करोड़ सागरोपम काल व्यतीत हो चुका था ।

एक बार कुछ सम्यग्दृष्टि देव ऐरावत क्षेत्र में जिनेश्वर भगवान का जन्मकल्याणक मनाकर नन्दीश्वर द्वीप में गए । वहाँ से वापिस आकर सभी शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिए आए । वहाँ आकर उन्होंने जब मन्दिरों की

जीर्ण-शीर्ण स्थिति को देखा तो उनके मन में बहुत दुःख हुआ । उन्होंने देवलोक में जाकर पाँचवें देवलोक के इन्द्र ब्रह्मेन्द्र को शत्रुञ्जय तीर्थ के मन्दिरों की जीर्ण-शीर्ण स्थिति से अवगत कराया ।

ब्रह्मेन्द्र ने तुरन्त ही वहाँ जाकर इस तीर्थ का उद्धार कराया और सभी चैत्यों का पुनः निर्माण करवाया ।

## छठा उद्धार - चमरेन्द्र

शत्रुञ्जय तीर्थ के पाँचवें उद्धार को एक लाख करोड़ सागरोपम काल व्यतीत हो चुका था । उस समय एक बार चमरेन्द्र अपने परिवार के साथ नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा के लिए गया । मार्ग में उसे दो विद्याधर मुनि मिले । मुनि भगवन्त ने उपदेश धारा के साथ-साथ शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा का गुणगान किया और तीर्थ की महत्ता को समझाया, जिसे सुनकर चमरेन्द्र के मन में शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा करने की भावना पैदा हो गई ।

वह तुरन्त परिवार सहित शत्रुञ्जय तीर्थ पर गया, वहाँ जाकर जैसे ही उसने मन्दिरों की जीर्ण स्थिति को देखा तो बहुत दुःखी हुआ । तब उसने तीर्थ का उद्धार किया और जिनालयों का जीर्णोद्धार कराया ।

## सातवाँ उद्धार - सगर चक्रवर्ती

इस अवसर्पिणी काल में जब दूसरे तीर्थकर श्री अजितनाथ प्रभु हुए तब उनके समय में भरतक्षेत्र में दूसरे सगर चक्रवर्ती हुए थे ।

सगर चक्रवर्ती के जह्नुकुमार आदि 60 हजार पुत्र थे । वे एक बार अष्टापद तीर्थ की यात्रा के लिए गए । वहाँ पर अष्टापद तीर्थ की रक्षा के लिए उन्होंने पर्वत के चारों ओर खाई खोदी । गहरी खाई खोदने से पानी नागकुमार देवताओं

के भवनों में चला गया । अपने भवनों में पानी भर जाने से नागकुमार देवता क्रोधायमान हो गए । क्रोधित हुए नागकुमारों ने उन सभी पुत्रों को भस्मीभूत कर दिया ।

60 हजार पुत्रों के एक साथ मरण का समाचार सुनकर सगरचक्री अत्याधिक दुःखी हो गए । इन्द्र महाराजा उसे दुःख मुक्त करने के लिए श्री अजितनाथ प्रभु के पास ले गए ।

प्रभु ने वैराग्यमय धर्मदेशना दी, संसार की असारता को समझाया तथा शत्रुञ्जय महातीर्थ की महिमा को बताकर तीर्थ के उद्धार की प्रेरणा दी ।

भरत महाराजा के समान ही सगर चक्रवर्ती ने शत्रुञ्जय तीर्थ का महासंघ निकाला । क्रमशः आगे बढ़ते हुए जैसे ही शत्रुञ्जय तीर्थ पर पहुँचे तब वहाँ जाकर चौदह नदियों के निर्मल जल से आदिनाथ प्रभु का अभिषेक किया ।

वहाँ पर इन्द्र महाराजा ने चक्रवर्ती को कहा— हे नरेश्वर ! दुःषमकाल के प्रभाव से प्रभु की मणिमय प्रतिमाओं की सुरक्षा शक्य नहीं है । अतः उनकी सुरक्षा का प्रयत्न कीजिये ।

इन्द्र की सूचना ध्यान में रखते हुए सगर चक्रवर्ती ने तुरन्त ही मणिरत्नों की सभी प्रतिमाओं को देवता अधिष्ठित गुफा में स्थापित कर दिया । तीर्थ पर उन प्रतिमाओं के स्थान पर स्वर्ण की प्रतिमाएँ तथा चाँदी के मन्दिरों का निर्माण करवाया ।

गुफा में रखी हुई मणिमय प्रतिमाओं के पूजन के लिए देवलोक से देवता जाते थे । इसी विषय को पंजाब केसरी परम पूज्य आचार्यश्री विजय वल्लभसूरिजी म. ने एक स्तवन में लिखा है—

चक्री सगर सुर दिल में धारी, दुःषम काल में भावी विचारी ।

बिंब गुफा में जा पधारा — जा पधारा — सिद्धगिरि सानी न मिला ॥

देवी—देव मिल पूजन को आते, ठाठ बना सही गुण गाते,

जय-जय शब्द उच्चारण जी उच्चारण  
सिद्धगिरि सानी न मिला ॥

इस प्रकार सगर चक्रवर्ती ने इस तीर्थ का सातवाँ उद्धार किया ।

## आठवाँ उद्धार - व्यन्तर इन्द्र

इस अवसरपिणी काल के चौथे तीर्थकर श्री अभिनन्दनस्वामीजी इस पृथ्वी तल पर विहार करते हुए एक बार शत्रुञ्जय तीर्थ पर पधारे । देवों ने समवसरण की रचना की । बार पर्षदा के मध्य में प्रभु ने अपनी दिव्य देशना दी और शत्रुञ्जय तीर्थ की अलौकिक महिमा का वर्णन किया ।

देशना सुनने के बाद व्यन्तर निकाय के इन्द्रों ने तीर्थ की स्थिति को अपनी नजरों से जीर्ण-शीर्ण देखा । मन में बहुत दुःखी हुए । तब व्यन्तर निकाय के इन्द्रों ने इस तीर्थ का उद्धार किया ।

## नौवाँ उद्धार - चन्द्रयश राजा

आठवें तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभुस्वामीजी जब पृथ्वी तल को पावन करते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ पर पधारे तब देवताओं ने समवसरण की रचना की । वहाँ चन्द्रप्रभु नगरी का राजा चन्द्रशेखर भी प्रभु की देशना सुनने के लिए आया । प्रभु की वैराग्यवाहिनी देशना को सुनकर राजा का हृदय वैराग्यवासित हो गया । उसने अपने पुत्र चन्द्रयश को राज्य सिंहासन सौंप कर प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण कर ली ।

वह चन्द्रशेखर राजर्षि संयम धर्म की निर्मल साधना करते हुए एक बार चन्द्रप्रभा नगरी में पधारे । चन्द्रयश राजा ने पिता मुनि का भव्य स्वागत किया । चन्द्रशेखर मुनि के उपदेश से चन्द्रयश राजा ने श्री चन्द्रप्रभुस्वामी का



भव्य मन्दिर बनाया । उसी मन्दिर में चन्द्रशेखर मुनि की प्रतिमा भी स्थापित की । राजर्षि के हाथों से उस मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

उस समय आकाशवाणी हुई कि— हे भव्य प्राणियों ! जो इस तीर्थ का ध्यान करेगा वह उच्च गति को प्राप्त करेगा । आज भी यह तीर्थ प्रभास पाटण के नाम से प्रसिद्ध है ।

तत्पश्चात् राजर्षि चन्द्रशेखर ने अपने पुत्र को शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार की प्रेरणा दी ।

पिता मुनि की प्रेरणा पाकर चन्द्रयश राजा ने अत्याधिक उल्लास से शत्रुञ्जय तीर्थ छःरी पालित यात्रा संघ निकाला । मार्ग में आते हुए अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया । जब संघ शत्रुञ्जय पहुँचा तो राजा ने तीर्थ को जीर्ण-शीर्ण दशा में देखा । राजा का मन बहुत दुःखी हुआ । तुरन्त ही राजा ने उसका जीर्णोद्धार कराया । अन्त में चन्द्रयश राजा ने भी दीक्षा और मोक्ष पद को प्राप्त किया ।

## दसवाँ उद्धार - चक्रधर राजा

शत्रुञ्जय महातीर्थ का दसवाँ उद्धार श्री शान्तिप्रभु के शासनकाल में हुआ था ।

श्री शान्तिनाथ प्रभु पृथ्वी तल को पावन करते हुए एक बार हस्तिनापुर नगर में पधारे । प्रभु के आगमन का समाचार सुनकर तीनखण्ड का अधिपति चक्रधर राजा प्रभु को वन्दन करने के लिए आया । प्रभु ने अपनी धर्मदेशना में शत्रुञ्जय तीर्थ की महिमा, संघ, जिनपूजा तथा संघपति के स्वरूप का वर्णन किया ।

राजा ने विनन्ती की— प्रभो ! मुझे संघपति पद प्रदान करो । उसी समय

प्रभु ने उसके मस्तक पर वासक्षेप डालकर आशीर्वाद दिया । तत्पश्चात् प्रभु अन्यत्र विहार कर गए ।

चक्रधर राजा ने शत्रुञ्जय तीर्थ के संघ का आयोजन किया । मंगल मुहूर्त में धूमधाम से संघ ने प्रयाण किया ।

मार्ग में अनेक व्यक्तियों को कष्टों से मुक्त करते चक्रधर राजा आगे बढ़ रहे थे । मार्ग में जाते हुए उसे कुछ तापस मिले जो कन्दमूल आदि खाकर अपना तापस जीवन व्यतीत कर रहे थे । चक्रधर राजा ने उनको प्रतिबोध देकर सच्चा धर्म समझाया । वे भी संघ में साथ हो गए ।

तत्पश्चात् चक्रधर राजा संघ सहित शत्रुञ्जय तीर्थ पर पहुँचे । तीर्थ की यात्रा की । चक्रधर राजा द्वारा प्रतिबोध पाए हुए तापस अनशन करके शत्रुञ्जय तीर्थ पर मोक्ष में गए ।

इन्द्र की विनन्ती से चक्रधर राजा ने शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया ।

शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा तथा उद्धार करके जब चक्रधर राजा हस्तिनापुर वापिस आए तब उसे समाचार मिला कि श्री शान्तिनाथ प्रभु का सम्मत्शिखर तीर्थ पर निवारण हो गया है । सुनकर राजा तुरन्त सम्मत्शिखर गया और वहाँ प्रभु की स्मृति में मणिमय मन्दिर का निर्माण कराया ।

तत्पश्चात् चक्रधर राजा ने भी संयम स्वीकार किया । दस हजार वर्ष तक चारित्र्य धर्म का पालन करके केवलज्ञान को प्राप्त किया और अन्त में सम्मत्शिखर तीर्थ पर ही मोक्षपद को पाया ।

## ग्यारहवाँ उद्धार - श्री रामचन्द्रजी

बीसवें तीर्थकर श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी के शासन में श्री रामचन्द्रजी ने शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया था ।

रावण पर विजय प्राप्त करके जब श्री रामचन्द्रजी अयोध्या पधारे तब भरत ने रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक किया ।

भरत ने देशभूषण मुनि के पास अपना पूर्वभव सुना । पूर्वभव सुनकर भरत के अन्तःकरण में वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने मोह-माया के बन्धनों को तोड़ कर दीक्षा अंगीकार की । अन्त में एक हजार मुनियों के साथ शत्रुञ्जय तीर्थ पर आए, अनशन किया और अन्त में निर्वाण पद को प्राप्त किया ।

भरत के मोक्षगमन का समाचार सुनकर श्री राम तथा लक्ष्मणजी भी शत्रुञ्जय तीर्थ पर पधारे । इस पवित्र तीर्थ की यात्रा की । मन्दिरों की जीर्ण स्थिति देखकर सभी चैत्यों का उद्धार किया । भरत के निर्वाण स्थल पर भरत मुनि की चरण पादुका भी स्थापित की ।

## बारहवाँ उद्धार - पाण्डव

बावीसवें तीर्थकर श्री नेमीनाथ भगवान के शासन में हुए पाण्डवों ने इस शत्रुञ्जय तीर्थ का बारहवाँ उद्धार कराया था ।

पाँचों पाण्डव युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् कुन्ती माता का चरण स्पर्श करने के लिए आए और नमन करके माता का आशीर्वाद लेने के पश्चात् माँ के पास ही बैठ गए । तब माता कुन्ती ने कहा— बेटा ! इस विजय में आनन्द मनाने जैसा नहीं है । सुनकर वे काँपते स्वर से पूछने लगे— हे जगदम्बा ! हे माँ ! हमने बहुत युद्ध किए, बहुत लड़ाइयाँ लड़ी, खूब मारकाट की, अनेकों सैनिकों को जीवित ही युद्ध में मार दिया । अठारह अक्षौहिणी सेना का कच्चरघाण निकाल दिया, झूठ, माया, छल, प्रपंच आदि अनेक पाप कार्यों का आचरण करके हमने राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया है । माँ उन सब दृश्यों को याद करके हमारी आत्मा रो रही है । शरीर का अणु-अणु काँप रहा है । माँ इन पाप कर्मों से बचने के लिए अब हमें क्या करना चाहिए ।

माता कुन्ती ने कहा— हे पुत्रों ! युद्ध के इन पाप कर्मों से निर्मूल होने के लिए सिद्धगिरि शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है । आप श्री आदिनाथ परमात्मा की शरण में जाओ और जीवन में किए पापों का प्रक्षालन करो ।

माता की आज्ञा को प्राप्त करके उन पाँचों पाण्डवों ने अपने कर्मों को क्षय करने के लिए शत्रुञ्जय तीर्थ का महान संघ निकाला और वहाँ पर जाकर परमात्म भक्ति की । जीर्ण अवस्था में पड़े हुए चैत्यों का उद्धार किया ।

अन्त में उन सभी पाण्डवों ने द्रौपदी तथा माता कुन्ती सहित दीक्षा अंगीकार की । शुद्ध संयम की साधना करके इसी शत्रुञ्जय महातीर्थ पर अनशन करके आसो सुदी पूनम के दिन बीस करोड़ मुनियों के साथ शाश्वत अजर—अमर मोक्षपद को प्राप्त किया । इस प्रकार पाण्डवों ने इस तीर्थ का बारहवाँ उद्धार किया ।

चौथे आरे ए थया, सवि मोटा उद्धार ।

सूक्ष्म उद्धार वच्चे थया, कहता ना आवे पार ॥

## श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का 13वाँ उद्धार

### श्री वज्रस्वामीजी और जावड़शा

श्री सिद्धगिरि राज के पंचम काल के उद्धारों में सर्व प्रथम नाम सूर्य के समान चमकता है जावड़ शा का ।

जावड़शा के पिता का नाम भावड़शा तथा माता का नाम था भावला । परिवार की स्थिति सामान्य थी । मुश्किल से दो समय भोजन करके जीवन व्यतीत कर रहे थे । एक बार उनके घर दो मुनिराज गौचरी के लिए पधारे । भावला ने उल्लास भरे हृदय से गुरु को सुपात्र दान दिया । गुरु जब धर्मलाभ देकर जाने लगे तब भावला ने हाथ जोड़कर पूछा— हे कृपालु गुरुदेव ! क्या हमें

धन की प्राप्ति होगी या नहीं ? यदि होगी तो कैसे और कब होगी ? गुरु ने उनके ललाट को देखकर विचार किया कि भविष्य में इस परिवार के द्वारा कोई अच्छा काम होने वाला है ऐसा सोचकर उसे कहा कि आज ही आपके आँगन में कोई व्यापारी घोड़ी बेचने के लिए आएगा उस घोड़ी को आप खरीद लेना । इतना कहकर गुरु चले गए ।

थोड़ी देर के पश्चात एक व्यापारी घोड़ा-घोड़ी लेकर आया, घोड़ी स्वयं ही उनके घर में आकर खड़ी हो गई। भावड़शा ने जैसे-तैसे पैसे का प्रबन्ध करके घोड़ी युगल को खरीद लिया ।

महापुरुषों का कथन है कि कोई पुण्यवन्त मानव या पशु के पगले (चरण) अपने घर में पड़ते हैं तो सारे कुटुम्ब का भाग्य बदल जाता है और कभी किसी ऐसे निष्पुण्यक व्यक्ति के चरण पड़ने से सारा परिवार ही दुःखद स्थिति में आ जाता है ।

लक्षणवन्ती घोड़ी के आने से थोड़े समय बाद ही भावड़शा के भाग्य का सितारा चमकने लगा । घोड़ी ने तीन बछड़ों को जन्म दिया । भावड़शा ने उनका अच्छी तरह पालन पोषण किया । पूर्ण रूप से उनको तैयार करके तपन राजा के पास उनको तीन लाख में बेच दिया । उस द्रव्य में से उसने नई अनेक घोड़ियों को खरीद लिया । देखते ही देखते छोटे-छोटे लक्षणवन्त हजारों अश्वपुत्र भावड़शा के आँगन में खेलने लगे । उन सभी को देखकर पति-पत्नी के हर्ष की सीमा न रही । घर के बच्चों की तरह उनका पालन किया । सभी को अच्छी ट्रेनिंग देकर एक दिन भावड़शा सभी को लेकर विक्रमादित्य राजा के पास भेंट देने के लिए ले गया । राजा ने उसकी भेंट को स्वीकार करके प्रसन्न होकर मधुमति (महुवा) नगर के साथ 12 (बारह) गाँवों का उसे ठाकुर बना दिया ।

मधुमति का राज्य मिलने के पश्चात् भावला के घर एक सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम रखा जावड़शा । माता-पिता के वात्सल्य को ग्रहण करता हुआ जावड़शा बड़ा होने लगा । युवावस्था होने पर जयमती नाम की

कन्या के साथ उसकी शादी कर दी । एक दिन ऐसा आया कि भावड़शा का जीवन दीप बुझ गया । पिता के स्वर्गवास का जावड़शा को अति आघात लगा । फिर भी उसने मधुमति का सारा कार्यभार सम्भाल लिया ।

एक दिन मलेच्छ लोगों ने मधुमति पर छापा मारा और खूब सम्पत्ति को लूट लिया । बहुत लोगों को कुटुम्ब सहित उठाकर अनार्य देश में ले गए । इसमें जावड़शा भी फँस गया ।

अनार्य देश में रहकर भी जावड़शा ने धर्म श्रद्धा को स्थिर रखा और अपनी बुद्धि की कुशलता से मलेच्छ लोगों को भी प्रभावित कर दिया । तब वहाँ के राजा ने जावड़ को स्वतन्त्र व्यापार करने की आज्ञा दे दी । वहाँ पर उसने खूब धन कमाया और एक जिन मन्दिर का निर्माण कराया । बाहर से आने वाले अपने साधर्मिक जैन भाइयों को सहायता करके उनको भी वहाँ पर स्थिर किया ।

एक बार इसी प्रदेश में विहार करते-करते जैन मुनि पधारे । सभी लोग उनका प्रवचन सुनने के लिए गए । गुरु महाराज ने प्रवचन में श्री सिद्ध गिरिराज की अपूर्व महिमा का वर्णन किया और बाद में दुखित हृदय से कहा कि हे भव्य प्राणियों ! आज इसी पवित्र गिरिराज पर मिथ्यात्वी बना हुआ कपर्दि यक्ष घोर आशातना कर रहा है । गिरिवर के ऊपर स्थान-स्थान पर मांस के टुकड़े बिखेर दिए हैं, हंडियों का ढेर जगह-जगह पर लगा दिया है, रुधिर की नदियाँ बहा दी हैं, पचास योजन के अन्दर यदि कोई आ जाता है तो उसे मार देता है । ऐसी पावन सिद्धगिरि की भूमि पर कोई भी भव्यात्मा नहीं जा सकता है । ऐसे कष्टमय समय में जावड़शा ही इस तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ होगा ।

जावड़शा ने खड़े होकर कहा— हे गुरुदेव ! आपश्रीजी मेरा मार्ग दर्शन कीजिए, मैं किस प्रकार इस तीर्थ का उद्धार करूँ ।

गुरुदेव ने कहा— हे जावड़शा ! तुम चक्रेश्वरी देवी की आराधना करो वह देवी ही तुम्हें मार्ग बताएगी और तुम्हारा सारा काम पूर्ण करेगी ।

दूसरे ही दिन जावड़शा ने चक्रेश्वरी देवी का ध्यान प्रारम्भ कर दिया । एक-दो-तीन दिन करते-करते बीस दिन व्यतीत हो गए । अन्त में देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा— मैं तेरे मनोरथ को जानती हूँ । तक्षशीला नगरी की धर्मचक्र सभा के अगले भाग में एक भोंयरा है । उस भोंयरे में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा है । वह तू वहाँ से लेकर सिद्धगिरि पर विराजमान कर ।

देवी के कथनानुसार जावड़शा तक्षशीला पहुँच गया । वहाँ के राजा जगन्मल्ल को बहुत भारी अमूल्य भेंट देकर प्रसन्न किया और गुप्त भोंयरे में रही हुई प्रतिमा की माँगनी की । राजा ने प्रसन्न मन से प्रतिमा ले जाने की स्वीकृति दे दी ।

बाहुबलीजी ने जिस प्रतिमा का ध्यान किया था ऐसा प्रभु ऋषभदेव का बिंब आज तक अज्ञात अवस्था में था । उसे जावड़ ने भोंयरे में से प्रकट किया और रथ में विराजमान करके महुवा की तरफ प्रयाण कर दिया ।

धीर वन प्रदेश के विकट मार्ग में प्रतिमाजी को लेकर आते हुए बहुत कष्टों का सामना करना पड़ा । जिससे उस समय नव लाख (9 लाख) द्रव्य का खर्च हुआ । चलते-चलते एक शुभ दिन, शुभ घड़ी में जावड़शा जिनबिंब को लेकर मधुपुरी पहुँच गया । योगानुयोग उसी दिन 10 पूर्वधर आचार्यप्रवर श्री वज्रस्वामीजी महाराज भी महुवा पधारे । जावड़शा ने उपाश्रय जाकर गुरुवन्दन करके, सुखशान्ति पूछकर अपने अन्तर की बात उनको कही । गुरुदेव ने उसे आश्वासन दिया ।

उसी समय जावड़शा के मुनीम ने आकर बधाई देते हुए कहा— सेठजी ! प्रदेश में व्यापार के लिए गए हुए अपने व्यक्ति तथा वाहण सुरक्षित रूप से वापस आ गए हैं । सब कुछ मिलाकर बारह (12) वाहण भर जाए इतना नगदी सोना भरकर लाए हैं ।

यह बात अभी पूरी ही नहीं हुई थी कि एक दिव्य पुरुष (देव) वहाँ पर प्रगट हुआ । उसने सूरिजी को भावपूर्वक वन्दन करके कहा— गुरुदेव मैं कपर्दी

यक्ष नाम का नूतन देव हूँ । आपने पूर्व जन्म में मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया था । मैं पूर्व भव में बहुत दारू (शराब) पीता था । आपके दारू पर दिए हुए प्रवचन को सुनकर मैं बहुत प्रभावित हो गया था । मेरी दारू त्याग की बहुत इच्छा होने पर भी छोड़ नहीं सकता था । आपश्रीजी ने मुझे ऐसी प्रतिज्ञा दी कि जब तक तुम्हारे इस कपड़े को या डोरी को गाँठ लगी रहे तब तक दारू नहीं पीना, गाँठ खोलने के बाद ही दारू पी सकते हो । (इस प्रतिज्ञा अर्थात् प्रत्याख्यान को जैन शास्त्रों में गंठसि का पच्चक्खाण कहा गया है) आपश्री के वचनानुसार मैंने इसका पालन चालू कर दिया । एक बार वह गाँठ महागाँठ बन गई । बहुत खोलने पर भी वह नहीं खुली । दारू न पीने के कारण मेरी नसें खिंचने लगी । मेरे परिवार वालों ने प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए मुझे परेशान किया, परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन में दृढ़ रहा, अन्त में मेरे प्राण निकल गए । गुरुदेव आपने मेरे जीवन को सुधार दिया । गुरुदेव कमाल हो गया । दारूड़िया जीव देवलोक में देव बन गया । यह सब आपका ही उपकार है । अब मैं आपश्रीजी के इस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ । कृपा करके मुझे कोई आदेश दीजिए । गुरुदेव ने कहा— हे यक्ष ! तुमको शत्रुञ्जय उद्धार में सहायक बनना है । यही ऋणमुक्ति का उपाय है ।

शत्रुञ्जय महातीर्थ को पुराने मिथ्यात्वी कपर्दी यक्ष ने दारू—मांस—विष्टा—प्रक्षेप आदि से भ्रष्ट कर दिया था इस चिन्ता में आचार्यश्रीजी अति व्यथित थे । प्रचण्ड आत्मबल के स्वामी होने पर भी उनको किसी महापुण्यवान श्रावक की जरूरत लगती थी । जिनशासन के बहुत कार्य अकेली साधना से नहीं होते अपितु साधनों की भी जरूरत पड़ती है । शत्रुञ्जय उद्धार की सुनहरी घड़ी सामने खड़ी थी । सुन्दर समन्वय था ।

सूरिजी का आध्यात्मिक बल, जावड़ शा का अर्थद्रव्य रूपी भौतिक बल, और नूतन कपर्दी यक्ष का देवी बल ।

आचार्यश्रीजी ने जावड़ को कहा— हे महाभाग्यशाली ! तेरे हाथ से शत्रुञ्जय तीर्थ का तेरहवाँ उद्धार होने वाला है । उसमें मैं निमित्त बनूँगा । कपर्दी यक्ष



अपना सहायक बनेगा । परन्तु एक बात निश्चित है कि पुराने कपर्दी मिथ्यात्वी यक्ष के मलीन देवी-देवताओं में विपुल बल है । वह आसानी से इस तीर्थ को छोड़कर नहीं जाएगा । वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर हम सभी को समाप्त करने का प्रयत्न करेगा । परन्तु हम सभी को पंच परमेश्वर भगवान की शरण को स्वीकार करना है । हमें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है । कष्टों को सहन करने के बाद अन्तिम विजय अपनी ही होगी । चलो अभी इसी समय हम तीनों आदिनाथ दादा की साक्षी लेकर तीन नवकार मन्त्र पढ़कर संकल्प करते हैं कि हम विजय की वरमाला पहनेंगे, तीर्थ का उद्धार करके ही रहेंगे । अन्त में सूरिजी ने जावड़ को देखकर कहा कि आज से आप दम्पति को सम्पूर्ण शीलव्रत का पालन करना है । यह तुम्हारा व्रत सभी विपत्तियों को दूर करेगा । अब तुम शत्रुञ्जय तीर्थ का छःशे पालित यात्रा संघ निकालो ।

12 वाहण भरे हुए सोने को जावड़शा भी किसी अच्छे कार्य में लगाना चाहता था । उसने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करके छःशे पालित यात्रा संघ की तैयारी प्रारम्भ कर दी । हजारों पुण्यात्मा उस संघ में जाने के लिए तैयार हो गए । महुवा के चारों तरफ के गाँवों के लोग, सैकड़ों साधु-साध्वीजी महाराज भी उस संघ में जुड़ गए ।

एक दिन शुभ मंगल मुहूर्त में हजारों यात्रियों और सैकड़ों साधु-साध्वियों सहित आचार्यश्री वज्रस्वामीजी ने संघ सहित प्रयाण किया । मार्ग में नवकार मन्त्र का अखण्ड जाप चालू किया । विघ्न विदारक सामूहिक आयम्बिल तप होने लगा । गुरुदेव ने अपनी साधना को बढ़ा दिया । नूतन कपर्दी यक्ष सदा हाथ जोड़कर गुरु सेवा में तत्पर रहता था ।

तीर्थ का नाश करने वाले दुष्ट कपर्दी यक्ष को जब यह सब समाचार मिला तो उसने क्रोधित होकर अपनी पूरी ताकत से इनके ऊपर आक्रमण करने का निश्चय किया ।

आचार्य वज्रस्वामीजी ने कई घन्टों की तप जप की सूक्ष्म साधना के द्वारा स्वयं का तथा संघपति जावड़ का कवच कर दिया । जिससे कपर्दी उनका कुछ

भी बिगाड़ न सका । उसने सर्वप्रथम जावड़ की पत्नी जयमती को अपने फन्दे में फँसाया । जिससे उसे जोरदार बुखार चढ़ गया । गर्मी के कारण उसका जीव घबराने लगा । फिर संघ के यात्रियों पर उपद्रव करने लगा, किसी को भयानक स्वप्न दिखाने लगा । कई यात्रियों को वमन होने लगा, अपचन हो गया सारा शरीर टूटने लगा । ऐसे भयानक उपद्रवों से घबराकर कई यात्री वापिस घर जाने की तैयारी करने लगे । परन्तु संघरक्षक आचार्य भगवन ने अभिमन्त्रित जल तथा रक्षापोटली आदि से सभी को स्वस्थ कर दिया और धर्मोपदेश देते हुए कहा कि किसी को घबराने की जरूरत नहीं है, किसी की भी मृत्यु होने वाली नहीं है, उपसर्ग, उपद्रव जरूर होंगे परन्तु तीर्थ रक्षा के लिए सभी कटिबद्ध होकर सहनशील बनो । गुरुदेव की वाणी सुनकर सभी यात्री एकदम स्वस्थ हो गए और आगे बढ़ने लगे ।

जत्थाबंध मलीन देवी देवता जोर-जोर से अट्टहास करने लगे, निर्वस्त्र बनकर दौड़ा-दौड़ करने लगे । लोगों को भयभीत करने लगे । आचार्य भगवन मन्त्र जल से सभी का प्रतिकार कर रहे थे । संघ का प्रयाण तीव्र गति से चालू था । चक्रेश्वरी देवी के द्वारा प्राप्त हुई परमात्मा आदिनाथ की प्रतिमा भी संघ के साथ रथ में विराजमान थी ।

एक दिन रात्रि के समय आचार्य वज्रस्वामीजी ने जावड़ तथा नूतन कपर्दी यक्ष को बुलाकर कहा कि संघ प्रयाण के पूर्ण होने की तैयारी है । थोड़े ही समय में हम सभी तलेहटी पर पहुँच जाएँगे । अपने साथ में रहे हुए आदिनाथ प्रभु के जिनबिम्ब को पहाड़ पर चढ़ाना अति कठिन कार्य है । मेरा आध्यात्मिक बल, देव का दिव्य बल, और जावड़जी तुम्हारा मानव बल अब पूरी ताकत से लगाने का समय है ।

मेरी एक बात याद रखना प्रतिमाजी ऊपर जाने के बाद रात्रि के समय नीचे तलेहटी पर आ जाएगी । दुष्ट कपर्दी यक्ष इस प्रभावक प्रतिमा की प्रतिष्ठा के पल तक अपनी सारी मेहनत निष्फल करने का प्रयत्न करेगा । इक्कीस (21) बार प्रतिमाजी को हम ऊपर लेकर जाएँगे और (21) इक्कीस बार ही वह नीचे

उतार देगा परन्तु किसी को निराश नहीं होना अन्तिम विजय अपनी ही होगी । तत्पश्चात् सूरिजी ने जावड़ को विशिष्ट मन्त्र साधना दी । जावड़ उसमें तन्मय हो गया । नूतन कपर्दी यक्ष के मस्तक पर हाथ रखकर आचार्य भगवन ने उस पर सूक्ष्म शक्ति पात किया, उसी क्षण कपर्दी का सम्पूर्ण स्वरूप बदल गया । उसके मन में पुराने दुष्ट कपर्दी की मलीन टोली को भगाने की भावना तीव्रता से उछलने लगी ।

श्री संघ ने पालीताना में प्रवेश किया, संघ तलहटी पर पहुँच गया । रथ सहित सभी जिनबिम्ब को ऊपर खींचने लगे । ठेठ ऊपर रथ पहुँच गया । सभी के हर्ष का पार न रहा । परन्तु अफसोस ! रात्रि को रथ सहित वह बिम्ब तलेटी पर आ गया । इस प्रकार इक्कीस (21) बार जिनबिम्ब को ऊपर लेकर गए और इक्कीस बार ही ऐसा बना । मिल रही सफलता पर दुष्ट पुराना कपर्दी अट्टहास करने लगा । उसके इस अट्टहास से सभी यात्री भयभीत होकर काँपने लगे ।

बावीसवीं बार पुनः रथ ऊपर चढ़ाया । आज संध्या के समय ही आचार्य वज्रस्वामीजी ने जावड़ और जयमती की देह को मन्त्र बलों से अभेद्य बना दिया था । दोनों को रथ के पहिए के आगे सुला दिया । उनके बाजू में ही स्वयं सूरिजी पद्मासनस्थ और ध्यानस्थ बनकर बैठ गए । अरिहन्त परमात्मा के साथ अभेद प्रणिधान का उत्कृष्ट योग साधने लगे । सकल श्री संघ भी कायोत्सर्ग करके ध्यान मुद्रा में लीन हो गया ।

उस दिन भी दुष्ट कपर्दी ने प्रतिमा नीचे ले जाने की बहुत मेहनत की परन्तु आचार्य भगवन्त की सम्पूर्ण शक्ति के आगे उसकी मेहनत निष्फल हो गई । प्रातःकाल हुआ । रथ को, प्रतिमा को, सकल संघ को सुरक्षित देखकर सभी ने पूरा जोर लगाकर हर्षनाद के साथ जयघोष किया । नूतन कपर्दी यक्ष भी अब सैकड़ों देवों की सशस्त्र सेना सहित उपस्थित हो गया ।

आचार्य भगवन के आदेश में जावड़शा ने सिद्धगिरि पर पूरी सफाई कराई, जहाँ पर भी हड्डियाँ, खून आदि पड़ा था । पुरानी प्रतिमा पर तथा मन्दिर की

दिवारों पर जो उस दुष्ट ने लेप कर रखा है वह सारा शत्रुञ्जय नदी के जल से गाय के दूध से साफ कराया । संघपति दम्पति ने वर्णभ्रष्ट पुरानी लेप्यमयी प्रतिमा को जैसे ही उठाया कि दुष्ट पुराने कपर्दी यक्ष ने भयंकर, रौद्र आवाज की जिससे सारा गिरिराज काँपने लगा, तत्पश्चात् उसने अपना भयानक स्वरूप दिखाया जिससे सारे यात्री इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे । उस समय आचार्य वज्रस्वामीजी ने अपनी सम्पूर्ण मन्त्र शक्ति से चावलों को मन्त्रित करके चारों तरफ फेंक दिया । जिससे सभी मलीन तत्व दुष्ट देवता स्तम्भित हो गए और कपर्दी दुष्ट यक्ष भी डीला, शक्ति रहित हो गया । उसी समय नूतन कपर्दी यक्ष ने आकर अचेतन अवस्था में पड़े पुराने कपर्दी को थप्पड़ मारकर भूमि पर गिरा दिया । प्रतिष्ठा का समय निकट होने से नूतन कपर्दी ने अपनी सेना की सहायता लेकर मलीन तत्वों को दूर भगाया और पुराने दुष्ट कपर्दी को जोरदार भयंकर आवाज करके खड़ा किया तथा भगाने लगा । स्वयं वज्र लेकर उसके पीछे-पीछे भागने लगा । इस प्रकार सभी की शक्तियों से सभी मलीन देवता तथा दुष्ट मिथ्यात्वी कपर्दी भी पहाड़ छोड़कर भाग गया ।

तत्पश्चात् प्रतिष्ठा महोत्सव प्रारम्भ हुआ । जावड़शा और उसकी पत्नी ने जो परमात्मा का बिम्ब अपने साथ लेकर आए थे उसे उठाया और पुरानी प्रतिमा के स्थान पर उसे मन्त्र विधि से स्थापित किया । शुभ मुहूर्त में नए जिनबिम्ब की वहाँ पर प्रतिष्ठा की गई । सर्वत्र जय-जय श्री आदिनाथ का जयघोष होने लगा । सूरिजी ने मन्त्रित वासक्षेप से मन्त्रक्षेप किया । जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा विधि होने पर जावड़ शा के हर्ष का पार नहीं था । शुभ मुहूर्त में दादा गादीनशीन हुए ।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव में जावड़ ने दस (10) लाख द्रव्य का खर्च किया । प्रतिष्ठा सम्पन्न होने पर ध्वजा चढ़ाने के लिए दोनों पति-पत्नी शिखर पर चढ़े । हर्षोल्लास से ध्वजा चढ़ाने के पश्चात् दोनों वहाँ पर ही नाचने लगे और अन्तर में भावना भाने लगे कि हे प्रभु ! बाहुबली द्वारा पूजित आज परमात्मा की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का तीर्थ का उद्धार करने का मुझे सौभाग्य मिला अब हे प्रभु ! अब सर्व विरति धर्म मुझे शीघ्र ही प्राप्त हो । हे आदिश्वर दादा ! यह

मेरी अन्तिम इच्छा शीघ्र पूरी करो । इसी विचार धारा में नाचते-नाचते दोनों पति-पत्नी के प्राण पंखेरु उड़ गए । दोनों मरकर चौथे देवलोक में गए ।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव को देखने के लिए आकाश में आए हुए देवों ने दोनों की देह को क्षीरसागर में स्नानादि कराकर यथाविधि से अग्नि संस्कार कर दिया ।

जैसे माता-पिता की मृत्यु का समाचार मण्डल में बैठे जावड़शा के पुत्र जाजनाग को मिला तो वह कल्पान्त करने लगा । ऊपर जाकर जब उसे माँ-बाप का शव भी नहीं मिला तो वह अत्यधिक जोर से रोने लगा । तब वज्रस्वामीजी ने तथा चक्रेश्वरी देवी ने उसे आश्वासन दिया और समझाया कि तुम्हारे माता-पिता परमात्म-भक्ति के प्रभाव से चौथे देवलोक में गए हैं । देवों ने उनकी अन्तिम संस्कार विधि कर दी है । यह सब समाचार सुनकर जाजनाग को कुछ आश्वासन मिला और स्वयं उसको भी ऐसे माता-पिता की सन्तान बनने का आत्मगौरव होने लगा ।

तत्पश्चात् जाजनाग ने गुरु की आज्ञा से अपना शोक निवारण करने के लिए सिद्ध गिरिराज से गिरनारजी तीर्थ का छःरी पालित यात्रा संघ निकाला और अपूर्व जिन भक्ति की ।

इस प्रकार भगवान महावीरस्वामी के निर्वाण बाद 470 वर्ष पश्चात् परम पूज्य वज्रस्वामीजी के उपदेश से जावड़ शा ने शत्रुञ्जय तीर्थ का तेरहवाँ (13वाँ) उद्धार कराया और मलीन देवों की, मलीन तत्त्वों की आसुरी ताकत को, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक बल द्वारा अर्थात् जावड़ शा कपर्दी देव और सूरिजी तीनों ने पूरी ताकत लगाकर इनकी शक्ति को क्षीण किया और भगाया । शत्रुञ्जय तीर्थ महान तीर्थ है । पुण्यशाली आत्माओं को ही इसकी भक्ति का सुअवसर मिलता है ।

**श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का 14वाँ उद्धार**  
**आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरिजी तथा बाहड़ शा मन्त्री**  
**( विक्रम सम्बत् 1273 )**

समस्त गुजरात में महाराजा कुमारपाल का एक छत्री साम्राज्य छाया हुआ था । मात्र सौराष्ट्र का समर राजा कुमारपाल की आज्ञा में नहीं था । कुमारपाल ने उसे युद्ध का सन्देश भेज दिया और अपने विश्वास पात्र मन्त्रीश्वर उदयन को युद्ध का नेतृत्व सम्भालने के लिए युद्ध करने के लिए सेना सहित भेजा । महाराजा कुमारपाल धर्मी होने के नाते उदयन का हृदय भी धर्म के रंग से रंगा हुआ था । उदयन उच्च कोटि का जैन श्रावक था । युद्ध भूमि पर भी दो बार प्रतिक्रमण करता था ।

जब युद्ध में मोरचे पर जाने के लिए निकला और गुजरात पार करके सौराष्ट्र में प्रवेश किया तो मन्त्री ने अपनी सेना को आदेश दिया कि आप सभी रण में मोरचे पर पहुँचो और मैं शत्रुञ्जय तीर्थ में दादा का दर्शन करके शीघ्र ही पहुँच जाऊँगा ।

उदयन मन्त्री ने घोड़े की लगाम खेंची और अश्व हवा से बातें करता हुआ बिजली वेग से सिद्धगिरि की ओर भागने लगा । थोड़े ही समय में मन्त्रीश्वर गिरिराज पर पहुँच गए । दादा का दर्शन करके हर्षोल्लास पूर्वक जब चैत्यवन्दन करने बैठे तब अचानक एक घटना घटित हुई । मन्दिर में दीपक जगमगा रहा था । तभी एक चूहा आया वह जलती हुई बत्ती लेकर मूल गम्भारे में चला गया । उस समय मन्दिर लकड़ी का बना हुआ था । मन्त्री तुरन्त उठकर चूहे के पीछे भागा और (दीवेट) बत्ती को बुझा दिया । इस दृश्य ने मन्त्री के हृदय में एक चिन्ता पैदा कर दी । मन्त्री सोचने लगा कि आज तो मैंने देख लिया और बत्ती को बुझा दिया । यदि कोई देखने वाला न होता तो यह जलती बत्ती काष्ठ के मन्दिर का स्पर्श करके अनर्थ पैदा कर देती और पूरे का पूरा काष्ठ (लकड़ी)

का प्रासाद जलकर भस्मीभूत हो जाता । अब तो मुझे सर्वप्रथम यहाँ पर पाषाण का मन्दिर बनाना चाहिए । युद्ध पूर्ण होने के बाद सबसे पहले लकड़ी के बदले पाषाण का जिनमन्दिर बनाऊँगा । बस वहाँ पर बैठे-बैठे दादा की साक्षी में संकल्प किया कि जब तक मन्दिर नहीं बनेगा तब तक प्रतिदिन एकासना करूँगा, भूमि पर शयन करूँगा, ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, मुखवास (ताम्बुल आदि) का त्याग करूँगा ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा ग्रहण करके मन्त्री उदयन युद्ध के मैदान में पहुँच गया । सम्राट समरसेन के साथ युद्ध करते-करते अनेक वीर योद्धा मरण की शरण चले गए । मन्त्रीश्वर की देह भी बाण के प्रहारों से जर्जरित हो गई । सम्राट समरसेन मन्त्री के हाथों से मृत्यु शय्या पर सो गया ।

विजय पताका को तो फहरा दिया परन्तु मन्त्री की काया भी युद्ध के घावों से जीर्ण-शीर्ण होकर भूमि पर गिर गई । मानो मन्त्री के जीवन का यह अन्तिम युद्ध था । भूमि पर गिरते ही उसका पुत्र बाहड़ तथा विचक्षण सैनिक आदि उसके चारों तरफ आकर खड़े हो गए । मन्त्री उदयन ने अपना अन्तिम समय जानकर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया । उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । यह दृश्य देख सभी बिस्मित हो गए । गुजरात का मन्त्री, वीतराग परमात्मा का उपासक और अन्त समय आँख से आँसू !

पुत्र बाहड़ ने पूछा— पिताजी ! आपकी आँखों में आँसू क्यों ? यदि आपकी कोई अन्तिम इच्छा हो तो कहिए, हम उसे पूर्ण करेंगे । मन्त्री ने कहा— इस समय यदि मुझे किसी साधु महात्मा का दर्शन हो जाए और उनके मुख से नवकार मन्त्र का श्रवण हो जाए, यह मेरी इच्छा है तथा शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराने की मेरी भावना मन की मन में ही रह गई है । इसलिए मैं दुखी हूँ और रो रहा हूँ । इतना कहते-कहते मन्त्री की वाचा चुप हो गई, आँखें भर गई । पिता की बात सुन पुत्र बाहड़ ने कहा— पिताजी ! आपकी इच्छा पूरी होगी । जब तक सिद्धाचल तीर्थ का जीर्णोद्धार नहीं होगा तब तक मैं प्रतिदिन

एकासना, भूमि पर शयन तथा ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। बत्तीस (32) वर्ष की युवावस्था वाले पुत्र बाहड़ ने यह कठोर प्रतिज्ञा की ।

सामन्तों ने मन्त्री की अन्तिम साधु का दर्शन वन्दन करने की इच्छा पूर्ण करने के लिए एक बहुरूपिये को ढूँढ लिया । उसे बनावटी साधु बना दिया । नवकार मन्त्र सिखा दिया और उसे मन्त्री के पास लाकर खड़ा कर दिया । रण मैदान में साधु का दर्शन करके मन्त्री की मुखमुद्रा प्रसन्न हो गई । उसने भाव से मुनि महाराज के चरण छूकर वन्दन किया । नवकार मन्त्र तथा मांगलिक का श्रवण किया और पंच परमेष्ठि में अपने मन को स्थिर करके अन्तिम श्वास को छोड़ा । 'पंखी उड़ गया प्रदेश ।' सभी के मन उदास हो गए ।

बहुरूपिए को जब वेश उतारने के लिए कहा गया तो वह सोचने लगा कि अरे जिस मुनिवेश में मैंने गुजरात के मन्त्री उदयन जैसे धर्मात्मा का वन्दन लिया उस वेश को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ । अब मैं तो जीवन भर साधु के वेश को नहीं छोड़ूँगा । उस बहुरूपिए ने किसी सद्गुरु के पास जाकर विधिपूर्वक प्रवज्या ग्रहण की और अन्तिम समय गिरनार तीर्थ पर दो मास का अनशन करके कालधर्म को प्राप्त किया ।

सभी युद्ध में विजय प्राप्त करके जब पाटण में महाराजा कुमारपाल के पास आए तो सम्पूर्ण घटना सुनाकर उदयन के पुत्र बाहड़ ने कहा— महाराज ! मुझे गिरिराज का उद्धार कराना है कृपया आज्ञा दीजिए । कुमारपाल की आज्ञा लेकर बाहड़ ने शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार का महान कार्य चालू कर दिया । काष्ठ के मन्दिर को पाषाण का मन्दिर बनाने के लिए अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । परन्तु दो वर्ष में यह जीर्णोद्धार का कार्य पूर्ण हो गया उस जमाने में लगभग तीन करोड़ रु. खर्च हुआ । जीर्णोद्धार का कार्य पूर्ण होने का समाचार जैसे सन्देश वाहकों ने आकर बाहड़ मन्त्री को दिया तो मन्त्री ने प्रसन्न होकर सोने की बत्तीस जीभ उनको भेंट स्वरूप दी ।

थोड़े ही दिनों के बाद एक दूसरा व्यक्ति आया और उदास होकर बाहड़ मन्त्री के पास बैठ गया । मन्त्री ने पूछा— कहो क्या समाचार लाए हो ? वह



बोला मन्त्रीश्वर ! बहुत खराब समाचार है । मन्त्री ने कहा— कोई बात नहीं जो है वह कहो । वह काँपता—काँपता भयभीत होकर बोला— गिरिराज पर आरस (पत्थर) का प्रासाद तो तैयार हो गया है परन्तु उसकी भमती (प्रदक्षिणा) में पवन का गोला प्रवेश होने से मन्दिर फट गया है अर्थात् दरार पड़ गई है । तनिक भी उदास निराश और हताश हुए बिना मन्त्रीश्वर बाहड़ ने उसे चौंसठ (64) स्वर्ण की जीभ भेंट में दी । पास में बैठे लोगों ने पूछा— पहले व्यक्ति को आपने बत्तीस स्वर्ण की जीभ दी थी और इसे चौंसठ क्यों ? तब मन्त्रीश्वर ने कहा— भाई ! मुझे जीते—जीते ही इसने पुनः सुकृत करने का अवसर प्रदान किया है, मेरे मर जाने के बाद यदि मन्दिर का नुकसान होता तो मुझे यह लाभ कहाँ से मिलता ?

चार हजार घुड़सवारों को लेकर मन्त्री बाहड़ सिद्धगिरि पर पहुँचे । मन्दिर की दिवारों में पड़ी दरार को अपने नजरों से देखा और शिल्पियों से पूछा— यह कैसे हो गया ? शिल्पियों ने कहा— मन्त्रीश्वर ! भमतीवाला प्रासाद (मन्दिर) बनाने से पहाड़ के ऊपर जोरदार पवन अन्दर भर जाने से मन्दिर फट गया है यदि भमती (प्रदक्षिणा) नहीं बनाते तो शिल्प शास्त्र कहता है कि भमती बिना का मन्दिर बनाने वाले को संतति (सन्तान) का अभाव होता है । अतः मन्त्रीश्वर ! दोनों तरफ मुश्किल है ।

बिना विचार किए मन्त्री बाहड़ ने कहा— मुझे सन्तान का अभाव हो जाए तो कोई बात नहीं परन्तु मन्दिर ऐसा बनाओ कि हजारों वर्षों तक भी पीछे मुड़कर देखना न पड़े ।

कुशल शिल्पियों ने बुद्धि लगाई और मध्य मार्ग निकाला । उन्होंने भमती वाले भाग में जाने वाले दोनों दरवाजों को बहुत बड़ी शिला से पैक कर दिया जिससे भीतर हवा का प्रवेश ही न हो सके ।

(कहा जाता है कि आज जो मन्दिर विद्यमान है वह मन्त्री बाहड़ का ही बनाया हुआ है । दादा के पीछे घूमने वाली भमती, शिलाओं से पैक की हुई दीवार आज भी रंगमण्डप में दिखाई देती है और दादा के मूलगम्भारे के माप

से शिखर की चौड़ाई बहुत बड़ी है इससे अनुमान लगाया जाता है कि भमती जरूर भीतर होनी चाहिए ।)

इस प्रकार सम्पूर्ण मन्दिर तैयार हो जाने के पश्चात् बाहड़ मन्त्री ने बहुत बड़ा संघ निकाला और सिद्धगिरिशिखर पर जाकर परमात्मा के मन्दिर को देखकर अति हर्षित हुआ ।

वि.सं. 1213 में परम पूज्य कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी के कर-कमलों से विशाल महोत्सवपूर्वक शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई । इस प्रकार 14वाँ उद्धार बाहड़ मन्त्री ने महा महोत्सवपूर्वक कराया । पुनः जीर्णोद्धार में कुल एक करोड़ साठ लाख का व्यय किया ।

इस प्रतिष्ठा में तेरहवें उद्धार के समय जावड़ शा के द्वारा तक्षशिला से लाई हुई जिनप्रतिमा को पुनः प्रतिष्ठित किया गया आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी यह देरासर अभी तक सैकड़ों भक्तों का अवलम्बन रूप बना हुआ है । वर्तमानकालीन मन्दिर तो बाहड़ मन्त्री का ही है परन्तु प्रतिमाजी वस्तुपाल तेजपाल की है । वह कैसे बनी इसका इतिहास आगे के कथन में जानने को मिलेगा ।

## दीर्घ दृष्टा वस्तुपाल

वस्तुपाल तेजपाल पाटण के रहने वाले थे । इनकी माता का नाम था कुमारदेवी तथा पिता का आशराज था । यह चार भाई थे । 1 मल्लदेव, 2 वस्तुपाल, 3 तेजपाल, 4 लूणिग । इनकी सात बहनें थीं ।

आबू का मन्दिर वस्तुपाल तेजपाल ने अपने भाई लूणिग की भावनानुसार उसकी स्मृति में बनवाया था । वस्तुपाल ने अपने जीवन में 12½ (साढ़े बारह) यात्रा संघ छःरी पालित निकाले थे । प्रभु भक्ति तो इनके जीवन में कूट-कूटकर भरी हुई थी । कालक्रम से वस्तुपाल धोलका में वीरधवल राजा के महामन्त्री बने

और तेजपाल सेनापति बने । इतने ऊँचे पद पर आने के बाद भी प्रतिदिन परमात्मा की पूजा सेवा तथा गुरु महाराज का दर्शन, वन्दन प्रवचन श्रवण किए बिना राजदरबार में भी नहीं जाते थे ।

तेरहवीं सदी के मध्यान्तर में सिद्धगिरि पर दादा के दरबार में एक घटना घटित हो गई । एक बार दादा के दरबार में मन्त्रीश्वर वस्तुपाल ने भव्य स्नात्र महोत्सव रखा । उस समय हजारों की संख्या में लोग दादा के दरबार में एकत्रित हो गए । सभी एक दूसरे के नीचे दबे जा रहे थे । धक्का-मुक्की, पडापड़ी होने लगी । हाथ में कलश लेकर लोग दादा का अभिषेक करने के लिए मूलगम्भारे में प्रवेश करने लगे परन्तु पीछे से आने वाले धक्के के फोर्स से लोग अपने बैलेंस को सम्भाल नहीं सके । उस समय के कलश आज जितने छोटे-छोटे नहीं थे, घड़े जितने बड़े-बड़े थे । ऐसी परिस्थिति में दादा की मूर्ति को कुछ नुकसान न हो जाए इसलिए पुजारियों ने दादा के चारों तरफ फूलों को लेकर मूर्ति को ढक दिया और उसकी सावधानी तथा सुरक्षा के लिए स्वयं मूर्ति के पास खड़े हो गए । यह स्थिति देखकर वस्तुपाल ने विचार किया कि आज तो पुजारी अच्छे हैं जो कि बुद्धिपूर्वक जिनबिम्ब की सुरक्षा कर रहे हैं परन्तु भविष्य में कोई ऐसे पुजारी आ जाएँ, जो कि मूर्ति को सम्भाल न सके और ऐसी भीड़ में कोई कलश दादा की मूर्ति के साथ टकरा जाए तो जिनबिम्ब को खण्डित होने में देरी नहीं लगेगी । अथवा मुगलों का सितारा चमकने लगे और मलेच्छ लोग आकर तीर्थ पर हमला करें और प्रभु प्रतिमा को भी खण्डित कर दें तो तत्काल नया जिनबिम्ब बनाकर प्रतिष्ठा हो सके उसके लिए मुझे अभी से ही सुन्दर पाषाण शिला को मंगाकर किसी गुप्त स्थान में रख देनी चाहिए ।

स्नात्र महोत्सव पूर्ण होने के पश्चात् मन्त्रीश्वर गिरिराज से नीचे उतरे और विचार करने लगे कि वर्तमान में अच्छे से अच्छा पाषाण तो मम्माणी खान का है और वह खान अभी मुसलमानों के कब्जे में है, परन्तु प्रतिमा बनाने के लिए पाषाण तो किसी न किसी तरह से प्राप्त करना ही चाहिए ।

वस्तुपाल दादा की यात्रा करके वापिस अपने राज्य में आ गया परन्तु मन में दादा की प्रतिमा के लिए पत्थर कैसे प्राप्त करना इसका चिन्तन चलने लगा । उसी मध्य एक घटना बनी कि.....

दिल्ली के मोजुद्दीन बादशाह की माँ हज करने के लिए मक्का मदीना जा रही थी । उसके साथ पूरा रसाला था । जब वह दरिया के मार्ग से खम्भात की बन्दरगाह पर पहुँची तो वस्तुपाल ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से समय का लाभ उठाकर अपने व्यक्तियों को आदेश दिया कि जाओ बादशाह की माँ को लूट लो और सारा माल मेरे पास हाजिर करो । (बादशाह की माँ को लूटना अर्थात् अपनी जान को हथेली पर रखना बादशाह को पता लग जाए तो प्राण संकट में) परन्तु धर्म के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए भी वस्तुपाल तैयार हो गया ।

वस्तुपाल के आदेश का उसके व्यक्तियों ने पालन किया और बादशाह की माँ को लूट लिया । उसका सारा माल सामान कब्जे में कर लिया । बन्दरगाह पर चारों तरफ हा-हाकार मच गया । इतने में वस्तुपाल भी वहाँ पर पहुँच गया । माँ ने अपनी फरियाद वस्तुपाल के सामने रखी । उसने कहा-माताजी ! आप कोई चिन्ता मत कीजिए । लुटेरों को मैं अभी पकड़ कर आपका सारा सामान अभी ही आपके सामने हाजिर करता हूँ । आप अभी मेरे महल में पधारिए और विश्राम कीजिए । बादशाह की माँ वस्तुपाल के मधुर और विवेकपूर्ण शब्दों को सुनकर प्रसन्न हो गई । वस्तुपाल ने माँ को आराम करने के लिए सुन्दर व्यवस्था कर दी और अनेक नौकर-चाकर उसकी सेवा में उपस्थित कर दिए ।

वस्तुपाल ने अपने सैनिकों को कहा कि जितना भी सामान माताजी का लूटा है वह सभी तुरन्त यहाँ पर हाजिर किया जाए । सैनिक दौड़े-दौड़े गए और सारा सामान ले आए । वस्तुपाल ने सारा सामान माँ के सामने रख दिया सामान प्राप्त हो जाने पर माँ के हर्ष का पार न रहा ।

वस्तुपाल ने कहा- माताजी ! अब मैं आपको हज करने के लिए नहीं जाने

दूँगा । आप कुछ दिन यहाँ विश्राम कीजिए । मैं भी आपके साथ हज करने आऊँगा, जिससे आपको रास्ते में कोई हैरान नहीं करेगा ।

कुछ दिनों के पश्चात् वस्तुपाल ने वाहण में सारा सामान भर दिया और अन्य कई कीमती चीजों को साथ लेकर स्वयं बादशाह की माँ के साथ वाहण में बैठकर मक्का पहुँच गया । वहाँ जाकर नगर के द्वार पर मन्त्री ने सोने का तोरण बान्धा । हज यात्रा पूरी करने के पश्चात् मन्त्रीश्वर माँ को लेकर वापिस आया और दिल्ली तक छोड़ने के लिए गया । शहर के बाहर मन्त्री ने अपना पड़ाव डाला । बादशाह की माँ नगर में गई, दिल्ली के दरबार में जाकर अपने बेटे मोजुद्दीन को मिली । बेटे ने कहा— माँ ! हज करके आ गई, रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं पड़ा । माँ ने उसे खरे-खरे शब्दों में कहा— तू तो मेरा नाम मात्र का बेटा है सच्चा और वास्तविक बेटा तो मेरा वस्तुपाल है वस्तुपाल । जिसने मेरी पूरी सार सम्भाल की, मुझे साथ लेकर मक्का मदीना हज करने गया और यहाँ तक मुझे छोड़ने के लिए भी आया । वस्तुपाल का नाम सुनकर बादशाह एकदम चौंक गया । बोला माँ ! वह कहाँ पर है ? उसे साथ लेकर यहाँ क्यों नहीं आई ? माँ बोली— बेटा ! वह नगर में बाहर पड़ाव डाल कर बैठा है ।

मोजुद्दीन बादशाह ने तत्क्षण अपने व्यक्तियों को भेजकर वस्तुपाल को बुलाया । राजदरबार में उसका खूब सम्मान किया । प्रसन्न होकर बादशाह ने कहा— आपने मेरी माँ की बहुत सेवा और सम्भाल की— मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ आप जो भी माँगना चाहो माँगो । वस्तुपाल ने कहा— बादशाह सलामत ! मुझे कुछ नहीं चाहिए आपकी रहमो—नजर ही मेरे लिए बहुत है । बादशाह ने बड़े प्रेम से कहा— मन्त्रीश्वर ! ऐसे नहीं चलेगा, आपको कुछ तो माँगना ही पड़ेगा । वस्तुपाल ने कहा— बादशाह ! मुझे और तो कुछ नहीं चाहिए परन्तु आपकी मम्माणी खान में से पत्थर चाहिए । बादशाह ने कहा— बस माँग—माँगकर भी क्या माँगो— पत्थर का टुकड़ा । इसमें कौन—सी बड़ी बात है, आपको जितना चाहिए उतना पाषाण खान में से निकलवा लीजिए ।

बादशाह के फरमान को प्राप्त करके वस्तुपाल ने मम्माणी खान में पाँच पाषाण शिलाएँ निकाली और बैलगाड़ियों पर रखाई । बैलगाड़ियों में जुड़ी हुई उन शिलाओं का प्रत्येक गाँव में बैण्ड-बाजों के साथ सामैया हुआ, पूजा हुई । धीरे-धीरे उन शिलाओं को सिद्धगिरिराज पर लाया गया । वहाँ पर एक गुप्त भोंयरे में उनको रखा गया । वहाँ पर उन शिलाओं की एकाद पुजारी को गुप्त स्थल की जानकारी दी । (गुप्त स्थानों में रखी हुई शिलाएँ कब और कौन से उद्धार समय प्रकट की गई उसका वर्णन आगामी उद्धार कथानक में आएगा ।)

यह थी वस्तुपाल की तीक्ष्ण-बुद्धि और दीर्घ-दृष्टि । वस्तुतः वस्तुपाल जिनशासन के महान श्रद्धालु श्रावक थे तथा ऑल राउण्डर थे । संस्कृत के खूब रसिक थे । अपनी प्रतिज्ञा पालन में अत्याधिक चुरस्त थे । अपने जीवन को संस्कारी और धर्मिष्ठ बनाने के लिए ऐसे व्यक्तियों का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए ।

सौ कुए खुदवाने की अपेक्षा एक बावड़ी बनवाना उत्तम है ।  
 सौ बावड़ियों की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना उत्तम है ।  
 सौ यज्ञ करने की अपेक्षा एक पुत्र को जन्म देना उत्तम है ।  
 और सौ पुत्रों की अपेक्षा भी सत्य का पालन श्रेष्ठ है ।

**श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का 15वाँ उद्धार**  
**आचार्यश्री सिद्धसेनसूरिजी तथा समरा शा**  
**( विक्रम सम्वत् 1371 )**

मन्त्री बाहड़ शा के द्वारा बनाए हुए मन्दिर में तक्षशिला से जावड़ शा के द्वारा लाए हुए युगादिदेव की पूजा सुचारू रूप से हो रही थी । जैन धर्मियों की यात्रा, पूजा, महोत्सव आदि सभी धार्मिक आराधनाएँ अच्छी तरह से हो रही थीं । परन्तु इसी बीच वि. सं. 1357 में वाघेलावंशीय करणघेला को हराकर मुगल सम्राट अलाउद्दीन ने पाटण को अपने कब्जे में कर लिया । गुजरात से लेकर लाहौर तक के सभी देशों को जीत लिया ।

इस्लाम के नशे में चकनाचूर बने बादशाह ने चारों ओर कालाकेर मचा दिया । स्थान-स्थान पर मन्दिरों का नाश करने लगा । लाखों की संख्या में उसने मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़कर चकनाचूर कर दिया ।

यह मुगल सम्राट विलासी, क्रोधी, निर्दयी, निष्ठुर, महान जुल्मी, हठमनोबली और पराक्रमी था । लगभग चालीस हजार जितने नए बने मुसलमानों को इसने जीवित ही कटवा दिया था । महाराणी पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए इसने चित्तौड़ पर हमला करके भीमसिंह का खून कर दिया था ।

वि. सं. 1369 में अलाउद्दीन खिलजी एक लाख सैनिकों को साथ लेकर शत्रुञ्जय तीर्थ पर चढ़ा । ऊपर जाकर समस्त मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया । मूलनायक भगवान को खण्डित कर दिया । जिससे चारों तरफ हाहाकार मच गया । सभी हिन्दू राजा कमजोर हो गए ।

दादा की मूर्ति के खण्डित होने का समाचार जब पाटण निवासी देशल शा को मिला तो वह सुनते ही बेभान हो गया । शीतोपचार करने से जब वह स्वस्थ हुआ तो पुनः कल्यान्त करने लगा । परिवार वालों ने मिलकर उसे शान्त

किया । तत्पश्चात् वह उपाश्रय में गया । वहाँ पर विराजमान आचार्यप्रवर श्रीमद्विजय सिद्धसेनसूरिजी महाराज के चरणों में बैठकर अपनी वेदना व्यक्त करने लगा । गुरुदेव ने उसे आश्वासन देकर कहा कि कल्पान्त करने से कुछ नहीं बनेगा । पूर्व काल में भी जब ऐसे उपद्रव आए तब जावड़ शा, बाहड़ शा ने इस तीर्थ के सुन्दर उद्धार किए । आप भी स्वस्थ होकर तीर्थोद्धार का कार्य शुरू करो ।

देशल शा ने कहा— गुरुदेव ! मेरे पास भुजबल, धनबल, राजबल, मित्रबल आदि सब है परन्तु अब आपश्रीजी का कृपाबल चाहिए । आपश्री का कृपारूपी आशीर्वाद मिल जाए तो मैं तत्काल उद्धार का कार्य चालू करा सकता हूँ ।

गुरुदेव ने कहा— श्रावकजी ! अच्छे कार्य में हमारी कृपा आपके साथ ही है, शासनदेव तुम्हारी सहायता करेगा, तुम्हारी भावना को पूर्ण करेगा, तुम शीघ्र उद्धार का कार्य प्रारम्भ करो ।

पिता की भावना को पूर्ण करने के लिए उसके पुत्र समरा शा ने गुरु साक्षी में अभिग्रह धारण किया कि जब तक तीर्थ के उद्धार का कार्य पूर्ण नहीं होगा तब तक मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, प्रतिदिन एकासणा करूँगा उसमें भी पाँच विगई का त्याग करूँगा, भूमि पर शयन करूँगा ।

बादशाह मूर्ति भंजक था । तीर्थ का उद्धार करने के लिए उसे और उसके हथ के नीचे रहे हुए पाटण के सूबेदार अलरुखान को वश में करना और प्रसन्न करना जरूरी था । सर्वप्रथम समरा शा अलरुखान को मिलने के लिए बहुत बड़ी भेंट लेकर उसके पास गया । भेंट उसके सामने रखकर प्रार्थना की— साहेब ! शत्रुञ्जय तीर्थ का जीर्णोद्धार करने की मेरी भावना है कृपया मुझे आज्ञा दीजिए और दिल्ली का बादशाह इस कार्य में कोई रुकावट न डाले ऐसा कोई मार्ग बताइए ।

अलरुखान ने कहा— समर ! तू तो मुझे अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय है । तूझे जो भी कार्य करना है शीघ्र कर ले । तुम दिल्ली की कोई भी चिन्ता



मत करना । तीर्थोद्धार का फरमान लेकर समरा शा तुरन्त गुरु के पास पहुँचा और सारी बात सुना दी ।

समरा शा ने गुरु से शुभ मुहूर्त लेकर शीघ्र ही तीर्थोद्धार का कार्य शुरू करा दिया । अब प्रभुजी की प्रतिमा कौन से पाषण से बनानी इसका निर्णय करने के लिए समरा शा ने पाटण में सर्व संघ को एकत्रित करके कहा कि मन्त्री वस्तुपाल ने प्रतिमा बनाने के लिए शिलाएँ गुप्त स्थान में रखी हुई हैं आप मुझे वह शिला निकालने की अनुमति दो । तब आचार्यश्री तथा संघ के मुख्य व्यक्तियों ने समरा शा की भावना की अनुमोदना करते हुए कहा कि अभी समय बहुत खराब चल रहा है अभी मुगल बादशाह अपनी सत्ता सर्वत्र फैला रहे हैं । ऐसे समय में वे शिलाएँ निकालना अभी हमें योग्य नहीं लगता । आप आरासण की खान में से शिला निकाल कर अभी जिनबिम्ब बनाओ । समरा शा ने श्री संघ के वचन को मस्तक पर चढ़ाया और आरासण की खान में शिला निकलवाने का प्रयत्न शुरू किया ।

उस समय आरासण की खान राणा महीपाल के ताबे में थी । उससे आज्ञा लेकर समरा शा ने कारीगरों को बुलाया, ताम्बुल तथा मिष्ठ भोजन से उनका सम्मान करके खान में से शिला निकालने का कार्य चालू किया । जैसे ही शिला निकाली तो उसके बीच बहुत बड़ी तीराड़ पड़ी हुई थी । समरा शा ने दूसरी शिला निकालने का आर्डर दिया । जैसे ही दूसरी शिला निकाली तो उसके ठीक मध्य भाग में चीरा पड़ा हुआ था । यह सब देखकर समरा शा को बहुत बड़ा आघात लगा । उसने इसका कारण जानने के लिए अङ्गुलिका करके चक्रेश्वरी देवी की आराधना की । उसने प्रकट होकर कहा कि शिला निकालने से पूर्व खान के अधिष्ठायक देव की पूजा विधि करनी चाहिए । जो आपने नहीं की है । इसीलिए उसका फल आपको यह मिला है । अब मैं आपको विधि बताती हूँ आप उसी प्रकार करके फिर शिला प्राप्त करो ।

तत्पश्चात् देवी के कथनानुसार सम्पूर्ण पूजा विधि करके शिला को बाहर निकाला, पानी से साफ किया और चन्दन-पुष्प आदि से शिला का पूजन

किया । उसके बाद हृष्टपुष्ट बत्तीस-बत्तीस (32) जोड़ी बलदों वाले विशाल गाड़े में शिला को पधराकर सिद्धगिरिराज की तरफ प्रयाण किया । रास्ते में ही वह गाड़ा टूट गया जिससे समरा शा को खूब आघात लगा और चिन्तातुर हो गया । रात्रि को स्वप्न में शासनदेवी ने कहा कि तुम चिन्ता मत करो । झंझा गाँव में एक देवी की रथयात्रा के लिए बनाया हुआ गाड़ा देवाधिष्ठित है । तुम वहाँ जाकर पुजारी से वह गाड़ा ले आओ । समरा शा शीघ्र ही प्रातःकाल वहाँ गया और पुजारी से गाड़ा लेकर आया । उसमें उस शिला को विराजमान किया । वहाँ से उस गाड़े में शिला को लेकर अनेक गाँव नगरों में होते हुए जब धोलका पहुँचे तो हजारों नर-नारियों ने उसका सामैया कराया तथा पूजा की । इस प्रकार चलता-चलता गाड़ा गिरिराज की तलहटी तक पहुँच गया । अब इतनी बड़ी शिला को पहाड़ पर चढ़ाना बहुत कठिन काम था ।

शुभ दिन में 84 (चौरासी) मजबूत व्यक्तियों ने शिला को कंधे पर उठाकर छठे दिन ऊपर पहुँचाया और वहाँ पर जिनबिम्ब भराने का कार्य चालू किया ।

मुख्य मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य जोर-शोर से चल रहा था (नया प्रासाद नहीं बनाया परन्तु जो बाहड़ मन्त्री ने बनवाया था उसी की मरम्मत का कार्य तेजी से चल रहा था) समरा शा ने श्री अष्टापदजी का मन्दिर तथा वीस विहरमानजी का मन्दिर नया बनवाया । मात्र दो वर्ष में ही यह सारा कार्य पूर्ण हो गया ।

ज्योतिषियों ने वि. सं. 1371 महा सुदी चौदस सोमवार पुष्य नक्षत्र मीन लग्न का शुभ दिन प्रतिष्ठा के लिए निकाला ।

देशल शा ने प्रतिष्ठा के लिए वि. सं. 1371 पोष सुदी सप्तमी के दिन पाटण से विशाल छःरी पलित यात्रा संघ सिद्धगिरि का निकाला । अनेकों ही आचार्य, मुनिवृन्द, साध्वीजी, श्रावक-श्रविका का विशाल समुदाय साथ में था । संघ कमशः सेरिसा, अहमदाबाद, धोलका होता हुआ जब पिपरला पहुँचा तो दूर से गिरिराज के दर्शन करके सभी हर्षोन्मत्त होकर नाचने गाते गिरिराज को बधाने लगे । दूसरे दिन संघ ललित सरोवर के विशाल किनारे पर पहुँचा ।

योगानुयोग उसी दिन समरा शा का बड़ा भाई साहणसिंह देवगिरि से छःरी पालित संघ लेकर वहाँ पर ही पहुँचा । दोनों भाई प्रेम से मिले । उसी दिन खम्भात से एक महान विशाल संघ वहाँ पर आया । तीनों संघों ने मिलकर पालीताणा में प्रवेश किया । तलहटी पहुँचे । धूमधाम से गिरिराज पर आरोहण किया ।

प्रतिष्ठा महोत्सव की भव्य तैयारियाँ हो रही थी । नर-नारी मंगल गीत गा रहे थे । रंगमण्डप के मध्य भाग में वेदिका बनाई गई । दरवाजों पर तोरण बान्धे गए । देशल शा अपने समग्र परिवार सहित यथा स्थान पर बैठ गया । आचार्यश्री सिद्धसेन- सूरेश्वरजी ने प्रतिष्ठा विधि का कार्य चालू किया । समस्त संघों के सभी लोग वहाँ पर उपस्थित हो गए । शुभ मुहूर्त में प्रभु प्रतिमा की गुरु ने अंजन विधि की । शुभ मुहूर्त में वि. सं. 1371 महा सुदी चौदस को प्रभुजी की प्रतिष्ठा का कार्य धूमधाम से गाजते-बाजते सम्पन्न हुआ । सभी लोग नाचने-गाने लगे । पू. श्री नागेन्द्रसूरिजी ने मुख्य ध्वजादण्ड की प्रतिष्ठा कराई । दस दिन तक प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्य चला ।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव में 500 पदस्थ मुनिवर थे । दो हजार साधु महाराज थे, साध्वीजी म. तथा श्रावक-श्राविकाओं की संख्या का कोई ग्यार नहीं था । सात सौ चारण थे, तीन हजार भाट थे, एक हजार गायक थे । इस प्रतिष्ठा महोत्सव में कुल सत्ताइस लाख सीत्तेर हजार द्रव्य का व्यय हुआ था ।

सिद्धगिरि पर दादा की प्रतिष्ठा बाद देशल शा ने वहाँ से ही गिरनार का छःरी पालित यात्रा संघ निकाला । स्थान-स्थान पर शासन प्रभावना करके जब पुनः पाटण आया तो वहाँ पर साधर्मिक-वात्सल्य रखा । वि. सं. 1375 में देशल शा ने पुनः दो हजार व्यक्तियों के साथ सिद्धगिरि का विशाल छःरी पालित यात्रा संघ निकाला । उसमें ग्यारह लाख द्रव्य का सद्व्यय किया । इनके इन सुकृत कार्यों से प्रसन्न होकर दिल्ली के बादशाह कुतुबुद्दीन ने समरा शा को दिल्ली बुलाया । भव्य स्वागत के साथ उसका दिल्ली में प्रवेश कराया और उसे व्यापारियों में अग्रेसर पदवी अर्पण कर सम्मानित किया ।

कृतुबुद्धीन के बाद गयासुद्दीन बादशाह हुआ उसने भी समरा शा के साथ घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध रखा । इस प्रकार समरा शा अनेक बादशाहों का प्रिय पात्र बना रहा । पूर्वजों की शोभा में वृद्धि करता हुआ समरा शा आराधना करता-करता एक दिन स्वर्ग सिंघार गया ।

समरा शा की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सालीग और सज्जनसिंह ने अपने पिता समरा शा और माता समरश्री की मूर्ति बनाकर वि. सं. 1414 में गिरिराज पर पधराई ।

इस प्रकार समरा शा ने इस पालीताणा में सिद्ध-गिरिराज का उद्धार किया । आज भी देशल शा समरा शा के द्वारा कराए हुए उद्धार में ऐतिहासिक प्रमाण गिरिराज पर मौजूद हैं ।

पूर्व काल में श्रावक और श्राविका अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग धार्मिक कार्यों में उदार हृदय से करते थे । उनका आदर्श जीवन आज भी सभी के लिए प्रेरणास्पद है ।

धारयति इति धर्मः ।

धियते अनेन-इति धर्मः ॥

जो वस्तुतत्त्व को, व्यक्ति को धारण करता है, अस्तित्व में बनाये रखता है, वह धर्म कहलाता है ।

**श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का 16वाँ उद्धार**  
**आचार्यश्री विद्यामण्डनसूरिजी तथा करमा शा**  
**( विक्रम सम्वत् 1587 )**

(पुनः मलीन तत्वों ने तूफान चालू किया, उनके बल को प्राप्त करके मुस्लिमों ने सभी मन्दिरों और तीर्थों को खण्डित करना चालू कर दिया प्रभु भक्त कपर्दी यक्ष, चक्रेश्वरी देवी आदि मिथ्यादृष्टि मलीन देवी-देवताओं के शैतानी बल के आगे दबाए गए और सामना करने पर भी मजबूर होकर वे भी भाग गए । मुसलमानों ने किस प्रकार दादा की प्रतिमा को खण्डित किया उसका रोम-रोम को कम्पित कर देने वाला दृष्टान्त निम्न प्रकार है ।

(कुतुबुद्दीन, गयासुद्दीन आदि के बाद अनेकों मुगल बादशाहों ने राज्य किया । वि. सं. 1583 में बहादुरशाह गद्दी पर बैठा । वह बड़ा साहसिक और शूरवीर था । गुजरात के अर्वाचीन इतिहास नामक पुस्तक से प्रतीत होता है कि एक बार वह अपने पिता से रूठ कर हिन्दोस्तान में आ गया, कितने ही नौकरों को भी अपने साथ ले गया । घूमता-घूमता एक दिन वह चित्तौड़ पहुँच गया ।)

गिरिराज पर समरा शा के द्वारा प्रतिष्ठित तथा पधारे हुए आदीश्वर दादा की प्रतिमा की पूजा सेवा अच्छी तरह से हो रही थी । सभी भक्तजनों के मन हर्षोल्लास से भरे हुए थे । परन्तु कई वर्षों के पश्चात् पुनः मलीन तत्वों ने तूफान चालू किया । उनके बल को प्राप्त करके मुगलों ने पुनः मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ना चालू कर दिया । वि. सं. 1463 में मुसलमान सेनापति दफर खां ने सिद्धगिरि पर जाकर हथोड़ों के द्वारा मार-मार कर मूलनायक परमात्मा के बिम्ब के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । जिससे चारों तरफ हाहाकार मच गया । प्रभु भक्त कपर्दी यक्ष, चक्रेश्वरी देवी भी मलीन तत्वों के शैतानी बल के आगे मजबूर बन गए । जिससे वे भी कुछ न कर सके ।

(मुसलमानों के क्रूर जुल्मों से हिन्दू थर-थर काँपने लगे । सत्ता के बल से वे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने लगे ।)

दादा की मूर्ति के खण्डित होने का समाचार चारों तरफ फैल गया । कुछ प्रभु भक्त चुपचाप पीछे के मार्ग से पहाड़ पर गए और वहाँ की हालत को देखकर आँखों से आँसू बहाने लगे । मन को दृढ़ करके उन्होंने सैकड़ों टुकड़ों को एकत्रित किया । उसी टुकड़ों के बीच में उनको दादा का मस्तक मिल गया । चारों तरफ के कचरे से दूर करके लोगों ने पबासन के ऊपर दादा के मस्तक को पधार दिया । जब कभी कोई यात्री आते तो ऊपर जाकर दादा के मस्तक का दर्शन करते, केसर, चन्दन, पुष्प आदि से उनकी पूजा करते और नयनों से आँसू बहाते-बहाते नीचे उतरते । जैन संघ के सभी श्रावक व्यथित थे । परन्तु किसी को कोई भी मार्ग नहीं सूझ रहा था । ऐसी परिस्थिति लगभग सौ (100) वर्ष तक चली । सभी लोग चातक की भाँति तीर्थोद्धार की राह देख रहे थे कि कोई माई का लाल पैदा हो और मुस्लिम बादशाहों से मैत्री करके जीर्णोद्धार करावे ।

उस समय श्री धर्मरत्नसूरिजी महाराज मारवाड़ में विचरण कर रहे थे । तब श्रेष्ठीवर्य धनराजजी ने आचार्य श्री धर्मरत्नसूरिजी की निश्रा में छःशे पालित यात्रा संघ निकाला । संघ सहित आचार्य भगवन आबू, अचलगढ़ आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए वीर भूमि मेवाड़ में पहुँचे । वहाँ से चित्तौड़गढ़ में प्रवेश किया । उस समय तीन लाख अश्वों के स्वामी संग्रामसिंह का सूर्य चित्तौड़ के तख्त पर तप रहा था । वहाँ पर ही महाराजा आम के संतानीय कपड़े के व्यापारी तोला शा सेठ भी रहते थे । उसकी लीलावती नाम की धर्मपत्नी थी । उसके छः (6) पुत्र थे । उनके नाम थे- रत्ना शा, पोमा शा, गणा शा, दशस्थ, भोज, करमा शा तथा एक पुत्री थी नाम था सुहविदेवी ।

आचार्य श्री धर्मरत्नसूरिजी के आगमन का समाचार सुनकर तोला शा अपने पुत्रों सहित गुरु को वन्दन करने के लिए गया । गुरु को वन्दन करके सुखशाता पूछकर उनके पास बैठा और पूछने लगा कि गुरुदेव ! मेरे मन की

भावना पूरी होगी या नहीं ? आचार्य भगवन ज्ञानी थे । उन्होंने कुछ क्षण विचार करके उत्तर दिया— तोला शा ! पूरी तो अवश्य होगी, परन्तु तुम्हारे हाथ से नहीं, तुम्हारे इस छोटे पुत्र करमा शा के हाथों अवश्य पूर्ण होगी । (‘बाल करमा शा ने गुरु के मुख से जैसे ही शब्द सुने तो उसने शकुन मानकर अपने वस्त्र के किनारे पर गाँठ बान्ध दी कि कोई अज्ञात शुभ कार्य मेरे हाथों से पूर्ण होने वाला है, ऐसी भविष्यवाणी के श्रवण से उसका अन्तर्मन नाचने लगा ।’)

गुरुदेव ने कहा— तोला शा ! तुम चिन्ता मत करो, शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार का कार्य शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र के हाथ से धूमधाम से महामहोत्सव पूर्वक होगा । पहले भी जब समरा शा ने उद्धार कराया था । तब भी हमारे पूर्व पूर्वज गुरु भगवन्तों के वरद हस्त-कमलों से प्रतिष्ठा हुई थी और अब भी जब जीर्णोद्धार होगा तब तेरे पुत्र और मेरे शिष्य उस प्रतिष्ठा महोत्सव में उपस्थित होंगे ।

आचार्य गुरुदेव विजय श्री धर्मस्तनसूरिजी मुख से इस प्रकार की भविष्यवाणी को सुनकर तोला शा के हृदय की व्यथा और वेदना कुछ कम हो गई । परन्तु तीर्थ के जीर्णोद्धार का शुभ कार्य अपने हाथ से नहीं होगा इसका झटका अन्तरात्मा में लगा ।

आचार्य भगवन ने चित्तौड़गढ़ में आए हुए चित्रकूट पर्वत पर अनेकों जिन मन्दिरों का दर्शन आदि करके जब संघ सहित विहार करने लगे तब तोला शा ने कुछ दिन अधिक स्थिरता के लिए विनती की, परन्तु गुरुदेव की संघ के साथ अन्य तीर्थों की यात्रा करने की भावना थी अतः गुरुदेव ने मना कर दिया । जिससे तोला शा का मन व्याकुल हो गया, मुख चिन्ताओं के बादलों से घिर गया, बोला — गुरुदेव ! तीर्थोद्धार की वेदना से व्यथित इस श्रावक पर करुणा कीजिए । गुरुदेव ! गामोगाम के संघ दादा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए चिन्तातुर हैं । मैं भी अब वयोवृद्ध हो गया हूँ । मेरी जीवन रूपी संध्या भी अब ढल रही है । आपश्री जी हमारे ऊपर कुछ कृपा दृष्टि की वृष्टि कीजिए । तब आचार्य भगवन ने अपने दो शिष्यों को उपाध्याय श्री विद्यामण्डनविजयजी महाराज तथा विनयमण्डनविजयजी महाराज को आज्ञा दी कि आप यहाँ चित्तौड़गढ़ में ही

स्थिरता करो और अभी से ही भावि के तीर्थोद्धारक बाल करमा शा को जीवन का संस्करण और अध्यापन आदि करावो । गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके उपाध्यायजी आदि अनेक मुनिवर चित्तौड़ में ही ठहर गए । आचार्य भगवन् ने विहार कर दिया ।

## तोला शा का स्वर्गवास-

वयोवृद्ध तोला शा अपने सभी पुत्रों के साथ प्रतिदिन गुरुदेव के पास जाकर सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवचन, प्रश्नोत्तरी, तपस्या आदि धर्माराधना करने लगा । जैसे-जैसे समय बीतने लगा, बाल करमा शा अधिकाधिक धर्मप्रिय बनने लगा । उसकी योग्यता को देखकर गुरुदेव ने चिन्तामणि महामन्त्र विधिपूर्वक उसे दिया और उसकी साधना विधि भी उसे समझा दी । करमा शा गुरुदेव के कथनानुसार जाप करने लगा । कुछ महीने गुरुदेव वहाँ पर स्थिरता करके चित्रकूट से अन्यत्र विहार कर गए । तोला शा अपना जीवन धर्माराधना में ही व्यतीत करने लगा तथा पुण्य क्षेत्रों में अपनी सम्पत्ति का उदारता से सद्व्यय करने लगा । एक दिन उपकारी गुरुदेव श्री धर्मरत्नसूरिजी महाराज का स्मरण करता-करता सभी पापकर्मों का पच्यक्खाण करके अनशन स्वीकार करके समाधिमरण को प्राप्त हुआ । अपने पीछे अपनी सन्तान को धार्मिक संस्कारों का वारसा देकर छः पुत्र और एक पुत्री को छोड़कर देवलोक में गया ।

## शुभ घड़ी की प्रतीक्षा-

पिता के देवलोक गमन बाद करमा शा ने व्यापार की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली । न्याय-नीतिपूर्वक पिता की कपड़े की दुकान को सम्भालने लगा । थोड़े ही समय में उसने अपनी बुद्धि के द्वारा तथा न्याय-नीति के प्रभाव से विपुल धन का उपार्जन कर लिया । चित्तौड़गढ़ का एक प्रसिद्ध व्यापारी बन गया । उसने अनेक श्रावक पुत्रों की सहायता करके आजिविका के लिए योग्य व्यापार शुरू करा दिया ।



व्यापार के साथ-साथ धर्म आराधना में भी करमा शा अधिक उद्यम करने लगा । दोनों समय प्रतिक्रमण, त्रिकाल जिन पूजा, पर्व तिथि में पौषध तथा चिन्तामणि महामन्त्र का जाप दिन-रात करने लगा ।

करमा शा की कर्पूरा देवी तथा कमला देवी नाम की दो स्वरूपवान पत्नियाँ थी । अनेक बच्चों के बीच में करमा शा देवों में इन्द्र के समान शोभायमान हो रहा था । दुखियों के प्रति करुणालु हृदयी था, याचकों को कभी भी घर से खाली नहीं भेजता था । साधर्मिकों का सहयोगी था, इस प्रकार चित्तौड़गढ़ में सज्जनों में अग्रगण्य उसका नम्बर था । तीर्थोद्धार की बात को बारम्बार याद करता हुआ शुभ घड़ी और शुभ पल की प्रतीक्षा कर रहा था ।

इधर गुजरात की राजधानी चांपानेर थी । वहाँ पर मुहम्मद बेगढ़ो राज्य करता था । उसने जूनागढ़ और पावागढ़ के दो गढ़ों को जीता था । अतः उसका नाम बेगढ़ों पड़ गया था । उसकी मृत्यु के बाद मुजफ्फर बादशाह गादीनशीन हुआ । उसका छोटा भाई बहादुर शा था, उसे योग्य जागीर न मिलने से रूठ कर घर से बाहर निकल गया । वह बड़ा साहसिक और शूरवीर था । वह अनेक गावों नगरों में घूमता हुआ चित्तौड़ पहुँच गया । उसके साथ अनेक नौकर-चाकर भी थे ।

चित्तौड़ में करमा शा कपड़े का बहुत बड़ा व्यापारी था । घूमता-घूमता बहादुर शा करमा शा की दूकान पर पहुँच गया । उसने वहाँ से बहुत ज्यादा कपड़ा खरीदा । योगानुयोग बहादुर शा के पास सम्पत्ति अधिक खर्च हो जाने से अब आगे के लिए रुपये की कमी हो गई । परस्पर वार्तालाप करते हुए करमा शा और बहादुर शा दोनों में परस्पर मैत्री हो गई ।

(‘एक बार गौत्रदेवी ने स्वप्न में करमा शा को कहा था कि बहादुर से तेरी कार्य सिद्धि होगी । उसी बात को ध्यान में रखते हुए करमा शा ने बहादुर के साथ मैत्री सम्बन्ध जोड़ने का निश्चय किया हुआ था ।’)

करमा शा ने बहादुर शा को कहा कि तुम चिन्ता क्यों करते हो आपको जितनी सम्पत्ति, रुपया-पैसा चाहिए आप ले लीजिए । उसके मना करने पर भी करमा शा ने उसे एक लाख रुपये बिना किसी शर्त के उसे दे दिया । इतना ही नहीं उसे अपने घर ले गया । उसका खूब स्वागत किया, कुछ दिन अपने घर पर रखा । जिससे बहादुर शा खूब प्रसन्न हो गया और बोला-ए प्रिय दोस्त करमा शा ! मैं जीवन भर तेरा अहसान नहीं भूल सकूँगा । करमा शा ने कहा-ऐसा मत बोलिए, आप तो हमारे मालिक हैं, हम आपके सेवक हैं, बस कभी-कभी आप हम जैसे सेवकों को भी स्मरण करते रहना । केवल हमारी आप से एक ही अरजी है कि जब आप राज्य के मालिक बादशाह बनें तब मुझे शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार करने की इजाजत देना ।

बहादुर शा ने उसी समय शत्रुञ्जय उद्धार करने का वचन दे दिया और वहाँ से अन्यत्र स्थान की ओर प्रयाण कर दिया । रास्ते में ही उसे मुजफ्फर बादशाह की मृत्यु का तथा उसकी गद्दी पर बैठने वाले उसके पुत्र सिकन्दर की मृत्यु का भी समाचार मिल गया । क्षणमात्र का भी विलम्ब किए बिना बहादुर शा शीघ्र गुजरात पहुँच गया और वि. सं. 1583 श्रावण सुदी चौदस के दिन वह चांपानेर की राजगद्दी पर आरुढ़ हो गया । अपनी साहसिकता तथा बुद्धि प्रतिभा से उसने अनेक राजाओं को परास्त कर दिया । पूर्वावस्था में जिस-जिस व्यक्तियों ने उसकी सहायता की थी उन सभी को बुलाकर योग्य सत्कार किया । अपने ऊपर निःस्वार्थ उपकार करने वाले करमा शा को बुलाने के लिए अपना फरमान लिखकर दूत को भेजा ।

## तीर्थोद्धार की प्रतीक्षित घड़ियाँ-

चित्रकूट में कर्मा शा चिन्तामणि महामन्त्र की आराधना कर रहा था । शत्रुञ्जय उद्धार की राह देख रहा था । इतने में उसके आंगण में गुजरात से निमन्त्रक आया उसने कहा- बादशाह बहादुर शा आपको याद कर रहा है और आपके द्वारा किए हुए उपकार का बदला चुकाना चाहता है । सुनते ही करमा शा पल मात्र का विलम्ब किए बिना हीरा, मोती, माणिक, रेशमी वस्त्र आदि

अनेक मूल्यवान वस्तुओं को भेंट लेकर बादशाह के पास चांपानेर (पावागढ़) पहुँच गया ।

करमा शा के राज दरबार में दाखिल होते हुए बहादुर शा उससे मिलने के लिए उठ कर सामने दौड़ा, दोनों हाथों से करमा शा का आलिंगन किया तथा उसे उचित आसन पर बिठाकर राज्यसभा के समक्ष उसके परोपकार की प्रशंसा करता हुआ बोला— यह मेरा परम दोस्त है, दुर्भाग्य ने जब मुझे बुरी तरह से मजबूर किया था तब इसी दयालु आदमी ने मेरा छुटकारा कराया था । बादशाह आगे कुछ कहे कि बीच में ही करमा शा ने कहा कि बादशाह सलामत ! क्षमा कीजिए, इतना भारी बोझ मेरे शरीर पर मत डालो, मैंने तो आपका कुछ भी नहीं किया, मैं तो आपका सेवक हूँ । तत्पश्चात् करमा शा ने विविध प्रकार की भेंट राजा को प्रदान की । राजा ने भी वस्त्र अलंकार, ताम्बुल आदि से उसका स्वागत किया और उसे कुछ दिन ठहरने का आग्रह किया । करमा शा ने बादशाह के आग्रह को स्वीकार किया । बादशाह ने उसके ठहरने के लिए सुन्दर शाही महल, भोजन तथा दास दासियों की सुन्दर व्यवस्था कर दी । थोड़े दिन करमा शा वहाँ पर ही रहा ।

एक दिन बादशाह पहले ग्रहण की हुई राशि लेकर करमा शा को वापिस देने के लिए आया । करमा शा ने इन्कार करते हुए कहा— मित्र ! मेरा जो कुछ भी है, वह सब आपका ही है, यह राशि भी मेरी नहीं— आपकी ही है । मैं इसे बिल्कुल वापिस नहीं लूँगा । बहुत ज्यादा मना करने पर भी जब बादशाह नहीं माना तब करमा शा ने उसे लेकर उदार हृदय से उसे भी धर्म कार्य में व्यय करने का संकल्प किया ।

करमा शा को देखकर बारम्बार प्रमुदित होकर एक बार बादशाह ने कहा— मित्र करमा शा ! मेरे दिल की खुशी के लिए तुम मुझसे कुछ माँगो, कहो तो मैं अपने राज्य का एक समृद्ध देश आपको भेंट रूप में दूँ, तुम उसे स्वीकार करो । करमा शा ने कहा— बादशाह ! आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ है, कोई भी कमी नहीं है । मेरी तो मात्र एक ही इच्छा है जो कि आपके चित्तौड़गढ़

पधारने पर मैंने कही थी । आपने मुझे उस कार्य के लिए वचन भी दिया था । बस बादशाह मेरी सिद्धाचल तीर्थ का उद्धार कराने की तीव्र इच्छा है और वहाँ पर हमारी गौत्रदेवी चक्रेश्वरी माता की विशाल प्रतिमा स्थापित करने की भावना है । इस कार्य के लिए मैंने कठोर अभिग्रह धारण किए हुए हैं इसलिए आप अपना फरमान पत्र लिख कर दे दीजिए ।

बादशाह बोला करमा शा ! तुम्हारी जो भी इच्छा हो उसे निःशंक होकर पूर्ण करो ।

तत्पश्चात् बादशाह ने अपने हाथों से फरमान लिख दिया और अपनी मोहर लगा कर करमा शा को देकर कहा— मित्र ! अब तुम अपनी इच्छानुसार जो भी तीर्थ के उद्धार का कार्य करना चाहो कर सकते हो, तुझे किसी भी प्रकार का कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होगा । फरमान लेकर करमा शा का मनमयूर नाचने लगा ।

(‘मुस्लिम बादशाह के हाथ से शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार का लिखित फरमान लेना मानो फणिधर के मस्तक से मणि को ग्रहण करने जैसी कसौटी थी, परन्तु करमा शा की चतुराई और तीक्ष्ण बुद्धि से यह कार्य सफल हो गया ।’)

फरमान लेकर करमा शा ने शीघ्र ही खम्भात की तरफ प्रयाण किया । शासन प्रभावना के कार्यों को करता हुआ करमा शा एक दिन खम्भात बन्दरगाह पर पहुँच गया । शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार का फरमान लेकर आए हुए इस युवा श्रावक का खम्भात श्री संघ ने भी भव्य सामैया कराया तथा जोरदार स्वागत किया ।

‘सकल संघ जो काम नहीं कर सके वह कठिन काम मेवाड़ के एक वाणिया श्रावक ने कर दिया ।’

करमा शा ने संघ सहित स्थम्भन पार्श्वनाथ का दर्शन किया । तत्पश्चात् उपाश्रय में प्रवेश किया जहाँ पर उपाध्याय श्री विनयमण्डनविजयजी महाराज

विराजमान थे । पूज्यवरों को देखते ही करमा शा की देह रोमांचित हो गई, हृदय गद्गद् हो गया । आँखें हर्ष के आँसुओं से भर गई । वन्दन आदि करके, सुखशाता पूछकर अन्तर के भावोल्लास से हृदय के उद्गार कहने लगा ।

हे गुरुदेव ! आज मेरा दिन सफल हुआ है जो कि आपके दर्शन हुए, हे सकल शास्त्र के ज्ञाता ! हे क्रियायोग में सावधान पूज्यवर ! आपश्रीजी ने मुझे जिस कार्य के लिए प्रेरणा दी थी उस कार्य को करने की अब मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए ।

करमा शा की बातों को सुनकर उपाध्याय श्री विनयमण्डनविजयजी महाराज को अति प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा— अब धर्मकृत्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए क्योंकि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' भाग्य का कोई भरोसा नहीं है, धर्म कार्यों को करने में शीघ्र ही प्रयत्नशील हो जाना चाहिए । करमा शा ने गुरुदेव के अन्तर्मन की बात को जानकर कहा— गुरुदेव ! मुझे आशीर्वाद दीजिए ।

गुरु भगवन्त के आशीर्वाद को लेकर करमा शा ने शीघ्र ही खम्भात से प्रयाण किया और पाँच दिन में ही सिद्धाचल की गोद में पहुँच गया । जैसे मेघ को देखकर मयूर नाचने लग जाता है वैसे ही गिरिराज का दूर से ही दर्शन करके उसका मनमयूर नाचने लगा, उसने रत्नों से सोना चांदी के पुष्पों से गिरिराज को बधाया और स्तुति करता हुआ बोलने लगा— हे शैलेन्द्र ! आज वर्षों के बाद आपका दर्शन हुआ आप तो साक्षात् कल्पवृक्ष हो, हे पुण्डरीक गिरि ! आप तो पुण्य मन्दिर हो— आपके एक-एक प्रदेश में अनन्ता आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है । इस प्रकार गिरिवर की भावभरी स्तुति करता हुआ वह संघ परिवार सहित तलहटी पहुँचा । वहाँ पर जाकर विशाल मण्डप बन्धवाया, सूत्र-धारों की, शिल्पियों की, कारीगरों की रहने की, भोजन की सुन्दर व्यवस्था की । बादशाह बहादुर शा की तरफ से तीर्थोद्धार के फरमान का समाचार चारों तरफ सभी संघों को भेज दिया । सर्वत्र आनन्द का वातावरण प्रसारित हो गया । लोग प्रतिष्ठा महोत्सव में जाने की तैयारियाँ करने लगे । दूर-दूर देशों

में रहे हुए, आचार्य भगवन, मुनि महाराज भी सिद्धाचल की तरफ विहार करने लगे । देश देशान्तरों से शिल्पज्ञ भी वहाँ पर पहुँच गए । उपाध्याय विनयमण्डनजी भी अपने विशाल साधु-साध्वीजी के परिवार सहित खम्भात से विहार करके पालीताणा पहुँच गए । गुरुदेव के आगमन से करमा शा का उत्साह द्विगुणा हो गया ।

शुभ दिन गुरु महाराज तथा सूत्रधारों के साथ करमा शा गिरिराज पर गया । मुगलों के द्वारा तीर्थ की स्थिति को देखकर उसका दिल द्रवित हो गया । दादा के दरबार में प्रवेश करके देखा कि खण्डित मस्तक ही पबासन पर पूजा जाता है । पत्थरों के टुकड़े चारों तरफ बिखरे पड़े हैं, बहुत सारे शिखर ध्वस्त हो चुके हैं । यह सब देखकर करमा शा की आँखों से श्रावण-भाद्रवा के समान जल धारा बहने लगी । गुरु महाराज ने उसे आश्वासन देकर कहा— अब हताश और निराश होने से काम नहीं चलेगा, नयनों से आँसू बहाने से कुछ नहीं बनेगा, अब तो नया सर्जन करने के लिए शीघ्र ही सभी कार्य में लग जाओ । सर्वप्रथम नया जिन बिम्ब भराने के लिए वस्तुपाल के द्वारा रखी हुई शिलाओं को बाहर निकालो और परमात्मा का बिम्ब बनाने का कार्य चालू कराओ ।

गुरु भगवन्त के आदेश को प्राप्त करके समस्त श्री संघों की सम्मति लेकर शिलाओं की खोज चालू की गई । शिलाएँ कहाँ पड़ी हैं इसकी जानकारी मात्र एक समरा नाम के पुजारी को ही थी । उसे बुलाकर गुप्त रूप से पूछा गया । संघ की सम्मति लेकर पुजारी ने गुप्त भोयरा दिखाकर कहा कि वर्षों पहले वस्तुपाल मन्त्री ने यहाँ पर शिलाएँ रखी थी । अब जैसा संघ को योग्य लगे वैसा कीजिए । गुरु भगवन्त के आदेश से शिलाएँ बाहर निकाली गई । शत्रुञ्जय नदी के शुद्ध जल से उनका अभिषेक किया गया, अष्टप्रकारी द्रव्य से पूजन किया । शिल्पी सूत्रधारों के हाथों में मीण्डल बान्धा, कुम्कुम् का तिलक किया और पुरस्कार देकर उनका सम्मान किया । शिल्पियों ने अपने ओजारों का प्रक्षाल किया । उस पर ग्रीवासूत्र बान्धकर पूजा की, घण्टनाद किया गया । उपाध्यायजी महाराज ने शिलाओं पर मन्त्रित वासक्षेप डाला, तत्पश्चात् शिल्पियों

ने, सूत्रधारों ने जय-जय आदिनाथ का घोष करके बिम्ब बनाने के लिए टांकना लगा कर शुरूआत की । जय आदिनाथ के नारों से आकाश गुँजायमान हो गया । गुरु के आदेश से समरा पुजारी को खूब-खूब पुरस्कार देकर बहुमान किया ।

चारों तरफ आनन्द का वातावरण बन गया । मलीन तत्वों की तरफ से अब कोई विघ्न न आए उसके लिए सभी ने तप-जप आदि आराधना चालू कर दी । कई मुनियों ने दो-दो मास का तप, किसी ने छः मास का तप, किसी छद्म अद्भुत आदि विविध प्रकार का तप चालू कर दिया । दुष्ट व्यन्तरो के उपद्रवों को दूर करने के लिए उपाध्याय विवेकमण्डनविजयजी म. ने सिद्धचक्रजी का ध्यान, किसी ने आयम्बिल का तप चालू कर दिया । उपाध्यायजी ने शिल्प शास्त्र और वास्तु शास्त्र में विशारद अपने दो विनीत शिष्यों को शिल्पियों को योग्य सलाह सूचन देने के लिए नियुक्त कर दिया । करमा शा ने शिल्पियों के लिए खाने की, रहने की, बैठने की सुन्दर व्यवस्था कर दी ।

वास्तु शास्त्र के अनुसार समचतुरस्र विभाग करके प्रतिमाजी तैयार होने लग गई । जैसे-जैसे दिवस बीतने लगे प्रतिमाजी का आकार सामने आने लगा । पूर्णिमा के चाँद जैसा मुख, अष्टमी के चन्द्र जैसा भाल, कमल की पाँखुड़ी जैसे नयन, दीर्घ बाहुयुगल आदि शास्त्रानुसार सभी अवयव बिखरने लगे । सभी की शुभ भावनाओं और चारों तरफ के शुभ परमाणुओं के साथ मूर्ति सम्पूर्ण सर्वांग सुन्दर तैयार हो गई । जिनबिम्ब के साथ-साथ विशाल रंगमण्डप की भी सफाई आदि करके तैयार किया । मूल गम्भारे में पुनः मरम्मत आदि कार्य कराया गया ।

प्रभु प्रतिमा आदि सर्व कार्य सम्पूर्ण सम्पन्न हो जाने पर प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त निकालने के लिए करमा शा ने ज्योतिषियों को, पण्डितों को, विद्वानों को निमन्त्रण दिया । सभी शीघ्र ही एकत्रित हो गए । शुभ दिन शुभ घड़ी में सभी की मीटिंग हुई । जिसमें अनेकों आचार्य, उपाध्याय, पंन्यास, गणिवर्य, मुनि महात्मा भी सम्मिलित हुए । सभी ने परस्पर चर्चा विचारणा

करके शुभ दिन प्रतिष्ठा का निश्चित किया । वि. सं. 1587 वैशाख वदि छठ, रविवार, श्रवण नक्षत्र को प्रतिष्ठा दिन की घोषणा की । सभी सुनकर अति प्रसन्न हुए ।

मुहूर्त का शुभ दिन निश्चित हो जाने के पश्चात् चारों तरफ कुम्कुम् पत्रिकाएँ भेजी गईं । 100 (सौ) वर्षों के पश्चात् प्रतिष्ठा का पुनः अवसर आया । किसको आनन्द नहीं होगा । सूचना मिलते ही लाखों की संख्या में लोग एकत्रित हो गए । करमा शा की भावभरी विनती को स्वीकार करके आचार्य भगवन श्रीमद्विजय विद्यामण्डनसूरीश्वरजी म. भी एक हजार पदस्थ, अपदस्थ साधु-साध्वीजी के परिवार सहित पधार गए । चारों तरफ विशाल जन समूह दिखाई दे रहा था । करमा शा एवं उसके परिवार ने सभी के भोजन की, ठहरने की समुचित व्यवस्था की । जो भी कुछ माँगता तो उसे खुले हाथों दिया जाता था ।

प्रतिष्ठा महोत्सव निमित्त स्थान-स्थान पर सुन्दर पट मण्डप बान्धे गए । मोती, माणिक के झूमर लटकाए गए । ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ पंक्तिबद्ध लटकाई गईं । सकल श्रीसंघों ने मिलकर प्रतिष्ठा महोत्सव की कार्यवाही उपाध्याय विनयमण्डनजी को सौंप दी । विविध गच्छों के आचार्यों ने मिलकर प्रतिष्ठाचार्य के रूप में आचार्य भगवन्त श्री विद्यामण्डनसूरिजी को नियुक्त किया ।

वैशाख वदि छठ का शुभ दिन आ गया । वाजिंत्रों से आकाश गुँजायमान होने लगा । स्त्रियाँ मंगलगीत गाने लगी । भव्य प्राणी दादा के दरबार में मधुर स्वरों से गीत गाकर नृत्य करने लगे । कुंकु-कर्पूर की वृष्टि होने लगी । ॐ पुण्याऽहं पुण्याऽहं की मंगल ध्वनि चालू हो गई । चारों तरफ दिव्य ध्वनि से वातावरण प्रसारित हो गया । शंखनाद गूँजने लगा । ऐसे शुभ वातावरण में शुभ मुहूर्त में शुभ लग्न में जब करमा शा दादा की प्रतिष्ठा कराने लगा और आचार्य भगवन मन्त्रोच्चार बोल रहे थे उस समय दादा की प्रतिमा से दिव्य तेज प्रगट हुआ और दादा की मूर्ति ने सात बार श्वासोश्वास लिया । देवता देवाधिदेव के प्रति पूज्य भाव से बिम्ब में संक्रान्त हो गए । लोगों ने हर्षोल्लास से स्वर्ण वृष्टि



की । इस चमत्कार ने प्रभु में प्रभुत्व प्रकट होने की प्रतीति करा दी । शुभ घड़ी में प्रभु की प्रतिष्ठा हुई । लोगों ने जय-जयकार के नारे लगाए । तत्पश्चात् आचार्य भगवन ने श्री पुण्डरीकस्वामीजी की, रायण पादुका की प्रतिष्ठा कराई । स्वर्ण कलश की, ध्वजा दण्ड की प्रतिष्ठा कराके जिनधर्म जिनशासन की पताका को लहराया ।

जब दादा की पलाठी के नीचे नाम लिखने का प्रसंग आया तब आचार्यप्रवर श्री विद्यामण्डनसूरिजी ने स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया । केवल मात्र इतना ही लिखा कि 'सूरिभिः प्रतिष्ठितम्' ऐसे त्यागी, तपस्वी, निःस्पृही महात्मा के कर-कमलों से प्रभु की प्राण प्रतिष्ठा हुई । आज भी दादा की पलाठी में इतना लेख मौजूद है ।

जिनालय में प्रत्येक उपयोगी वस्तु आरती, मंगल दीपक, छत्र, चामर, स्थ, चन्द्रवा, फलश आदि सभी उपकरण करमा शा ने दिए । महोत्सव में आने वाला प्रत्येक साधु-साध्वी एवं व्यक्ति प्रसन्न था । सभी लोग करमा शा को धन्यवाद दे रहे थे और करमा शा भी स्वयं को धन्य मानता था कि देव-गुरु की कृपा से मुझे ऐसा लाभ मिला । सकल संघों ने करमा शा को वधामणी दी, पू. विद्यामण्डनसूरिजी ने करमा शा के ललाट में विजय का सूचक संघपति तिलक किया तथा इन्द्र माला पहनाई ।

करमा शा ने खुले हाथों याचकों को दान दिया । रात-दिन देखे बिना जिन शिल्पियों ने जिनबिम्ब बनाया । उनका तथा उनके परिवार का सोने की जनोई, कुण्डल, मुद्रिका, कंकण आदि आभूषणों से तथा रेशमी वस्त्रों से बहुमान किया । उदार दिल से साधर्मिक भक्ति का लाभ लिया । निरन्तर आहार पानी, वस्त्र, औषध, पुस्तक आदि से साधु-साध्वीजी भगवन्त की भक्ति की ।

इस प्रकार करमा शा ने शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार किया और वस्तुपाल द्वारा रखी हुई शिला से मूर्ति का निर्माण कराया । वर्तमानकाल में वही दादा की मूर्ति की पूजा प्रभु भक्तों के द्वारा हो रही है । दादा की मूर्ति चमत्कारी

और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाली साक्षात् कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न के समान है ।

प्रतिष्ठा कराने वाले करमा शा के वशंज आज भी चित्तौड़ और उदयपुर आदि में है । वस्तुपाल ने साधर्मिक बन्धुओं के लिए जो परिश्रम किया अर्थात् दीर्घ दृष्टि से विचार करके शिला लेकर भोयरे में रखी जिससे दादा की प्रतिमा का सर्जन हुआ । वही दादा आज लाखों भक्तों को अपने पास खींच रहा है । इस कलियुग में दादा साक्षात् हाजरा-हजूर हैं ।

इस चौबीसी में विमलवाहन नामक राजा श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का अन्तिम अर्थात् सत्रहवाँ उद्धार श्रीमद् दुप्पसहस्रसूरीश्वरजी म. के उपदेश से पाँचवें आरे में कराएगा । इन महान उद्धारों से प्रेरणा पाकर जो पुण्यवन्त आत्माएँ तीर्थ उद्धार का छोटा-बड़ा कोई भी कार्य देव-गुरु की कृपा से करेगा उसका जन्म-जन्मान्तर सफल होगा ।

नाणं सम्पन्नाए जीवे ।  
सव्व भावाहिगमं जणवई ॥

उत्तराध्ययन 29 गा. 59

ज्ञान सम्पन्नता एवं इसकी वृद्धि करने से आत्मा विश्व व्यापी छः द्रव्यों और उनकी पर्यायों को तथा उनके गुण धर्मों को जान सकता है । ज्ञान और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है । एक के अभाव में दूसरा सम्भव नहीं है ।

## गिरनार तीर्थ के उद्धारक श्री रत्नसार श्रेष्ठी

जग में तीर्थ दो बड़े, शत्रुञ्जय गिरनार ।  
इक गढ़ ऋषभ समोसर्या, इक गढ़ नेम कुमार ॥

उज्जिंत सेल सिहरे, दिक्खानाणं निसीहिआ जस्स  
तं धम्म चक्कवट्ठीं, अरिद्धनेमिं नमंसामि ॥

इस विश्व की वसुन्धरा पर संसार सागर से तारने वाले तथा डुबाने वाले अनेकों स्थल हैं। वेकेशन के दिनों में घूमने की एक फैशन बन गई है। हजारों नर-नारी प्लेन, ट्रेन, लक्जरी बसों द्वारा मौज-मजा उड़ाने के लिए, कश्मीर, कुल्लू मनाली, होंगकोंग, ऊटी, दार्जीलिंग, गोवा आदि हिल-स्टेशनों पर जाते हैं और कर्मों का बन्धन करते हैं। यह बात भूल जाते हैं कि हिल-स्टेशन डुबाने वाले हैं, तीर्थ स्थान तारने वाले हैं। तीर्थ स्थानों में जाने से शुद्ध भावों द्वारा विधिपूर्वक आराधना करने से कर्मों का क्षय होता है, आत्मा भार मुक्त हो जाती है।

वर्तमान काल में हमारे पास बहुत तीर्थ हैं। परन्तु शत्रुञ्जय और गिरनार तीर्थ की तुलना कोई नहीं कर सकता। सिद्धाचल तीर्थ के कंकर कंकर में अनन्ता आत्माओं ने सिद्धपद को प्राप्त किया है और गिरनार तीर्थ अनन्त-अनन्त तीर्थकर परमात्मा के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक की भव्य भूमि है। वर्तमान चौवीसी के बाईसवें तीर्थकर श्री नेमीनाथ प्रभु के अतीत चौवीसी के आठ तीर्थकरों के दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक, अनागत चौवीसी के चौबीस तीर्थकरों के निर्वाण कल्याणक की पावन भूमि है। दूर-दूर से रैवत गिरि के शिखरों को देखते ही यात्रियों के मनमयूर नृत्य करने लग जाते हैं।

# श्री गिरनारजी तीर्थ



दीक्षाकल्याणक  
भूमि सहसावन



केवलज्ञान कल्याणक  
भूमि सहसावन

सौ  
नय

श्री मथुरादास, प्रवेशचन्द, राजीवकुमार, सुदर्श रानी,  
गोल्डी रानी जैन, पट्टी, (पंजाब)



वर्तमान काल में इस तीर्थ का उद्धार काम्पिल्य नगर के निवासी रत्नसार श्रेष्ठि ने कराया था । जिसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है ।

सोरठ देश की धन्य धरा पर काम्पिल्य नामक नगर में रत्नसार नामक श्रावक रहता था । एक बार अचानक 12 (बारह) वर्ष का दुष्काल पड़ा । उस समय पानी के अभाव में पशु तो क्या मनुष्य भी मरने लगे । रत्न श्रावक धनोपार्जन करने के लिए कश्मीर देश में जाकर रहने लगा । स्थान बदलते ही उसके भाग्य में भी परिवर्तन हो गया । प्रचण्ड पुण्योदय से प्रतिदिन अपार धन कमाने लगा । सम्पत्ति का संग्रह न करके उसका सदुपयोग और सन्मार्ग में व्यय करने की भावना उसके मन में उत्पन्न हुई । भावना को साकार रूप देने के लिए उसने श्री आनन्दसूरीश्वरजी की निश्रा में सिद्धाचल, गिरनार आदि तीर्थों का छःशे पालित यात्रा संघ निकाला ।

ग्रामानुग्राम देव-गुरु और साधर्मिक भक्ति करते हुए तथा नए-नए जिनालयों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार करवाते हुए रत्न श्रावक संघ सहित स्व-वतन काम्पिल्यपुर में पहुँचा वहाँ पर स्वामीवात्सल्य करके सकल संघ साथ चलने का निमन्त्रण दिया । गुरु की निश्रा में चलते-चलते संघ शाश्वत गिरिराज सिद्धगिरि में पहुँचा । वहाँ पर भक्ति करके बाल ब्रह्मचारी नेमीनाथ परमात्मा के केवलज्ञान तथा निर्वाण की भूमि गिरनार तीर्थ पर पहुँचा । वहाँ नेमीनाथ की पूजा सेवा करके संघ सहित जब रत्न श्रावक मुख्य शिखर की ओर जा रहा था तब रास्ते में सभी ने छत्रशिला को कम्पायमान होते हुए देखा तब उसने अवधिज्ञानी आनन्दसूरि गुरु को छत्रशिला के कम्पन का कारण पूछा । गुरु ने कहा हे रत्नसार ! तेरे द्वारा इस रैवत गिरि तीर्थ का नाश होगा और तेरे द्वारा ही इस तीर्थ का उद्धार होगा । यह सुनकर अत्यन्त दुःखी मन से परमात्मा को दूर से ही वन्दन करके जब वह वापिस जा रहा था तब उसे सान्त्वना देकर गुरु ने कहा- हे रत्न ! इस तीर्थ का नाश तेरे द्वारा होगा- इसका अर्थ है कि तेरा अनुसरण करने वाले श्रावकों द्वारा होगा तेरे द्वारा तो इस महान तीर्थ का अधिक उद्धार होगा । इसलिए खेद मत कर । गुरु के उत्साह पूर्वक वचनों को



सुनकर रतन ने संघ के साथ रैवत गिरि के मुख्य शिखर पर प्रवेश किया । वहाँ पर गजेन्द्र पद कुण्ड के जल से स्नान करके शुद्ध वस्त्रों को धारण करके विमल राजा द्वारा स्थापित लेपमयी श्री नेमीनाथ प्रभु के काष्ठमय मन्दिर में प्रवेश किया । सभी यात्रियों ने हर्षित मन में गज पद कुण्ड के शुद्ध जल से कलश भर-भरकर प्रभु का प्रक्षाल करने लगे । पुजारी के मना करने पर भी एक धारा प्रवाह से प्रक्षालन करते रहे । धीरे-धीरे लेपमयी प्रतिमा का लेप गलने लगा । थोड़ी ही देर में प्रभु प्रतिमा मिट्टी का पिण्ड स्वरूप बन गई । इस दृश्य को देखकर रत्न श्रावक शोकातुर होकर मूर्च्छित हो गया । सकल संघ शोक सागर में डूब गया । चारों तरफ हाहाकार मच गया । संघपति रत्न श्रावक को शीतल जल के उपचार से स्वस्थ किया । प्रतिमा के गलने से टूटे हुए हृदय वाला रतन आकुल-व्याकुल होकर विलाप करने लगा- इस महातीर्थ का नाश करने वाला । मैं महापापी ! मुझे धिक्कार हो, अरे यह क्या हो गया । हे प्रभु ! अब मैं क्या करूँ ? अब तो नेमीनाथ प्रभु ही मुझे शरणभूत हो । दृढ़ संकल्प के साथ रत्न श्रावक ने चारों आहार का त्याग कर दिया और प्रभु के चरणों में आसन लगाकर बैठ गया ।

समय बीतने लगा । रत्न श्रावक के सत्त्व की परीक्षा होने लगी । अनेक विघ्न आने पर भी दृढ़ संकल्पी बना रहा । उसके तप के प्रभाव से एक महीने के बाद अम्बिका देवी प्रकट हुई । हर्षित होकर रत्न श्रावक ने उसे नमस्कार किया । अम्बिका देवी ने कहा- हे वत्स ! तू खेद क्यों करता है ? तुम इस प्रतिमा का नया लेप करवाकर पुनः प्रतिष्ठा करवाओ । माँ के यह वचन सुनकर विषाद ग्रस्त बना रतन कहता है, माँ ! ऐसे वचन मत बोलो, पूर्व बिम्ब का नाश करके मैं भारे कर्मी बना हूँ और अब मैं पुनः लेप करके मूर्ति की स्थापना करूँ तो भविष्य में पुनः मेरी तरह अन्य कोई अज्ञानी इस बिम्ब का नाश करने वाला बनेगा । इसलिए माँ ! यदि आप मेरे तप पर प्रसन्न हो तो मुझे ऐसी अभंग मूर्ति दीजिए, जिससे भविष्य में किसी के द्वारा भी इसका नाश न हो सके ।

रत्न श्रावक के इन वचनों को सुना-अनसुना करके देवी अदृश्य हो गई ।

रतन पुनः अम्बिका के ध्यान में स्थिर चित्त वाला बनकर बैठ गया । उसके महासत्त्व की कसौटी करने के लिए देवी ने अनेक उपसर्ग किए । परन्तु मेरुसम निश्चल रहा । तब सिंह के वाहन पर बैठकर चारों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई अम्बिका देवी ने पुनः प्रत्यक्ष होकर कहा— हे वत्स ! मैं तेरे सत्त्व पर प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वरदान माँगो । तब रतन बोला— माँ ! इस महातीर्थ के उद्धार सिवाय मेरा कोई मनोरथ नहीं है । आप मुझे श्री नेमीनाथ प्रभु की कोई ऐसी वज्रमय प्रतिमा दीजिए जो शाश्वत रहे । देवी बोली— सर्वज्ञ भगवन्त ने तेरे द्वारा ही इस तीर्थ का उद्धार होगा ऐसा कहा है । इसलिए तुम मेरे साथ चलो और इधर—उधर देखे बिना मेरे पीछे पीछे चले आना । रतन देवी के पीछे—पीछे चलने लगा । चलती—चलती देवी पूर्व दिशा की तरफ हिम पर्वत के कंचन शिखर पर पहुँच गई । वहाँ सुवर्ण गुफा के पास जाकर सिद्धि विनायक नामक अधिष्ठायक देव को विनती करके कहने लगी, हे भद्र ! इस गुफा के द्वार खोलो । देवी के आदेश से उसने गुफा के द्वार खोल दिए । अन्दर से दिव्यपुञ्ज प्रगट हुआ । अम्बिका देवी के पीछे—पीछे रत्न श्रावक ने गुफा से प्रवेश किया । उस गुफा के स्वर्ण मन्दिर में विराजमान विविध मणि रत्न आदि प्रतिमाओं को बताते हुए देवी ने कहा— हे रतन ! यह मूर्ति सौधर्मेन्द्र ने बनाई है । यह धरणेन्द्र ने पद्मराग मणि से बनाई है । यह मूर्तियाँ भरत महाराजा आदित्य यशा आदि के द्वारा रत्न और माणिक्य से बनाई हुई हैं । असंख्य काल से यह ब्रह्मलोक में पूजी गई हैं । यह मूर्तियाँ राम तथा कृष्ण के द्वारा बनाई हुई हैं इस मूर्तियों में से तुम्हें जो पसन्द हो वह ग्रहण कर लो ।

मानव मन का हरण करने वाली मनोरम्य परमात्मा की मूर्तियों को देख कर उसके हर्ष का पार नहीं रहा । कौन—सी प्रतिमा पसन्द करूँ यह निर्णय करना उसके लिए कठिन हो गया । अन्त में उसने मणि रत्नादि मय जिन बिम्ब को पसन्द किया । तब अम्बिका देवी ने कहा— हे वत्स ! भविष्य में लोग इस मणिरत्नों से बनी मूर्ति की आशातना करेंगे । अतः तुम यह आग्रह छोड़कर ब्रह्मेन्द्र द्वारा रत्न माणिक्य के सार से बनवाई गई इस मूर्ति को



देखो ! यह विजली, आँधी, तूफान, जल अथवा वज्र से भी अमेघ है और महाप्रभाविक है अतः इस प्रतिमा को ग्रहण करो । इतना कह कर देवी ने 12 योजन तक प्रकाशित होने वाले तेजोमय मण्डल को अपनी दिव्य शक्ति से खींचकर सामान्य पाषाण के समान प्रतिमा बनाकर कहा— हे रत्न ! अब तुम इस मूर्ति को कच्चे सूत के तार से बान्धकर आगे-पीछे या बाजू में देखे बिना शीघ्रातिशीघ्र ले जाओ । यदि मार्ग में कहीं पर भी आराम करोगे तो यह मूर्ति वहाँ पर ही स्थिर हो जाएगी । इतनी सूचना देकर देवी स्वस्थान पर चली गई ।

अम्बिका देवी की असीम कृपा से प्राप्त प्रतिमा को लेकर रत्न श्रावक देवी के आदेशानुसार इधर-उधर देखे बिना अस्खलित गति से कच्चे तार से बान्धे हुए जिनबिम्ब को लेकर चलता-चलता जिनालय के मुख्य द्वार पर पहुँच गया वहाँ पर आकर विचार करने लगा पहले मैं अन्दर जाकर लेप्यमयी प्रतिमा को हटाकर भूमि की सफाई कर लूँ । तत्पश्चात् नूतन जिन बिम्ब को वहाँ पर पधराऊँगा । ऐसा सोचकर वह प्रतिमा को वहाँ पर ही रखकर अन्दर गया । सफाई आदि करके जैसे ही बाहर आकर नूतन प्रतिमा को उठाने का प्रयास किया कि वह प्रतिमा उठी ही नहीं उसी स्थान पर मेरु की तरह अचल बन गई । चिन्तातुर होकर रत्न श्रावक ने पुनः चारों प्रकार के आहार पानी का त्याग कर दिया और अम्बिका देवी की आराधना में मग्न बन गया । निरन्तर सात दिन के उपवास पश्चात् अम्बिका देवी ने पुनः प्रगट होकर कहा— हे वत्स ! मैंने तुम्हें पहले ही कहा था कि कहीं पर विराम किए बिना ही इस बिम्ब को ले जाकर पधरा देना । अब यह प्रतिमा यहाँ से नहीं उठेगी । अब तुम इस प्रतिमा को यथावत् रखकर पश्चिमाभिमुख द्वार वाला प्रसाद बनवाओ और इस तीर्थ का उद्धार करो इस कार्य में विलम्ब मत करो । इतना कह कर देवी अन्तर्ध्यान हो गई ।

रत्न श्रावक ने देवी की सूचनानुसार पश्चिमाभिमुख प्रासाद बनवाया और सकल संघ के साथ हर्षोल्लास पूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव कराया । आचार्य भगवन्तों ने सूरि मन्त्र के पदों द्वारा देवताओं को आकर्षित करके बिम्ब और चैत्य को

अधिष्ठायक से युक्त किया । रत्न श्रावक ने जिनशासन की गगनचुम्बी ध्वजा को लहराया । उदारता पूर्वक दानादि देकर श्री नेमीनाथ प्रभु की स्तुति की । भाव विभोर होकर नेमीनाथ प्रभु को रोमाञ्चित देह से अपलक नेत्रों से निहारता रहा । उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर अम्बिका देवी तथा क्षेत्रपाल देवता ने आकर उसके गले में पारिजात के फूलों की माला पहनाई । तत्पश्चात् रत्न श्रावक ने सातों क्षेत्रों में अपनी सम्पत्ति का बीजारोपण करके अपने जन्म को सफल किया । प्रसन्न मन से अपने स्थान पर जाकर धर्म ध्यान में निमग्न रहकर जीवन-यापन करने लगा । शास्त्रकार कहते हैं कि तीर्थ का उद्धार करने वाला रत्न श्रावक परम्परा से मोक्ष पद को शीघ्र ही प्राप्त करेगा ।

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सब्बहे ।  
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥

उत्तराध्ययन

ज्ञान से वस्तु के स्वरूप को समझा जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है, चारित्र के द्वारा आश्रव को रोका जाता है तथा तप के द्वारा पूर्व काल में उपार्जित कर्मों का क्षय किया जाता है ।

## भाई हो तो वस्तुपाल जैसा

वस्तुपाल तेजपाल के नाम से सभी परिचित हैं। परन्तु उनका भी एक छोटा भाई था उसका नाम था 'लूणिग'। एक बार वह आबू तीर्थ की यात्रा करने के लिए गया। वहाँ पर विमल शाह मन्त्री के द्वारा बनाया हुआ परमात्मा का मन्दिर तथा उसकी कलाकृति को देखकर लूणिग आश्चर्य चकित हो गया। अद्भुत मनोहारिणी परमात्मा की प्रतिमा को देखकर उसी में तन्मय बन गया। टकटकी लगाकर परमात्मा को देखता ही रहा। देखता ही रहा। वहाँ पर ही उसने संकल्प किया कि परमात्मा मुझे शक्ति दे तो मैं भी ऐसी ही एक प्रभु प्रतिमा बनाऊँ।

महाकाल के गणित को कोई नहीं जान सकता। भविष्य की गोद में क्या छिपा है उसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। तभी तो यह कहावत चरितार्थ हुई कि— 'न जान्यु जानकी नाथे सवारे शुं थवा चुं छे।'

छोटी उमर में ही यमराजा ने लूणिग पर आक्रमण कर दिया। भयंकर विचित्र रोग का भोग बन गया लूणिग। दिन प्रतिदिन उसका शरीर क्षीण होने लगा। उस समय वस्तुपाल का सम्पूर्ण कुटुम्ब अत्यन्त गरीबी अवस्था में था। लूणिग के लिए औषध लाने के लिए भी उनके पास पैसा नहीं था। वैद्य के द्वारा बताई हुई औषध जंगल में इधर-उधर घूमकर ले आते और उसे देते। लूणिग का बहुत इलाज करने पर भी स्वस्थता के चिन्ह दिखाई नहीं दे रहे थे फिर भी सभी तन-मन से सेवा में संलग्न थे।

एक दिन लूणिग की आँखों से आँसुओं की अश्रुधारा बहने लगी। वस्तुपाल तेजपाल ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा भैया लूणिग ! आज तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ? लूणिग बोला भैया ! आप सभी ने मेरी बहुत सेवा की। लगता है अब मेरी आयु की घड़ियाँ समाप्त होने वाली है। मेरी आँखों में आँसू आने का कारण यह है कि मैंने आबू में विमल शाह मन्त्री के द्वारा निर्मित

प्रतिमा का दर्शन करते समय यह संकल्प किया था कि मैं भी जीवन में ऐसी ही प्रभु की प्रतिमा बनाऊँगा । मुझे लगता है कि वह मेरी भावना पूर्ण नहीं होगी ।

इन शब्दों को सुनते ही वस्तुपाल ने कहा— भैया लूणिग ! प्रतिमा के लिए आँसू ! तुम चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ति हेतु, तुम्हारी ही स्मृति में शक्ति होने पर ऐसा अद्वितीय मन्दिर बनाऊँगा जिसे दुनिया याद करेगी, आज मैं तुम्हारे सामने यह संकल्प करता हूँ । यह सुनते ही हर्षित हृदय से लूणिग ने प्राण त्याग किए । समय आने पर वस्तुपाल ने आबू में 'लूणिग वसही' नाम का भव्य कलात्मक मन्दिर बनवाया ।

सवणे नाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे ।  
अणासवे तवे चेव, बोदाणे अकिरिय सिद्धि ॥

भगवती-सूत्र श. 2, उ. 5

सुनने से ज्ञान होता है, ज्ञान से विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) होता है । विज्ञान होने से आत्मा प्रत्याख्यान करता है, जिससे संयम की आराधना होती है । संयम से नवीन कर्मों का आना रुकता है, तप की आराधना होती है, जिससे पुराने कर्म क्षय होते हैं । कर्मों के क्षय होने से जीव क्रिया रहित होता है तथा सिद्धि को प्राप्त करता है ।

## राणकपुर तीर्थ के निर्माता

### धन्य हैं धरणा शा

राजस्थान की भव्य भूमि पर सादड़ी शहर के समीपवर्ती प्रदेश में, देवलोक के नलिनी गुल्म विमान के समान राणकपुर तीर्थ में बने हुए गगनचुम्बी मन्दिर दुनिया में अजोड़ एवं बेजोड़ हैं। जिसमें 1444 स्तम्भ लगे हुए हैं। प्रत्येक स्तम्भ के पास खड़े रहने से परमात्मा के दर्शन होते हैं। आदिनाथ दादा की चौमुखी प्रतिमा मन और नेत्रों को आह्लादित करने वाली है।

इस मन्दिर का निर्माण किया था एक जैन श्रावक धरणा शा पोरवाल ने। जिसका जीवन बिल्कुल सादा और सिम्पल था। जीवन में प्रदर्शन का नामोनिशान भी नहीं था। 32 वर्ष की युवावस्था में उसने 99 करोड़ सोना मोहरों को खर्च करके दीपा नामक शिल्पी से इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। मन्दिर का निर्माण करने के पश्चात् एक दिन शिल्पी दीपा ने कहा— सेठजी ! मैं मन्दिर में आपकी मूर्ति लगाना चाहता हूँ। सेठ के मना करने पर भी शिल्पी नहीं माना। अन्त में सेठ ने कहा— यदि तू लगाना ही चाहता है तो ऐसी जगह लगाना जहाँ से मैं परमात्मा को देखता रहूँ और परमात्मा मुझे देखते रहें। दीपा शिल्पी ने अपनी बुद्धि से उस युवक को ऐसे ही सुन्दर स्थान पर स्थापित किया। 560 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद आज भी धरणा की यशोगाथा राणकपुर मन्दिर के साथ जुड़ी हुई है।

धूमधाम पूर्वक राणकपुर की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद तुरन्त ही शत्रुञ्जय तीर्थ का छःरी पालित यात्रा संघ निकाला। जिसमें सैकड़ों की श्रमण-श्रमणी तथा हजारों यात्रिक थे। संघपति थे धरणा शा सेठ। स्थान-स्थान पर तीर्थों में, नगरों में दान का प्रवाह बहाते हुए चतुर्विध संघ की भक्ति करते संघपति दिन प्रतिदिन आगे-आगे बढ़ रहे थे। चलते-चलते जिस दिन संघ ने पालीताणा में प्रवेश किया उसी दिन भारत के विविध स्थलों से प्रयाण किए हुए दूसरे 20 (बीस) छःरी पालित संघों ने भी प्रवेश किया।

इक्कीस (21) संघों में इक्कीस (21) ही धुरन्धर आचार्य थे । प्रत्येक संघ के संघपति श्रावक अरबोपति थे । संघ माल पहनने की बोली भी जरूरी थी । यह बोली कैसे बोली जाए इसका निर्णय करने के लिए सभी संघों के आचार्य एकत्रित हुए । सभी के सामने यह समस्या थी कि यदि धन के माध्यम से बोली होगी तो संध्या तक भी इसका अन्त नहीं आएगा । क्योंकि सभी संघपति पुण्यात्माएँ अरबोपति हैं, कोई भी इस सुन्दर स्वर्णिम अवसर को छोड़ना नहीं चाहता । अब क्या करना चाहिए । अन्त में सभी ने सर्वानुमति से निर्णय किया कि प्रत्येक संघपति अपना भावी सुकृत प्रकट करें । उस सुकृत की श्रेष्ठता के क्रम से संघमाल का कार्यक्रम आयोजित होगा ।

आचार्य भगवन्तों की निश्रा में सभी संघपति एकत्रित हुए । सभी ने इस निर्णय को स्वीकार किया । माल के शुभ दिन चतुर्विध संघ की उपस्थिति में सभी संघपतियों ने अपना-अपना सुकृत निवेदित करना प्रारम्भ किया । किसी ने पाँच करोड़ रुपये के दान करने का, किसी ने दूसरा छःरी पालित महासंघ निकालने का, किसी ने शिखरबन्दी दस जिनालयों का निर्माण कराने का उद्घोष किया । जब एक संघपति ने अपने बेटे को दीक्षा दिलाने की घोषणा की तो सभी में सन्नाटा छा गया । उसी समय राणकपुर तीर्थ के निर्माता धरणा शा ने अपनी पत्नी सहित खड़े होकर कहा— गुरुदेव ! आज से लेकर जीवन पर्यन्त मैं सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा मैं इस सुकृत की घोषणा करता हूँ । उसकी इस प्रतिज्ञा को सुनकर सभी दाँतों तले ऊँगली दबाने लगे । सभी संघ में एक ही आवाज सुनाई देने लगी कि धन्य इस सजोड़े को, बत्तीस वर्ष की युवावस्था और ब्रह्मचर्य का पालन ।

सभी आचार्यों के अग्रगण्य आचार्य भगवन्त ने कहा कि संसार में रहकर बत्तीस (32) वर्ष की युवावस्था में तथा सम्पूर्ण भोग सम्पत्ति होने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन करना अति कठिन कार्य है इसलिए मैं इस दम्पति को प्रथम संघमाल पहनने की घोषणा करता हूँ । गुरु आज्ञा को तहति कह कर सभी ने मान्य किया । सर्वत्र आनन्द की लहर फैल गई ।

## माँ मिले तो गंगा माँ जैसी

अहमदाबाद के उद्योगपति जैन संघ के अग्रगण्य, सर्वजनमान्य सेठ लालभाई अहमदाबाद में रहते थे । उनकी माता का नाम था गंगाबाई ।

जिस समय हिन्दुस्तान पर अंग्रेजों का साम्राज्य था उस समय की घटना है । सम्मत्शिखरजी जैन धर्म का प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थ है । बीस-बीस तीर्थकरों की निर्वाण भूमि है । ऐसे शिखरजी तीर्थ के पवित्र पहाड़ के ऊपर अंग्रेजों ने अपने लिए गेस्ट हाउस बनाने का निश्चय किया । यह बात हवा की भाँति समस्त जैन समाज में फैल गई । जैन संघों में हलचल मच गई । अरे अंग्रेजों के गेस्ट हाऊस में मद्य और मांस की महफिलें उड़ेंगी । तीर्थ की पवित्रता का नाश हो जाएगा । इसके लिए अभी से ही रोकथाम लगानी चाहिए ।

सभी संघों के प्रमुख व्यक्ति मिलकर सेठ लालभाई के घर पहुँचे और सेठ के सामने सारी समस्या रखते हुए कहा— सेठजी ! तीर्थ रक्षा का एवं उसकी पवित्रता का प्रश्न है । आप समर्थशाली हैं, हम सभी आपके साथ हैं इस समय कुछ करना चाहिए । सुनकर सेठ ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि राज्य सत्ता के सामने हम कुछ नहीं कर सकते । जो होगा सो देखा जाएगा । इस प्रकार टाल-मटोल करके सेठ ने सभी को चुप करा दिया । सभी वहाँ से उठे और परस्पर विचार करने लगे ।

एक तीर्थ रक्षक धर्म प्रेमी व्यक्ति को सारी रात नींद नहीं आई । उसने खूब मन्थन किया । मन्थन करते-करते उसे एक रास्ता मिल गया । वह प्रातःकाल शीघ्र उठा और सीधा गंगा माँ के पास गया और सारी बात गंगा माँ को सुना दी ।

गंगा माँ धर्मयुक्त थी और कड़क भी बहुत थी । धर्म की खुमारी उसके रोम-रोम में भरी हुई थीं उसने आगन्तुक तीर्थ प्रेमी को आश्वासन दिया कि आप निश्चिन्त होकर जाओ । तीर्थ की सुरक्षा अवश्य होगी और

उसकी पवित्रता भी सदा बनी रहेगी । गंगा माँ की धाक पूरे परिवार में चलती थी ।

संध्या का समय हुआ । लालभाई सेठ खाना खाने के लिए आए । माँ ने थाली में भोजन के स्थान पर साड़ी चुँदड़ी और चूड़ियाँ रख दी और ऊपर से रेशमी रुमाल से थाली को ढक दिया । सेठ खाना खाने के लिए बैठे, जैसे ही थाली के ऊपर से रुमाल उठाया कि थाली में भोजन की जगह साड़ी और चूड़ियों को देखकर माँ से पूछा— माँ ! यह क्या ? माँ बोली— बेटा ! तू संघ का नायक ही क्यों बना है यदि तेरे में तीर्थ रक्षा की शक्ति ही नहीं है । यदि तू तीर्थ स्थान पर जाकर अंग्रेजों को बंगला बनाने से रोक ही नहीं सकता तो यह साड़ी और चुँदड़ी पहन ले, हाथों में चूड़ियाँ पहन ले और नारियों की तरह कायर बन कर घर में बैठ जा । आज तुमने बेटा ! अपनी माँ की कुक्षी को लज्जित कर दिया है ।

माँ के शब्दों में उग्रता थी तो सच्चाई भी थी । जिसे सुनकर सेठ की सोई आत्मा जाग उठी । दूसरे ही दिन लालभाई सेठ सम्मत्शिखर तीर्थ की सुरक्षा हेतु वहाँ पर पहुँच गया । अंग्रेजों से वार्तालाप करके गेस्ट हाऊस का बनाने का काम बन्द करवा दिया । समस्त संघ में चारों तरफ आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया । ऐसी थी गंगा माँ ।

**द्वितीय प्रसंग—** गंगा माँ का स्वयं का जीवन भी धर्मिष्ठ था और वह अपने बच्चों को परिवारजनों को भी धर्म के संस्कारों से सिंचित करती रहती थी । बड़े से लेकर छोटे तक कोई भी उसकी आज्ञा को भंग नहीं करता था । यह भी उसका आदेय नाम कर्म का उदय था ।

लालभाई दलपतभाई अहमदाबाद के माने हुए प्रसिद्ध उद्योगपति थे । एक दिन राजस्थान का एक व्यापारी प्रातःकाल धन्धे के कारण लालभाई को मिलने के लिए आ गया । उसके साथ व्यापार सम्बन्धी चर्चा वार्ता करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया अर्थात् पौने दस बज गए । अभी नई-नई मिल चालू की थी । सेठ ने कड़क नियम रखा था कि दस बजे मिल में हाजिर हो जाना ।



15 मिनट का समय बाकी होने से सेठ ने प्रभु पूजा छोड़ दी और खाने के लिए बैठ गया ।

वृद्ध गंगा माँ का नियम था कि घर का प्रत्येक काम छोड़कर घर के प्रत्येक व्यक्ति को भोजन के समय स्वयं भोजन परोसकर बड़े प्यार से खिलाती थी । जब लालभाई सेठ खाने को बैठा कि अचानक माँ की नजर सेठ के कपाल पर पड़ी ।

(गंगा माँ का नियम था कि पूजा किए बिना परिवार का कोई भी व्यक्ति भोजन नहीं कर सकता था और प्रत्येक व्यक्ति पूजा से पहले मस्तक पर तिलक का चाँदला करता ही था) आज सेठ के मस्तक पर चाँदला नहीं था अर्थात् केसर का तिलक नहीं था । माँ को शंका पड़ी, उसने तुरन्त कड़क स्वर से पूछा— क्यों लाला— क्या आज पूजा नहीं की ? माँ के प्रश्न के आगे सेठ गल्ला तल्ला अर्थात् इधर—उधर की बातें करने लगा— बोला माँ ! आज मुझे बहुत देरी हो गई अभी सेठ का वाक्य अधूरा ही था कि गंगा माँ ने गरज कर ऊँचे स्वर से कहा कि जब तक मैं इस घर में हूँ, तब तक इस घर का छोटा बच्चा भी पूजा किए बिना खा नहीं सकता । मेरे इस घर में धार्मिक संस्कार और दान धर्म यह दोनों वंश परम्परागत आगे चले यह देखने का कर्तव्य तुम्हारा है । यदि तू ही संस्कारों को भंग करेगा तो आगे कैसे चलेगा ?

अन्न का अपमान नहीं करना चाहिए इसलिए जो तेरे हाथ में कवल है इसे खा ले और शेष भोजन अभी ऐसे ही छोड़कर तुरन्त स्नानघर में जा और पूजा करके आ फिर आगे का बाकी भोजन करना । यदि तुझे मन्जूर न हो तो आज ही शाम को मैं पालीताणा चली जाती हूँ वहाँ पर अकेली ही किसी धर्मशाला में रह लूँगी, परन्तु मैं अपनी नजर के सामने इस घर में प्रभु पूजा के संस्कार स्रोत को जरा भी सूखने नहीं दूँगी ।

लालभाई सेठ माँ के इन शब्दों को सुनकर तुरन्त भोजन छोड़कर खड़े हो गए और आज्ञांकित बालक के समान प्रभु पूजा करके आए और फिर खाना खाकर मिल में गए ।

यहाँ आज कल के युग का कोई कहे कि यह तो बलजबरी अर्थात् जबरदस्ती है, परन्तु नहीं यह तो परम्परागत धार्मिक संस्कारों का दान है। जैसे बच्चा स्कूल पढ़ने न जाए तो कैसे उसे भय दिखाकर, प्रलोभन देकर जबरदस्ती स्कूल भेजते हैं। माँ-बाप का लक्ष्य यही होता है बच्चे के जीवन निर्माण का। संस्कार ही व्यक्ति को महान बनाते हैं।

**तृतीय प्रसंग-** अंग्रेजों के शासन में एक बार किसी वायसराय ने लालभाई सेठ को सन्देश भेजा कि सम्मत्शिखर तीर्थ के विवाद के विषय पर विचार विमर्श करने के लिए तथा उसका फ़ैसला करने के लिए मैं कलकत्ता आ रहा हूँ आप भी शीघ्र ही वहाँ पर आ जाइये। फिर हम दोनों मिलकर शिखरजी के पहाड़ पर जाएँगे।

जब यह सन्देश लालभाई के पास पहुँचा तो वह असमंजस में पड़ गया क्योंकि उसके पैर की नस पर बहुत बड़ा गूमड़ा (घाव) हो गया था। उसकी असह्य वेदना के कारण वह जाने में असमर्थ था। सोचने लगा कि ऐसी परिस्थिति में क्या करूँ? क्या न करूँ? अन्त में उसने मन ही मन निर्णय किया और आनन्दजी कल्याणजी पेढी के मुनीम को शिखरजी भेजने का निश्चय किया और उसे बुलाकर सभी प्रकार की शिक्षा देकर उसे अच्छी तरह से तैयार कर दिया।

लालभाई सेठ की माँ गंगाबाई को जब इस सारी बात की जानकारी मिली तो उसने मुनीम को कहलाया कि गंगा माँ के नाम की एक टिकट भी शिखरजी जाने के लिए अपने साथ ले लेना, क्योंकि गंगा माँ भी आपके साथ जाना चाहती हैं और वायसराय के साथ शिखरजी तीर्थ सम्बन्धी विवाद चर्चा में भाग लेना चाहती हैं।

माँ के जाने का समाचार जब सेठ लालभाई को मिला तो उसने माँ के पास आकर पूछा- माँ! आप शिखरजी क्यों जाना चाहती हैं? वहाँ यह सारा काम अपना मुनीम कर आएगा। उसके साथ मेरी सारी बातचीत हो गई है। मैंने उसे अच्छी तरह से समझा दिया है।

गंगा माँ ने कहा— बेटा ! यदि मेरा लाल वहाँ नहीं जा सकता ऐसी परिस्थिति में हैं तथा यदि उसे पवित्र तीर्थ से भी अपना पाँव अधिक प्रिय है तो उसके स्थान पर मुझे ही जाना चाहिए, इसमें दूसरा कोई विकल्प नहीं है और बेटा मैं निश्चित ही जाऊँगी ।

माँ की दृढ़ भावना को देखकर लालभाई सेठ माँ के चरणों में गिर गया और बोला— माँ ! आपने मेरे जीवन में उत्साह जोश भर दिया है अब तो मैं स्वयं ही शिखरजी जाऊँगा । मैं किसी को भी जाने नहीं दूँगा । माँ को प्रणाम किया, आशीर्वाद लिया और चल पड़ा शिखरजी तीर्थ की सुरक्षा हेतु वायसराय को मिलने के लिए ।

वायसराय और सेठ लालभाई ने परस्पर चर्चा विचारना की और दोनों शिखरजी के पहाड़ पर जब चढ़ने लगे तो पहाड़ पर चढ़ने से पूर्व बूट उतारने का सवाल आया । सेठ के साथ कलकत्ता जैन संघ के प्रमुख बाबू साहेब भी थे । सेठ लालभाई सोचने लगे कि वायसराय को कैसे कहूँ कि आप चमड़े के बूट उतार दीजिए । उसी समय अति कुशलता और शीघ्रता से कलकत्ता के बाबू साहेब ने वायसराय के पाँवों के पास बैठकर उसके चमड़े के बूट उतार कर केनवास के बूट पहनाने की कोशिश की । यह देख वायसराय लज्जित हो गया । उसने सोचा कि जैन धर्म के विधिविधान को मुझे मान सम्मान देना ही चाहिए और इस धर्म के अनुसार ही मुझे इनके साथ पहाड़ पर चढ़ना चाहिए, उसने स्वयं ही अपने चमड़े के बूट उतार दिए और दूसरे बूट पहन लिए ।

सभी वार्तालाप करते-करते पहाड़ पर चढ़ गए । जब वायसराय मन्दिर के पास पहुँचे तो उसने मन्दिर के भीतर नोबत और नगाड़े को पड़ा हुआ देखा । उसने तुरन्त सेठ को पूछा— जैसे बूट चमड़े के हैं वैसे यह नगाड़ा भी तो चमड़े का है आप दो बातें क्यों करते हो ? मेरे बूट तो पहाड़ पर चढ़ने से पहले उतार दिए और यह नगाड़ा ढोलक आदि सभी मन्दिर के अन्दर रखते हो !

यह सुनकर एक क्षण के लिए तो सेठ चुप हो गए कि वायसराय को क्या

उत्तर दूँ समझ नहीं आ रहा था, परन्तु तुरन्त दूसरे ही क्षण सेठ स्वस्थ हो गए आखिर सेठ तो वाणिया ही थे, वाणिया लोग बुद्धि के बड़े चतुर होते हैं ।

सेठ वायसराय को कोई भी उत्तर न देकर नगाड़े को अपने मस्तक पर उठा लिया । तत्पश्चात् वायसराय को कहा— साहेब ! क्या इसी प्रकार चमड़े के बूटों को कोई व्यक्ति मस्तक पर उठा सकता है ? वायसराय ने कहा— नहीं । सेठ ने कहा— यदि नहीं तो दोनों वस्तु चमड़े की होने पर भी दोनों में अन्तर तो है ही । सेठ की कुशाग्र बुद्धि पर वायसराय आश्चर्यचकित हो गया । उसने हाजर जवाबी बुद्धि की बहुत प्रशंसा की और सम्मत्तशिखर तीर्थ के विवाद को वहीं पर समाप्त कर दिया । जिनशासन की जयकार हुई । तीर्थ की सुरक्षा हुई ।

गंगा माँ को सभी समाचार सतत मिलते रहते थे । बेटा सरस पराक्रम करके जब घर आया तो गंगा माँ ने उसे खूब वात्सल्य दिया और लालभाई को लापसी का मंगल भोजन कराया तथा उसके इस कार्य की खूब-खूब प्रशंसा की । ऐसी थी गंगा माँ जिसके जीवन में भीम और कान्त दोनों ही गुण थे, ऐसा था बेटा लालभाई जो माँ का आज्ञांकित पुत्र था ।

## माँ

ममता की माँ मूरति, समता की पहचान ।  
 माँ ने ही पैदा किये, तीर्थकर भगवान ॥  
 तीर्थकर भगवान, देव गुण माँ का गाते ।  
 क्षमा-प्रेम-दुलार-उदारता इसमें पाते ॥  
 ऋण न उतरे माँ का, 'पारदर्शी' सच कहता ।  
 माँ की सेवा करो, मिलेगी तुमको ममता ॥

## सम्पत्ति का सदुपयोग

भगवान महावीरस्वामीजी की वाणी वह पतित पावनी निर्मल धारा है जिसमें डूबने से आत्मा अपने लोक-परलोक तथा लोकातीत तीनों प्रकार के जीवन को पावन एवं निर्मल कर लेता है। द्रव्य गंगा तन के ताप को कुछ क्षणों के लिए भले ही शीतल कर दे परन्तु उसमें मन के ताप को शीतल करने की क्षमता नहीं है। भगवान महावीर की वाणी रूपी शीतल धारा मानव के मनस्ताप को अखण्ड शान्ति और शीतलता प्रदान करती है।

आज हमें जैन कुल में जन्म मिला है। ऊर्ध्वगति में ले जाने वाला परमात्मा का शासन मिला है। ऐसे सर्वोत्तम संयोग को प्राप्त करके भी यदि पाप प्रवृत्तियों में ही लगे रहे तो धर्मशास्त्र कहते हैं कि—

ऐसो जन्म मिले न बारम्बार ॥

मानव का भव तो जंक्शन जैसा है। सभी गाड़ियाँ यहाँ से ही छूटती हैं। जिस भव में जिस गति में जाना हो वहाँ जाने की सभी ट्रेनें सभी फ्लाईट यहाँ से ही जाती है। बोलो आपको कहाँ जाना है? जहाँ जाने की ईच्छा हो वहाँ का टिकिट पहले लेना पड़ेगा, उसके लिए पासपोर्ट चाहिए, पॉकिट में पैसा भी चाहिए। जेब में रिक्शा का भी बिल चुकाने का पैसा न हो और अमेरिका जाने की बातें करें तो नहीं चलेगा। पहले रुपया इकट्ठा करो बाद में अमेरिका जाने की बात करो। यदि मरने के बाद अच्छी गति में जाना चाहते हो तो पहले इस भव में पुण्य का बेलेन्स करना पड़ेगा। पुण्य के बिना सद्गति नहीं मिलेगी। पुण्य के बिना सम्पत्ति और सन्मति की प्राप्ति भी नहीं होती। सम्पत्ति की प्राप्ति होने पर भी पुण्य के बिना उसका सदुपयोग भी नहीं होता। शास्त्रकार महाराजा कहते हैं कि सम्पत्ति का आगमन होने पर पाँच-पाँच दुर्गुण जीवन में एक साथ आ जाते हैं। 1. अहंकार, 2. निर्दयता, 3. कर्कश भाषा, 4. तृष्णा और 5. नीचजनों की प्रीति। सम्पत्ति आने पर प्रायः करके विनय, नम्रता आदि गुण

समाप्त हो जाते हैं। संस्कारी, खानदानी, धर्मी, सरल, भ्रष्ट परिणामी, पुण्यशाली, तेजस्वी मानव ही सम्पत्ति को पचा सकते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि पैसा आने से व्यक्ति जमीन से चार अंगुल ऊँचा चलने लगता है अर्थात् उसके पाँव जमीन पर नहीं ठहरते। उसके जीवन में से दया, करुणा की भावना नष्ट हो जाती है, उसकी वाणी बदल जाती है, उसकी भाषा कर्कश और कठोर बन जाती है। दुनिया के सभी भोग भोगने की तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। उसकी सम्पत्ति का सदुपयोग होने के बदले दुरुपयोग चालू हो जाता है। कंजूस का धन जमीन में पड़ा रहता है, वेश्या का धन सौन्दर्य प्रसाधनों में नष्ट होता है, व्यसनी का धन शराब, जुगार आदि में खर्च होता है, व्यापारी का फिजूल खर्ची में जाता है, विलासी का धन क्लबों में इधर-उधर घूमने में जाता है। पुण्योदय से प्राप्त सम्पत्ति क्लबों में, डान्स पार्टियों में, ब्यूटी पार्लर्स में, फ्लेट फर्नीचर, फोन, गाड़ी आदि में व्यय होती है। ऐसे लोगों के पास सम्पत्ति टिकती ही नहीं है। क्योंकि उनके पास लक्ष्मी कमाने की कला जरूर है परन्तु टिकाने की नहीं है। पुण्यशाली व्यक्तियों की सम्पत्ति ही पुण्य के कार्यों में लगती है।

पुण्यानुबन्धी पुण्यवान आत्माओं के पास जैसे-जैसे सम्पत्ति, वैभव, ऋद्धि, सिद्धि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनमें नम्रता, उदासीनता, विरागता भी बढ़ती जाती है। देवलोक में देखिये- प्रथम देवलोक से ऊपर दूसरे-तीसरे यावत् बारवें देवलोक तक जैसे-जैसे समृद्धि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे अन्तर गुण वैभव भी बढ़ता जाता है, विराग भाव भी बढ़ता जाता है। नवग्रैवेयक के बाद पाँच अणुत्तर विमानों में रहने वाले देवात्माओं की समृद्धि तो विश्व में उच्च कक्षा की होती है। उनकी शैथ्या के ऊपर लटकते हुए झूमर के सेन्टर (मध्य) के पीस के मणिरत्न का वजन चौंसठ मण का होता है। ऐसी समृद्धि के बीच भी वे अनासक्त योगी के समान वे देवात्मा प्रायः उच्च कक्षा की वीतराग अवस्था को भोगते हैं। (यह है ऊपरी कक्षा के देवलोक के देवों की स्थिति)

मध्य लोक में भी खानदानी - संस्कारी श्रीमन्त कुटुम्बों के लोग भी शान्त,

प्रशान्त और उपशान्त होते हैं । कभी भी कुल की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं, संस्कृति के नियमों को तोड़ते नहीं हैं, धर्माराधना छोड़ते नहीं हैं । ऐसे व्यक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी तक अक्ष लक्ष्मी और शुभ लक्ष्मी के मालिक बने रहते हैं । ऐसे ही एक संस्कारी परिवार के बंगले में एक बार कोई गुरु महाराज चरण करने के लिए गए । उनके घर में घर मन्दिर था । घर के सभी सदस्य परमात्मा की त्रिकाल पूजा सेवा, दर्शन, आरती करते थे । नवकारसी और चउविहार का नियम प्रत्येक सदस्य के लिए जरूरी था । घर में कोई रात्रि भोजन नहीं करता था । उस सेठ के चार लड़के और चारों बहुओं का बहुत बड़ा परिवार था, परन्तु सभी मर्यादा युक्त वस्त्र धारण करते थे । नंगे सिर कोई भी नहीं घूमता था । सभी प्रातःकाल उठकर बड़ों के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लेते थे । प्रातःकाल तथा सायंकाल प्रतिदिन प्रभु भक्ति करते थे, कबूतरों को दाना डालते थे, भिक्षुकों को दान देते थे, साधु-साध्वीजी को प्रतिदिन सुपात्रदान देते थे । कुल की मर्यादा ऐसी थी कि बड़े खड़े हों तो छोटे कुर्सी या पलंग पर नहीं बैठते थे । ससुर, देवर, जेठ या पति घर पर आए तो बहुएँ लाज (घुंघट) निकाल कर एक तरफ खड़ी हो जाती थी, उनका उल्लंघन करके इधर-उधर नहीं घूमती थी । बड़ों के सामने धीमें स्वर से बात करती थी । घर में किसी को कोई भी व्यसन नहीं था, रात के नौ (9) बजे तक परिवार के सभी पुरुष घर में हाजिर हो जाते थे । स्त्रियाँ कभी रात को घर से बाहर नहीं निकलती थी । इस परिवार को भारतीय संस्कृति का आदर्श कुटुम्ब कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस परिवार में सात पीढ़ी से लक्ष्मी अनराधार चली आ रही है ।

आजकल अधिकतर यही देखा जाता है कि लक्ष्मी बढ़ने के साथ संस्कारों का दिवाला निकल जाता है, पाप प्रवृत्ति बढ़ जाती है, चिन्ता का पार नहीं रहता है, लोग डिप्रेशन में चले जाते हैं, प्रतिदिन पारिवारिक सदस्यों में लड़ाई-झगड़ा सुबह से शाम तक चलता रहता है । कोई एक-दूसरे के सामने देखने को तैयार नहीं होता । कई लोग तो पैसे के लिए भाई-भाई का खून कर देते हैं, माँ-बाप को घर से बाहर निकाल देते हैं । दुःखी होकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि दुनिया में सभी भोग सामग्री हमें मिल जाए और हम सुखी हो जाएँगे ऐसा मत समझना सब कुछ मिल जाने पर भी यदि मन में शान्ति नहीं है, परिवार में परस्पर प्रेम नहीं है, दिन की भूख नहीं, रात की नींद नहीं है तो ऐसे पैसे को क्या करना ? सम्पत्ति कम होगी तो चलेगा परन्तु जीवन में आनन्द चाहिये, शान्ति चाहिये, परिवार में सम्प और प्रेम चाहिये यह सब होगा तो काया भी निरोगी रहेगी और जीवन भी सुख, शान्ति और आनन्दपूर्वक व्यतीत होगा ।

शास्त्रकार महाराजा कहते हैं कि सम्पत्ति का सदुपयोग करने वाले को दुनिया सदा याद करती है । आज धरणा शा, वस्तुपाल-तेजपाल दुनिया में नहीं हैं परन्तु राणकपुर और आबू का मन्दिर आज भी उनकी याद दिलाता है ।

धरणा शा सेठ ने मात्र बत्तीस (32) वर्ष की युवावस्था में 99 करोड़ सोना मोहरें खर्च करके नलिनीगुल्म विमान जैसा सुन्दर भव्यातिभव्य जिनालय का राजस्थान की धरती राणकपुर में निर्माण कराया जो 588 वर्ष के व्यतीत हो जाने पर आज भी मौजूद है । भर युवानी की अवस्था में 99 करोड़ सौनेया का सदुपयोग करने वाले इस युवक का अपनी इन्द्रियों पर कितना कन्ट्रोल होगा ? जीवन में कितना संयम पाला होगा । आज भी वह मन्दिर जिसकी यशोगाथा गा रहा है ।

वस्तुपाल-तेजपाल ने अपनी जिन्दगी में कैसे दुःख के दिन देखे थे । अन्न और दाँत का वैर हो गया था । छोटे भाई की दवाई करने के भी पैसे उनके पास नहीं थे । दवाई के अभाव में उनका भाई लूणिग दुनिया से विदा हो गया था । 'सब दिन होत न समान' इस उक्ति को हृदय में धारण करके शुभ संकल्प के बल से तथा पुण्योदय से घर में दैवी सम्पत्ति और समृद्धि का आगमन होने लगा । विलास में चकचूर न होकर उन्होंने अपनी सम्पत्ति को धर्म मार्ग पर लगाना चालू किया । अपने लघु बन्धु लूणिग की याद में तथा उसकी भावना की पूर्ति हेतु उस समय 12 करोड़ 53 लाख रुपये खर्च करके देलवाड़ा आबू में भव्य जिनालय का सर्जन कराया था । आज नए बन रहे सभी जैन- अजैन जिनालयों



तथा मन्दिरों में वहाँ की शिल्पकला की कॉपी की जा रही है । परन्तु अभी तक आबू देलवाड़ा से बढ़कर कोई भी शिल्प कला या कोतरनी नहीं बनी है ।

बहुत दूर के भूतकाल की बात तो छोड़िए जरा बहुत नजदीक के भूतकाल को याद करें तो भी श्रीमान् सेठ मोती शा मुम्बई का शाह सौदागर कहलाता था । मुम्बई की धरती पर जैनों में सबसे पहले इस सेठ ने ही कदम रखे थे । उस समय मुम्बई में पारसियों तथा वैष्णवों के धर्मस्थान बन चुके थे, परन्तु जैनों को कोई भी धर्मस्थान नहीं था । उस समय सबसे पहले मुम्बई कोट में मोती शा सेठ के भाई नेमचन्द सेठ ने शान्तिनाथ भगवान का जिनालय बनवाया था । उसके पश्चात् जैनों की संख्या बढ़ने पर सेठ ने पायधुनी में गोडीजी पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ तथा चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर का निर्माण कराया ।

उस समय व्यक्ति पालीताणा नहीं जा सकते थे उनके लिए सेठ मोती शा ने भायखला में शत्रुञ्जय तीर्थ की स्थापना की क्योंकि सेठ को शत्रुञ्जय गिरिराज के ऊपर बहुत आस्था थी । भायखला में श्री आदिनाथ भगवान, श्री शान्तिनाथ भगवान, श्री पुण्डरीकस्वामीजी, रायण पगला, सूरजकुण्ड आदि की स्थापना की । जिसकी आज भी प्रतिदिन हजारों भक्त पूजा उपासना करते हैं । अब तो भायखला मन्दिरजी के चारों तरफ जैनों के हजारों मकान बन चुके हैं ।

भायखला मन्दिरजी के लिए श्री आदिनाथ भगवान आदि 16 जिन-प्रतिमाएँ अहमदाबाद से धूप-दीपक के साथ पूजा के वस्त्रों को पहनकर पालकी में विराजमान करके सेठ अपने कन्धों पर उठाकर लाए थे । मोती शा के साथ सेठ श्री हेमाभाई, सेठ श्री बालाभाई, सेठ श्री त्रिक्रमभाई आदि भी साथ थे । सभी प्रतिमाओं को यह लोग भरुच तक पैदल चलकर लाए थे और भरुच से दरिया मार्ग से मुम्बई लेकर आए थे । मुम्बई में प्रभुजी का भव्य स्वागत सामैया किया गया । अंग्रेजों का सरकारी बैण्ड था, बहिर्न मंगल कलश लेकर आई । अंग्रेज भी प्रभुजी की इस स्वागत यात्रा को देखकर पागल हो गए थे । सेठानी

श्रीमती दीवालीबहन स्वयं लामण दीवा हाथ में लेकर चली थी । विक्रम सम्वत् 1885 माह सुदी छट्ट के दिन प्रभुजी को गादीनशीन किया था । प्रतिष्ठा के पश्चात् सेठ ने अनेक यात्रियों के साथ कोर्ट से भायखला तीर्थ की 99 पदयात्रा की थी ।

सेठ ने सोचा मेरे जीवन का भरोसा नहीं है । मुझे पालीताणा में भी एक टूँक बनानी है । ऐसा विचार करके धनार्क कमूरता होने पर भी रामजी भाई सोमपुरा के मना करने पर भी सेठ ने भावोल्लास में आकर मन्दिर का शिलान्यास कर दिया । मृत्यु से पहले मेरे धन का सदुपयोग हो जाए इसके लिए प्रतिदिन पालीतीन टूँक में निर्माण के लिए 1100 शिल्पी तथा 3000 (तीन हजार) मजदूर काम में लगा दिए । उस समय मजदूर को केवल एक आना (10 पैसे) मजदूरी देते थे । उस समय कुल खर्च नव (9) लाख सात सौ रुपये हुआ था । सात वर्ष तक अविरल गति से काम चलता रहा । इसी बीच सेठ की तबीयत अस्वस्थ होने के कारण शीघ्र ही प्रतिष्ठा का मुहूर्त वि. सं. 1893 माह सुदी दसमी को अञ्जनशलाका का तथा माह वदी दूज को प्रतिष्ठा का दिन निश्चित हो गया । सेठ एक वर्ष पूर्व ही प्रतिष्ठा की तैयारियाँ करने लग गया । परन्तु पर्युषण के दिनों में सेठ की तबीयत अधिक बिगड़ गई । अधिक तबीयत खराब होने पर सेठ ने सभी सम्बन्धियों को बुलाकर कह दिया कि यदि मैं दुनिया से चला जाऊँ तो आप कोई शोक नहीं करना, प्रतिष्ठा का मुहूर्त नहीं बदलना, प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं आने देना । सभी को सुविधा देकर क्षमापना करके वि. सं. 1892 भाद्रवा सुदी एकम रविवार महावीर जन्मवाँचन के दिन प्रभु स्मरण करते-करते सेठ ने प्राण छोड़ दिए । उस समय सेठ की उम्र केवल 54 वर्ष की थी ।

सेठ की आज्ञानुसार उसके गोद में लिए हुए सुपुत्र खेमचन्द ने पालीताणा जाकर धूमधाम से प्रतिष्ठा महोत्सव किया । चालू महोत्सव में सेठानी दीवालीबहन का भी देहान्त हो गया । जाते-जाते उसने भी कह दिया कि प्रतिष्ठा बन्द नहीं करना, मैं तो सेठ को समाचार देने जा रही हूँ कि प्रतिष्ठा महोत्सव अच्छी तरह हो रहा है । प्रतिष्ठा धूमधाम से सम्पन्न हुई । आज भी पालीताणा में मोती शा

की टूँक सेठ की कीर्ति का मंगलगान गा रही है । उसके नाम के गीत गाए जा रहे हैं- 'लावे-लावे मोती शा सेठ, न्हवण जल लावे रे.....!'

इसे कहते हैं सम्पत्ति का सदुपयोग । सम्पत्ति के समय की सूझबूझ । यदि पुण्योदय से आपको सम्पत्ति मिली है तो उसका सदुपयोग होना चाहिए - दुरुपयोग तो कभी नहीं । उसे पुण्य कार्यों में लगाना सीखो । जीवन में कभी उड़ाऊ नहीं बनना परन्तु उदार जरूर बनना, करकसर जरूर करना परन्तु कंजूस कदापि नहीं बनना । अपने पूर्वजों के आदर्श जीवन को अपने समक्ष लेकर आओ और याद करो कि उनका जीवन कितना सादा और स्वभाव कितना उदार था, धोती और कुर्ता पहनते थे, सिम्पल मकान में रहते थे । उस समय उनके मकान में आज की तरह प्रत्येक रूम में फोन, फर्नीचर, टी.वी.फ्रीज आदि नहीं । लज्जा ढकने के लिए सुन्दर वस्त्र थे परन्तु फैशन नहीं था । सात्विक भोजन था परन्तु जीभ के टेस्ट के लिए भिन्न-भिन्न वेराइटीज नहीं थी । सिम्पल लीविंग एण्ड हाई थीकिंग की बातों को केवल पढ़े ही नहीं परन्तु समझे हुए भी थे । जीवन में धूप-छाया, सभी को सहन करने की शक्ति थी । पैसा पचाने की तथा खर्च करने की शक्ति थी । शक्ति होने पर धर्म के कार्यों में कभी पीछे नहीं रहते थे ।

अतः प्रिय बन्धुओं ! अपने पूर्वजों के इतिहास को देखकर उनका उपहास न करके उनके गुणों को जीवन में अपनाने का प्रयत्न करो जिससे इस लोक में भी सुखशान्ति की प्राप्ति होगी और परलोक में भी सद्गति मिलेगी ।

आचरण से ही कहलाते इन्सान हैं ।  
आचरण से ही बन जाते शैतान हैं ।  
आऽचरण में गुरु के तो ज्ञान मिले-  
आचरण से ही मिल जाते भगवान हैं ।

-देहदानी पारदर्शी



**कर्म  
विषयक  
प्रश्नोत्तरी**



## कर्म विषयक ज्ञान प्रश्नोत्तरी

प्रश्न- 1. शरीर की स्वस्थता बनी रहे ऐसे कौन-कौन से उपाय आचरणीय हैं ?

उत्तर-

1. रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग करना ।
2. पन्द्रह दिन में एक बार उपवास करें ।
3. प्रसन्नतापूर्वक सादा भोजन करना ।
4. आहार करते समय पानी कम पीना ।
5. आहार के उपरान्त एक घण्टे के पश्चात् खूब पानी पीना ।
6. दिन में भोजन के पश्चात् थोड़ा-सा विश्राम करना तथा सायंकाल के भोजन पश्चात् भ्रमण करना ।
7. रात्रि भोजन करने के बाद तुरन्त भूल कर भी न तो स्नान करना और न ही कठोर परिश्रम करना ।
8. भोजन करके तुरन्त लघुनीति (पेशाब) करना ।
9. खाँसी-जुकाम होने पर गर्म पानी पीना ।
10. शीघ्र सोना, सूर्य उदय होने से एक घण्टा पहले उठना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है ।

प्रश्न- 2. जीव भारी कर्मों वाला कैसे होता है ?

उत्तर-

प्राणातिपात- (हिंसा) झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, निन्दा, मिथ्यात्व का सेवन करना आदि 18 पापस्थानक रूप दुष्कर्मों को तीव्रता पूर्वक करने से जीव भारी कर्मों बनता है ।

प्रश्न- 3. स्वाध्याय करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर- 1. अपने स्वरूप को जानना ही स्वाध्याय है ।

2. श्रेष्ठ अध्ययन अर्थात् पर को समझ कर उससे निर्लिप्त रहना तथा स्व-आत्मा को जानने का प्रयास करना ही स्वाध्याय है । ऐसा स्वाध्याय करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा करता है ।

प्रश्न- 4. बुद्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिसके द्वारा तत्व का बोध हो हित-अहित का ज्ञान हो उसे बुद्धि कहते हैं ।

प्रश्न- 5. ज्ञान और सदबुद्धि में क्या अन्तर है ?

उत्तर- पुस्तकों के अध्ययन से जो प्राप्त हो उसे ज्ञान कहते हैं ।

चिन्तन और अनुभव से जो जागृत होती है उसे सदबुद्धि कहते हैं ।

प्रश्न- 6. ज्ञानी और बुद्धिमान बनने के कौन-कौन से उपाय हैं ?

उत्तर- 1. गुरुजनों एवं वृद्ध पुरुषों की सेवा करना ।

2. अज्ञानीजनों की संगत से दूर रहना ।

3. निरन्तर स्वाध्याय करते रहना ।

4. एकान्त में बैठकर सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना ।

5. ज्ञान प्राप्ति में धैर्य रखना, आवेश एवं व्याकुलता का त्याग करना ।

प्रश्न- 7. तीर्थंकर परमात्मा की साधना कहाँ से शुरू और कहाँ पूर्ण होती है ?

उत्तर— परमात्मा की साधना सामायिक से शुरू होती है और यथास्थित चारित्र से पूर्ण होती है ।

प्रश्न— 8. कर्म जीव को ही क्यों लगते हैं ? अजीव को क्यों नहीं ?

उत्तर— जैसे लोहा चुम्बक से खिंचा जाता है मिट्टी के ढेले सोने या चाँदी के टुकड़े को चुम्बक खींच नहीं सकता क्योंकि इनमें खिंचाने की शक्ति नहीं है । यह शक्ति लोहे में ही है, जिसे चुम्बक खींच लेता है । इसी तरह कर्मण वर्गणा में खिंचाने की शक्ति है, जीव कषाय द्वारा उन्हें खींचकर कर्म रूप में बना लेता है । जबकि अजीव में यह शक्ति नहीं होती ।

प्रश्न— 9. आत्मा के साथ कर्म चिपक जाने के बाद उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ?

उत्तर— जैसे सूखे कपड़े पर धूल पड़ जाए तो कपड़े को झाड़ने से धूल साफ हो जाती है । परन्तु वह कपड़ा घी से चिकना हुआ हो तो झाड़ने से धूल के कण नहीं निकलते हैं वैसे ही जीव के साथ कर्म चिपक जाने पर उन्हें निकालने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है । जैसे घी का कपड़ा गर्म पानी से धोकर साफ किया जाता है वैसे ही जीव के साथ चिपके हुए कर्मों को तप-वैराग्य-समता रूपी गर्म पानी से साफ करना पड़ता है तभी आत्मा शुद्ध बनती है ।

प्रश्न— 10. क्या बाँधे हुए सभी कर्म भोगने ही पड़ते हैं ?

उत्तर— नहीं ! कर्म भी दो प्रकार के होते हैं ।

1. निकाचित, 2. अनिकाचित ।

निकाचित कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । परन्तु अनिकाचित कर्मों को अबाधाकाल के दौरान तप-त्याग-वैराग्य समताभाव से नष्ट किया जा सकता है ।



प्रश्न- 11. अबाधाकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर- सामान्य रूप से कर्म स्थिति दो प्रकार की होती है-

1. अबाधाकाल, 2. विपाककाल ।

कर्म बाँधने के पश्चात् जब तक उदय में नहीं आते आत्मा में शान्त भाव से पड़े रहते हैं वह अबाधाकाल कहलाता है और जब वह कर्म उदय में आते हैं उसे विपाककाल कहते हैं ।

प्रश्न- 12. अबाधाकाल में कर्मों का फेरफार कैसे होता है ?

उत्तर- अबाधाकाल में कर्मों का बहुत ही फेरफार हो सकता है जैसे की शातावेदनीय बाँधा हुआ कर्म अशातावेदनीय कर्म के रूप में संक्रमण हो सकता है । बाँधे हुए सजातीय कर्म में ही संक्रमण होता है । साता का असाता में, असाता का साता में, आयुष्य कर्म में यह नियम लागू नहीं होता है । जैसे मोहनीय कर्म का अन्तराय में, नामकर्म का गोत्र कर्म में ऐसे मूल प्रकृतियों में परस्पर संक्रमण नहीं होता । परन्तु उसी कर्म की उत्तर प्रकृतियों के साथ फेरफार हो सकता है ।

प्रश्न- 13. कर्मों की स्थिति को क्या बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है ?

उत्तर- हाँ ! जिस रूप में कर्म को बाँधा उसका समय तथा रस बढ़ भी सकता है । स्थिति और रस का बढ़ना उद्वर्तना कहलाता है तथा स्थिति और रस का घट जाना अपवर्तना करण कहलाता है ।

प्रश्न- 14. कर्मों की उद्वर्तना और अपवर्तना कैसे होती है ?

उत्तर- निकाचित कर्मों के सिवाय (जो कि बहुत थोड़े होते हैं) कर्मों को पुरुषार्थ द्वारा फेरफार किया जा सकता है। ट्रांसफर न हो तो 100 वर्ष की स्थिति को 10 वर्ष की कर सकते हैं । पाप पुरुषार्थ से 10

वर्ष की स्थिति को 100 वर्ष की भी कर सकते हैं। इसी प्रकार तीन पावर के रस को दो पावर का भी कर सकते हैं। अतः कर्म का सिद्धान्त यह बताता है कि बाँधे हुए सभी कर्म भोगने ही पड़ते हैं यह आवश्यक नहीं है, केवल निकाचित कर्मों के लिए ही भोगने का नियम है।

प्रश्न- 15. गीता में वाक्य आता है- नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि । इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर- करोड़ों वर्षों तक पुरुषार्थ करने पर भी भोगे बिना कर्म क्षीण नहीं होते। यह वाक्य निकाचित कर्मों को ही लक्ष्य में रखकर लिखा गया है।

प्रश्न- 16. कर्म क्या है ? क्या जड़ है ? क्या जड़ का भी प्रभाव होता है ?

उत्तर- कर्म तो जड़ है, चेतन नहीं है। जड़ होने पर भी उसकी ताकत अजब-गजब की है। जड़ की शक्ति का कमाल तो देखें। शरीर में कब्ज हो जाय तो एक गोली जुलाब की ले लो तो पेट साफ हो जाता है। गोली क्या है ? वह जड़ है। अफीम-विष क्या है ? खाते ही लीला समाप्त हो जाती है।

कोई भी व्यक्ति आपको कुत्ता कह दे तो- कितना बुरा लगता है ? तो शब्द क्या है ? शब्द भी जड़ है। कोई कहे तुमने तो सारा जीवन सेवा में ही व्यतीत कर दिया, ऐसा सुनते ही कितने खुश हो जाते हैं ? शब्दों का कैसा चमत्कार ! चश्मा क्या है ? जड़ ही है ना ! आँखों से हटा लो तो अन्धे जैसे हो जाते हैं। दिखाई ही नहीं देता। जड़ में भी अपार शक्ति है।

प्रश्न- 17. आत्मा की शक्ति कितनी है ?

उत्तर- जड़ से भी अनन्त शक्ति आत्मा की है। मान लीजिये, चश्मा भी है,

आँख भी है परन्तु आत्मा ही न हो तो चश्मा क्या करेगा ? ताकत तो चेतन की है । आम है, उसका स्वाद लेने वाला शरीर नहीं परन्तु आत्मा है ।

मान लीजिये, रेलगाड़ी की पटरी पर एक कीड़ी चल रही है और एक पत्थर भी पड़ा है, उसकी आवाज सुन कीड़ी तुरन्त नीचे उतर जायेगी और पत्थर वहीं का वहीं रहेगा । सभी प्रकार की शक्तियों का स्वामी आत्मा है ।

प्रश्न- 18. कर्मण वर्गणा - कर्म कब बनती है ?

उत्तर- शास्त्रकार भगवन्तों ने आठ प्रकार की वर्गणा कही है । उसमें एक वर्गणा कर्मण वर्गणा भी है । यह कर्मण वर्गणा 14 राजलोक में ठसोठस भरी हुई है । जब तक कर्मण वर्गणा आत्मा के साथ नहीं जुड़ती तब तक वह कर्मण वर्गणा कहलाती है और जब कर्मण वर्गणा के रजकण आत्मा के साथ चिपक जाते हैं तब वह कर्म कहलाते हैं । वही कर्म आत्मा को सुखी-दुखी, बलवान-निर्बल, बुद्धिमान-मूर्ख, रूपवान-कदरूप बनाने का कार्य करते हैं ।

प्रश्न- 19. आत्मा कर्मों को क्यों ग्रहण करती है ?

उत्तर- अपनी आत्मा में जो राग-द्वेष के स्पन्द हैं वह चुम्बकीय शक्ति है । कर्मण रजकण वह लोहे के समान है । जब तक अपनी आत्मा में राग-द्वेष आदि परिणाम जागते रहेंगे तब तक आत्मा में चुम्बकीय शक्ति रहेगी । आत्मा लोह-चुम्बक समान बन गई है । जिस कारण सतत कर्मण रजकणों को खींच-खींचकर अपने ऊपर चिपकाने का कार्य कर रही है । सभी संसारी जीवों में सदैव राग-द्वेष के परिणाम उठते ही रहते हैं, जिस कारण प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक समय कर्मण रजकण ग्रहण कर कर्मरूप बना रही है । जब राग-द्वेष

समाप्त होंगे उस दिन चुम्बकीय शक्ति समाप्त हो जाने से कार्मण रजकण नहीं चोंटेंगे । कर्म रहित होकर आत्मा भगवान स्वरूप बन जायेगी । जन्म-मरण रहित हो जायेगी ।

प्रश्न- 20. आत्मा कार्मण वर्गणा कौन-सी ग्रहण करती है ?

उत्तर- आत्मा लोह-चुम्बक समान है । जैसे लोह-चुम्बक अपने पास के ही क्षेत्र में रहे लोहे के कणों को ग्रहण कर अपनी ओर खींचता है, अपने ऊपर चिपका लेता है उसी प्रकार जो कार्मण वर्गणा अपने आस-पास शरीर के पास रहती है उन्हीं कार्मण वर्गणा को आत्मा ग्रहण करती है । जब वह कार्मण वर्गणा आत्मा के साथ चिपक जाती है तब वह कर्म कहलाती है ।

प्रश्न- 21. आत्मा में कर्मों को ग्रहण रूप चुम्बकीय शक्ति कब पैदा होती है ?

उत्तर- प्रत्येक जीवात्मा प्रत्येक समय कोई-ना-कोई प्रवृत्ति करता ही रहता है । कभी मन में कुछ-न-कुछ विचार करता है तो कभी वचन से कुछ-न-कुछ बोलता है, कभी काया से कोई-न-कोई प्रवृत्ति करता ही रहता है । मन-वचन-काया की शुभाशुभ प्रवृत्तियाँ आत्मा में रही राग-द्वेष की परिणति के साथ जब मिल जाती है तब यह (प्रवृत्ति + परिणति) दोनों चुम्बकीय शक्ति रूप बन कर कार्मण वर्गणा के समूह को खींच लेती है तभी कार्मण वर्गणा कर्म रूप बन जाती है ।

प्रश्न-22. कर्म अपना क्या प्रभाव दिखाते हैं ?

उत्तर- आत्मा में जो अनन्तज्ञान का प्रकाश है, अपूर्व दर्शन शक्ति है, अनहद सुख की अनुभूति है, अतुल पराक्रम है वह सब दब चुका है, इन कर्मों के कारण ही । कर्मों के कारण ही जीव सुखी या दुखी, क्रोधी या क्रूर तथा हिंसक बन जाता है । कर्म के कारण ही अनादिकाल से अपनी आत्मा दुःखमय, पापमय संसार में परिभ्रमण

कर रही है । अब यह मानवभव कर्मों को समाप्त करने की साधना के लिए ही मिला है ।

प्रश्न- 23. कौन-कौन सी वस्तुएँ अनादि हैं ?

उत्तर- तीन वस्तुएँ अनादि हैं ।

1. जीव, 2. जगत, 3. जीव और कर्म का संयोग ।

प्रश्न- 24. अनादि किसे कहते हैं ?

जिसकी आदि अर्थात् प्रारम्भ होता है उसे आदि कहते हैं परन्तु जिसकी शुरुआत ही न हो उसे अनादि कहते हैं ।

प्रश्न- 25. जीव-जगत तथा कर्म संयोग अनादि के साथ-साथ क्या अनन्त भी है?

उत्तर- जीव-जगत और कर्म संयोग अनादिकालीन होने पर भी इनमें सतत परिवर्तन होता रहता है, जीव स्वयं कभी देव-मनुष्य-तिर्यञ्च-नरक आदि गतियों में जाता है । जगत यानि संसार में भी अनेक प्रकार का परिवर्तन होता रहता है तो भी जीव का कभी भी नाश नहीं होता । जगत का भी कभी नाश नहीं होता । जीव और जगत जैसे अनादि हैं वैसे अनन्त भी हैं । परन्तु जीव और कर्म का संयोग अनादि होने पर भी अनन्त नहीं है, अन्त आ सकता है । जब जीव मोक्ष में जायेगा तब ।

प्रश्न- 26. जीव और कर्म संयोग का अन्त कैसे आ सकता है ?

उत्तर- जब जीव अपने जीवन में राग-द्वेष को समाप्त करने की साधना करेगा तब आत्मा के ऊपर से कर्म अलग हो सकते हैं । कर्म अलग होते ही आत्मा मोक्ष में पहुँच जाएगी । उस आत्मा का परमात्म स्वरूप प्रकट हो जाएगा । संयोग का अन्त हो जायेगा ।

प्रश्न- 27. आत्मा में कर्म किस कारण आते हैं ?

उत्तर- आत्मा में कर्म बाँधने के बाह्य कारण अनेक प्रकार के होने पर भी आन्तरिक कारण मुख्य रूप से पाँच हैं ।

1. मिथ्यात्व- विपरीत श्रद्धा । तत्त्व ज्ञान का अभाव । अधर्म में धर्म बुद्धि का होना और धर्म में अधर्म बुद्धि का होना मिथ्यात्व है ।
2. अविरति- त्याग-पच्चक्खाण का अभाव । हिंसादि पापों से न हटना तथा नियम पच्चक्खाण आदि न करना अविरति कहलाता है ।
3. प्रमाद- आलस, आत्मा का विस्मरण, विवेक शून्य होना प्रमाद कहलाता है ।
4. कषाय- कष यानि संसार । आय= लाभ जिससे संसार की वृद्धि हो उसे कषाय कहते हैं ।
5. योग- मन-वचन-काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं । इन प्रमुख पाँच कारणों से आत्मा में पल-पल कर्मों का आगमन हो रहा है ।

प्रश्न- 28. कर्म आत्मा को ही क्यों लगते हैं ? शरीर को क्यों नहीं ?

उत्तर- जिस प्रकार लोग देव-गुरु को ही पंचांग प्रणिपात करते हैं सामान्य लोगों को नहीं ? क्योंकि सामान्य व्यक्ति में वह योग्यता नहीं होती जो देव-गुरु में होती है ।

जिस प्रकार लोह-चुम्बक में ही शक्ति होती है कि वह लोह के कणों को अपनी ओर खींचता है ठीक इसी प्रकार आत्मा में ही योग्यता और शक्ति है कि वह कर्मण वर्गणा को खींचती है । अतः कर्म आत्मा को ही लगते हैं शरीर को नहीं ।

प्रश्न- 29. समकित दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की क्रिया में क्या अन्तर होता है ?

उत्तर- मान लीजिए, किसी कारण झूठ बोलना पड़े या हिंसा करनी पड़ी तो दोनों की क्रिया में अन्तर होगा। सम्यग्दृष्टि जीव को हिंसा या झूठ बोलना ही पड़े तो वह क्रिया रस बिना, दुःखी मन से मुझे करना पड़ रहा है यह पाप है ऐसा समझकर करता है। मिथ्यादृष्टि जीव उसे हँसते हुए जानबूझ कर तथा पाप को समझे बिना करेगा जिससे उसके कर्म गाढ़ बंधेंगे।

मिथ्यादृष्टि जीव को कभी पाप के उदय से दुःख आ जाए तो घबरा जाएगा। यह दुःख कहाँ से आ गया। हाय-हाय करके भोगेगा। सम्यग्दृष्टि जीव पापोदय आने पर घबराता नहीं, कर्मों को शान्ति से भोगता है। वह समझता है कि मैंने पूर्वजन्म में किसी को दुःखी किया है इसीलिए दुःख आया है इस कारण शान्ति से भोगता है।

सम्यग्दृष्टि को आर्त्तध्यान बहुत कम होता है चित्त में शान्ति और समभाव रहता है। जबकि मिथ्यादृष्टि को आर्त्तध्यान बहुत होता है। चित्त को शान्ति नहीं होती तथा राग-द्वेष की प्रबलता होती है। नए कर्मों को गाढ़ बांधता है।

प्रश्न- 30. बन्धन और मुक्ति का कारण क्या है ?

उत्तर- संसार में बन्धन और मुक्ति का कारण मन है।

प्रश्न- 31. एक ही मन दोनों परिणाम कैसे लाता है ?

उत्तर- मन एक ही है परन्तु कार्य दो करता है जैसे कि ताले की चाबी एक ही होती है उसी चाबी से ताला खोला भी जा सकता है और बन्द भी किया जा सकता है। वैसे ही मन की गति है। जब मन पाप की क्रिया में जुड़ता है तो कर्म बन्ध का कारण बनता है तथा जब

मन धर्म की शुद्धक्रिया में जुड़ता है तो मुक्ति का कारण बनता है । अतः सदैव श्रद्धापूर्वक, भावोल्लास से आराधना करनी चाहिए जिससे मन द्वारा शुभ कर्मों का ही बन्ध हो ।

प्रश्न- 32. जब आत्मा में कामर्ण वर्गणा प्रवेश करती है तब वह कर्म रूप बनती है, तब कर्म क्या-क्या कार्य करते हैं ?

उत्तर- आत्मा के साथ लगी कामर्ण वर्गणा कर्म रूप बनने के पश्चात् कर्मों में चार वस्तुएँ निश्चित होती हैं ।

1. स्वभाव (Nature)- निश्चित होता है जिसे प्रकृति बन्ध कहा जाता है । किस कर्म का क्या स्वभाव होगा ? ज्ञान गुण को ढकेगा या सुख- दुःख देगा आदि ।

2. स्थिति (Time)- वह बन्धा हुआ कर्म कितने समय तक आत्मा के साथ रहेगा । यह भी निश्चित उसी समय हो जाता है ।

3. रस (Power)- वह कर्म कितना बलवान होगा । कितनी तीव्रता दिखाएगा ।

4. प्रदेश (Bulk)- क्वान्टिटी अर्थात् संख्या भी निश्चित हो जाती है ।

प्रश्न- 33. इन चारों को समझने के लिए कोई दृष्टान्त दीजिए ।

उत्तर- शास्त्रों में इन चारों भेदों को समझने के लिए लड्डू के दृष्टान्त से समझाते हैं ।

जैसे किसी बहन ने लड्डू बनाया तो उसे चार बातें पूछ सकते हैं ।

1. तुमने जो सूँठ डालकर लड्डू बनाये हैं उसका स्वभाव क्या है ?



2. वह लड्डू कितने समय (दिनों) तक चलेगा ।

3. उस लड्डू का स्वाद-रस कैसा है ?

4. उस लड्डू का प्रमाण (भार) कितना होगा ?

प्रश्न- 34. इस लड्डू के दृष्टान्त से कर्मों के विषय में समझाएँ ।

उत्तर-

1. सूँठ डालकर बनाए लड्डू का स्वभाव पेट में रही गैस को दूर करता है ।

2. वह लड्डू 15 या 20 दिन टिकेगा ।

3. उस का स्वाद-रस तीखा होगा ।

4. उसका वजन 100 ग्राम या 200 ग्राम होगा ।

इसी प्रकार कर्मों के विषय में भी यह निश्चित होगा ।

1. वह बंधा हुआ कर्म किस-किस आवरण को रोकेगा ।

2. वह आत्मा के साथ कितने कोटा कोटि सागरोपम या कितने वर्ष तक रहेगा ।

3. उस कर्म का फल कितनी तीव्रता या मन्दता से मिलेगा ।

4. उस कर्म के प्रदेश कितने होंगे ।

प्रश्न- 35. कर्मों में कितने प्रकार के स्वभाव निश्चित होते हैं नाम बताएँ ?

उत्तर-

कर्म का बन्ध होते ही मुख्य रूप से 8 प्रकार का स्वभाव निश्चित होता है । इसीलिए कर्म आठ प्रकार के कहे जाते हैं ।

आठ कर्मों के नाम- 1. ज्ञानावरणीय कर्म, 2. दर्शनावरणीय कर्म, 3. वेदनीय कर्म, 4. मोहनीय कर्म, 5. आयुष्य कर्म, 6. नाम कर्म, 7. गोत्र कर्म, 8. अन्तराय कर्म ।

प्रश्न- 36. आत्मा अनन्त गुणवान्-ज्ञानवान् होते हुए भी ज्ञान प्रकट क्यों नहीं होता ?

उत्तर- आत्मा सूर्य समान है । जैसे सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जगत को प्रकाशित करता है वैसे ही आत्मा भी अपने गुणों द्वारा अपने जीवन को प्रकाशित बनाती है ।

जैसे सूर्य के आसपास चारों ओर बादलों का आवरण आ जाए, सूर्य बादलों से ढक जाए तो सूर्य का प्रकाश होते हुए भी वह प्रकाशमान नहीं बन पाता । ठीक इसी प्रकार सूर्य समान आत्मा के चारों ओर कर्म रूपी बादल छा जाने से आत्मा के गुण ढक जाने पर आत्मा का प्रकाश कम हो गया । गुणों से विपरीत दोषों से जीवन में अन्धकार व्याप्त हो गया । अतः आवश्यकता है कर्मों को हटाकर आत्मा में रहे ज्ञान गुण प्रगट करने की ।

प्रश्न- 37. ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- ज्ञान= समझ-ज्ञानकारी, जिस के बल से दुनिया की कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं हो सकती, आत्मा में अनन्त ज्ञान है । उसको आवरण यानि ढकने वाला कर्म ज्ञानावरणीय कर्म कहा जाता है । ज्ञानावरणीय कर्म रूपी बादल आत्मा रूपी सूर्य के ऊपर छा जाने से आत्मा अज्ञानी-जड़-मूर्ख बना है वह ज्ञानावरणीय कर्म के कारण ही । चाहे कितनी भी मेहनत क्यों न करें फिर भी याद नहीं रहता कई बार याद की हुई गाथाएँ भी इस कर्म के प्रभाव से भूल जाती हैं । ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से समझन शक्ति नहीं खिलती है ।

प्रश्न- 38. ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध से बचने के उपाय बताओ ?

उत्तर- निम्नलिखित बातों में अगर सावधानी रखेंगे तो अवश्य ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध नहीं होगा ।

केवल धार्मिक पुस्तकों को या धार्मिक पत्रिकाओं को ही ज्ञान न समझें परन्तु जिसमें एक अक्षर भी लिखा हो ऐसी व्यवहारिक पुस्तकें—समाचार पत्र, कॉपी—पेन आदि ज्ञान के साधनों को भी ज्ञान रूप ही समझें । उनकी भी आशातना—विराधना न करें ।

1. पुस्तक, सादा कागज, कॉपी, पेन, पेंसिल आदि को जमीन पर न रखें ।

2. अक्षर वाली कोई भी वस्तु साथ में लेकर खाएँ—पीएँ नहीं । बाथरूम या लैट्रिन में न लेकर जाएँ । अक्षर वाले कपड़े खरीदें नहीं । पहने भी नहीं । बूट—चप्पल पर रहे अक्षरों को दूर कर दें । रुपये, सिक्के को दूर करके खाएँ—पीएँ, बाथरूम आदि में जाएँ ।

3. कागज, पुस्तकादि पर पाँव न रखें ।

4. ज्ञानी तथा ज्ञान के साधनों को थूँक न लगाएँ । किताब आदि पढ़ते समय मुख के आगे रूमाल या हाथ रखें ताकि पुस्तक आदि पर थूँक न जाए । कवर को बन्द करते समय पानी या गून्द का प्रयोग करें । चिट्ठी पर टिकिट लगाते समय भी थूँक न लगाएँ ।

5. पुस्तक के पेज को जल्दी से पलटते हुए तथा रुपये के नोटों को भी जल्दी से गिनते हुए हाथ पर थूँक न लगाकर पानी का उपयोग करें ।

6. पेन—पेंसिल को मुख में न डालें ।

7. एम.सी. के समय बहनों को स्कूल—कॉलेज की पुस्तकों को नहीं पढ़ना चाहिए । अखबार भी नहीं पढ़ना चाहिए ।

8. अभ्यास कर रहे व्यक्ति को अन्तराय नहीं करना चाहिए । बल्कि सहायता करनी चाहिए ।

9. ज्ञानी की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए बल्कि उनके प्रति आदर-बहुमान धारण करना चाहिए ।

10. पूर्व पुण्योदय से प्राप्त बुद्धि का सदुपयोग करें । कभी भी कुतर्क न करें । ज्ञान का दुरुपयोग न करें ।

11. ज्ञान और ज्ञानी की तथा ज्ञान के साधनों की उपासना-भक्ति करनी चाहिए । उसके लिए ज्ञानपंचमी की आराधना शुरू करनी चाहिए ।

प्रश्न- 39. ज्ञान पंचमी की आराधना कैसे करनी चाहिए ?

उत्तर- (1) ज्ञान पंचमी की आराधना कार्तिक सुदि पंचमी से प्रारम्भ करनी चाहिए ।

(2) 5 वर्ष 5 मास तक प्रत्येक सुदि पंचमी को उपवास करना होगा ।

(3) ऊँचे आसन पर ज्ञान की पुस्तकों को तथा परमात्मा को स्थापन कर उसके सामने सुगन्धीद्वार धूप करना । 5 दीपक प्रगटाना 5 वर्ण के धान्य रखना, पाँच प्रकार के फल एवं मिठाई रखना । 51 साथिया करना । वासक्षेप से ज्ञान की पूजा करना । 51 खमासमणा देना । 51 लोगस्स का काउस्सग्ग करना । ज्ञान की चैत्यवन्दन करना । गुरुवन्दन कर गुरु के पास व्याख्यान सुनना, दो समय प्रतिक्रमण करना । तीन बार देववन्दन करना ।

'ॐ ह्रीं नमो नाणस्स' की 20 माला गिनना ।

5 वर्ष 5 मास में यह तप पूर्ण होता है ।

तप के पश्चात् यथाशक्ति पाँच ज्ञान का उद्यापन भी करना ।

प्रश्न- 40. क्या प्रतिमास यह विधि करनी चाहिए ?

उत्तर— प्रतिमास के लिए शक्ति हो तो 51-51 लोगस्स एवं खमासमणे-साथिये करने चाहिए, माला तो सदैव बीस ही होती है । गुरु का योग हो तो व्याख्यान अवश्य सुनें । परमात्म-पूजा, गुरुवन्दन-सामायिक आदि करने ही होते हैं । देववन्दन तीन बार, दो समय प्रतिक्रमण भी आवश्यक है । शक्ति हो तो उपवास, नहीं तो आयम्बिल, बिल्कुल भी शक्ति न हो तो एकासना करें । उत्कृष्ट रूप से तो उपवास ही करना चाहिए । 51-51 करने की प्रतिमास अनुकूलता-शक्ति न हो तो पाँच-पाँच करके भी पंचमी की आराधना करनी चाहिए । प्रतिवर्ष तो उत्कृष्ट रूप से करनी ही होती है चाहे पाँच वर्ष 5 मास क्यों न पूर्ण हो गए हों ।

प्रश्न- 41. ज्ञान पंचमी की आराधना कर किसने ज्ञानावरणीय कर्म का नाश किया ?

उत्तर— ज्ञान पंचमी की भावपूर्णक एवं उल्लास सहित आराधना कर वरदत्त तथा गुणमंजरी ने उसी भव में ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम कर कोढ़ रोग से भी मुक्त हुए तथा गूँगापन-बहरापन तथा मूढ़ता को दूर कर सम्यग्ज्ञान को पाया था । अतः जैन कुल में पैदा होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह बालक हो, युवा-प्रौढ़ हो या वृद्ध सभी को ज्ञान पंचमी की आराधना कर मानव जीवन को सफल करना चाहिए ।

प्रश्न- 42. ज्ञानावरणीय कर्म किसके समान है ?

उत्तर— ज्ञानावरणीय कर्म आँखों पर बन्धी हुई पट्टी समान है । जैसे किसी मानव के पास आँखें हो अगर उसकी आँखों पर पट्टी बान्ध दी जाए तो क्या वह देख सकता है ? नहीं ना !

ठीक इसी प्रकार आत्मा के अन्दर अनन्त ज्ञान होने पर भी वह ज्ञानावरणीय रूपी पट्टी आ जाने से अपनी आत्मा दिवार के

पीछे रही हुई वस्तु को भी नहीं देख सकता । आँखों पर बन्धी पट्टी के कारण आँख के सामने रही वस्तु को भी देख नहीं सकते । ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा में रही ज्ञान शक्ति को रोकता है ।

प्रश्न- 43. ज्ञानावरणीय कर्म के कितने भेद हैं ? नाम बताएँ ?

उत्तर- ज्ञानावरणीय कर्म के 5 भेद हैं ।

1. मति ज्ञानावरणीय कर्म ।
2. श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म ।
3. अवधि ज्ञानावरणीय कर्म ।
4. मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म ।
5. केवल ज्ञानावरणीय कर्म ।

प्रश्न- 44. मति ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- मति = बुद्धि-संज्ञा

पाँच इन्द्रियाँ तथा मन की सहायता से जो अपने को अलग-अलग प्रकार का ज्ञान होता है वह मतिज्ञान कहलाता है । मतिज्ञान के अलग-अलग अनेक प्रकार हैं । इस मतिज्ञान को रोकने का कार्य जो कर्म करता है वह मति ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है ।

प्रश्न- 45. जातिस्मरण ज्ञान किसे कहते हैं तथा किसका भेद है ?

उत्तर- जातिस्मरण यानि अचानक किसी बात को सुनते ही मूर्छित हो जाना और होश में आने पर अपना पूर्वभव याद आना । शास्त्रीय परिभाषा में उसे जातिस्मरण ज्ञान कहते हैं । यह जातिस्मरण ज्ञान भी मतिज्ञान का एक प्रकार है । अमुक प्रकार के मति ज्ञानावरणीय

कर्म का क्षयोपशम हो तो जातिस्मरण ज्ञान अपने को भी हो सकता है जैसे सुदर्शना राजकुमारी ।

प्रश्न- 46. मतिज्ञान के मुख्य भेद कितने हैं ?

उत्तर- मतिज्ञान के मुख्य दो भेद हैं ।

1. अश्रुत निश्चित मतिज्ञान

2. श्रुत निश्चित मतिज्ञान

अश्रुत निश्चित- मति ज्ञानावरणीय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशय से स्वाभाविक रूप से जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसे अश्रुत निश्चित मतिज्ञान कहते हैं । वह चार प्रकार का है ।

प्रश्न- 47. अश्रुत निश्चित मतिज्ञान के चार प्रकार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर-

1. औत्पात्तिकी बुद्धि- पहले कभी नहीं देखा, न ही सुना, न ही विचारा हो परन्तु पूछे गए प्रश्न को सिद्ध करने के लिए अचानक ही जो बुद्धि उत्पन्न हो उसे औत्पात्तिकी बुद्धि कहते हैं । जैसे अभयकुमार, बीरबल, रोहक आदि की बुद्धि ।

2. वैनयिकी बुद्धि- गुरु का विनय करने से धर्म-अर्थ और काम शास्त्र के रहस्यों का ज्ञान कराने वाली जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी बुद्धि कही जाती है । जैसे पाँव के दर्शन मात्र से हथिनी वगैरा के सभी लक्षणों-कार्यों को जानने वाले शिष्य की बुद्धि ।

3. कार्मिकी बुद्धि- बारम्बार कार्य करते-करते उत्पन्न होने वाली बुद्धि कार्मिक बुद्धि कही जाती है जैसे रोटी बनाते-बनाते गोल हो जाना-आदि ।

4. पारिणामिकी बुद्धि- वय-आयु की परिपक्वता से वृद्ध व्यक्तियों

को अनेक प्रकार के अनुभव से जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसे पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं । जैसे वज्रस्वामीजी की ।

प्रश्न- 48. श्रुत निश्चित मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर- किसी भी निमित्त को पाकर जो ज्ञान होता है उसे श्रुत निश्चित कहते हैं ।

प्रश्न- 49. मतिज्ञान के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर- मतिज्ञान के मुख्य रूप से 28 भेद हैं । अगर इन सभी भेदों को सूक्ष्म रूप से बहु-अबहु, बहुविध-अबहुविध आदि 12 भेदों से गुणाकार किया जाए तो 336 भेद होते हैं तथा चार प्रकार की बुद्धि मिलाने से 340 भेद बनते हैं ।

प्रश्न- 50. ज्ञान का दूसरा भेद कौन-सा ? वर्णन करें ?

उत्तर- ज्ञान के दूसरे भेद का नाम है श्रुतज्ञान इसके मुख्य रूप से 14 तथा 20 भेद हैं ।

प्रश्न- 51. श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर- 1. पाँच इन्द्रियाँ तथा मन की सहायता से शब्दों को सुनने-पढ़ने-लिखने से जो अर्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

2. शास्त्रों का अभ्यास करने से, प्राप्त हुए ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं ।

3. श्रुतज्ञान मतिपूर्वक ही होता है ।

प्रश्न- 52. श्रुतज्ञान की विशेषताएँ बताएँ ।

उत्तर- पाँचों ज्ञान में श्रुतज्ञान प्रमुख माना गया है । यह दीपक के समान



स्व और पर को प्रकाशित करने वाला है । श्रुतज्ञान के बल से ही गणधर भगवन्त द्वादशांगी की रचना करते हैं ।

1. श्रुतज्ञानी अरिहन्त परमात्मा की तरह ही व्याख्या करते हैं । जैसे—कालिकाचार्यजी – आर्यरक्षितसूरिजी ।

2. पाँचों ज्ञान में से श्रुतज्ञान ही बोलने वाला है ।

प्रश्न— 53. गणधर भगवान जो द्वादशांगी की रचना करते हैं, वह 12 अंग कौन-कौन से हैं ?

उत्तर— 1. आचारांग सूत्र, 2. सूयगडांग सूत्र, 3. ठाणांग सूत्र, 4. समवायांग सूत्र, 5. विवाहपन्नति (भगवती) सूत्र, 6. ज्ञाता धर्मकथा सूत्र, 7. उपासगदशा सूत्र, 8. अंतकृतदशा सूत्र, 9. अनुत्तरोपपातिक सूत्र, 10. प्रश्न-व्याकरण सूत्र, 11. विपाक सूत्र, 12. दृष्टिवाद सूत्र ।

प्रश्न— 54. क्या यह 12 अंग अपने पास उपलब्ध हैं ?

उत्तर— अभी अपने पास 11 अंग उपलब्ध हैं ।

प्रश्न— 55. 12वें अंग का लोप कैसे हो गया ?

उत्तर— पूर्वकाल में शास्त्र लिखे नहीं जाते थे । सभी साधु बारम्बार पुनरावर्तन करके याद रखते थे । शिष्यों को भी वाचना के द्वारा मौखिक पढ़ाया जाता था इसी प्रकार से श्रुतज्ञान आगे-आगे चलता था ।

एक बार ऐसी घटना घटित हुई कि 12 वर्षीय दुष्काल पड़ने से, शरीर को पोषण न मिलने से, स्मरण शक्ति-धारणा शक्ति कम हो जाने से साधु अनेक सूत्र भूलने लगे । सभी साधु दुष्काल पश्चात् एक स्थान पर एकत्रित हुए । जिसे जितना याद था उतना बोलने लगे । एक की भूल होती तो दूसरा बताता । इस प्रकार से श्रुतज्ञान

जितना एकत्रित हो सका उतना किया । इस प्रकार करने से 11 अंग एकत्रित हुए परन्तु बारहवाँ दृष्टिवाद किसी को याद नहीं रहा ।

प्रश्न- 56. चौदह पूर्व किस अंग के भेद हैं ?

उत्तर- अन्तिम बारहवें अंग दृष्टिवाद में चौदह पूर्व का समावेश होता है ।

प्रश्न- 57. चौदहपूर्वी कौन-कौन से हुए ?

उत्तर- जम्बूस्वामी, प्रभवस्वामी, स्थूलिभद्रजी आदि तक महापुरुष चौदहपूर्व ज्ञान के स्वामी थे, यह श्रुतकेवली कहे जाते हैं ।

प्रश्न- 58. उपांग किसे कहते हैं ?

उत्तर- दृष्टिवाद के सिवाय बाकी 11 अंगों के साथ सम्बन्ध रखने वाले जो अन्य ग्रन्थ रचे गये उन्हें उपांग कहा जाता है ।

प्रश्न- 59. 11 उपांग कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- 1. औपपातिक सूत्र, 2. रायपसेणीय सूत्र, 3. जीवाभिगम सूत्र, 4. पन्नवणा सूत्र, 5. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, 6. चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र, 7. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र, 8. निरयावली सूत्र, 9. कल्पवतंसिका सूत्र, 10. पुष्पचूलिका सूत्र, 11. वह्निदशा सूत्र ।

प्रश्न- 60. 11 अंग सिवाय 10 प्रकीर्ण सूत्र हैं वह कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- 10 प्रकीर्ण सूत्रों को 10 पयन्ना भी कहते हैं ।

1. चउसरण पयन्ना, 2. आऊर पच्चक्खाण, 3. महा पच्चक्खाण, 4. भत्तपरिज्ञा, 5. तंदुलवेयालीय, 6. गणिविज्झाय, 7. चंदा विज्झाय, 8. दैवेन्द्रस्तव, 9. मरणसमाधि, 10. संथारापयन्ना ।

प्रश्न- 61. छेद सूत्र किसे कहते हैं वह कितने हैं ?

उत्तर— इसमें साधु-साध्वीजी म. के जीवन के आचारों का सुन्दर वर्णन है । व्रतों का सेवन करते हुए लगे हुए अतिचारों का प्रायश्चित्त बताया है । इन ग्रन्थों को छेद सूत्र कहा जाता है । यह गुप्त सूत्र है । सभी साधु म. इस ग्रन्थ का पठन नहीं कर सकते । गीतार्थ गुरु जिसमें विशिष्ट पात्रता देखते हैं उन्हें ही इस सूत्र का वांचन कराते हैं । पात्रता बिना यह ग्रन्थ को पढ़ने वाले को पार बिना का नुकसान होने की पूरी शक्यता है । गुप्त होते हुए अत्यन्त महत्व के यह छह छेदसूत्र हैं ।

प्रश्न- 62. छह छेद सूत्र के नाम बताएँ ।

उत्तर— 1. दशा श्रुतस्कन्ध सूत्र, 2. बृहत्कल्प सूत्र, 3. व्यवहार सूत्र, 4. जीतकल्प सूत्र, 5. निशीथ सूत्र, 6. महानिशीथ सूत्र ।

प्रश्न- 63. पाँचवें आरे के अन्त में कौन से आगम रहेंगे ?

उत्तर— पाँचवें आरे के अन्त में निम्नलिखित चार आगम रहेंगे । वह मूलसूत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं । पाँचवाँ आरा जब पूर्ण होने वाला होगा तब अन्तिम आचार्य दुष्पसहसूरिजी महाराज होने वाले हैं वह भी इन चार सूत्रों के ज्ञाता होंगे ।

1. आवश्यक सूत्र, 2. उत्तराध्ययन सूत्र, 3. दशवैकालिक सूत्र, 4. पिंडनिर्युक्ति सूत्र ।

प्रश्न- 64. इन चार सूत्रों में किस-किस का वर्णन है ?

उत्तर— 1. आवश्यक सूत्र में करने योग्य क्रियाओं का वर्णन है ।  
2. उत्तराध्ययन सूत्र में परमपिता भगवान महावीरस्वामीजी ने अन्तिम सोलह प्रहर सतत जो देशना दी वह उत्तराध्ययन में संग्रहीत है ।  
3. दशवैकालिक सूत्र में साधु जीवन के आचारों का विवरण है ।

दीक्षा पश्चात् तुरन्त सर्वप्रथम यह ग्रन्थ पढ़ाया जाता है । इसके दस अध्ययन हैं । अर्थ सहित चार अध्ययन पढ़ने के पश्चात् बड़ी दीक्षा हो सकती है । अर्थ सहित पाँचवाँ अध्ययन पढ़ने के बाद गौचरी के योग्य बनता है । अर्थ सहित सातवाँ अध्ययन पढ़ने वाले को बोलने की, बातचीत करने की योग्यता प्राप्त होती है ।

4. पिंड निर्युक्ति— इस ग्रन्थ में गौचरी वोहस्ते समय लगने वाले 42 दोषों आदि का वर्णन है ।

प्रश्न— 65. चूलिका सूत्र किसे कहते हैं ? वह कितने हैं ?

उत्तर— चूलिका अर्थात् परिशिष्ट अथवा पूर्ति कहते हैं । वह दो सूत्र हैं ।

1. नन्दी सूत्र, 2. अनुयोगद्वार सूत्र ।

नन्दी सूत्र में पाँचज्ञान आदि शास्त्रों का वर्णन है ।

अनुयोग द्वार में आगम—शास्त्रों को पढ़ने की परिभाषा समझाई है ।

प्रश्न— 66. कुल आगम कितने हुए ?

उत्तर— आगम 45 हैं ।

11 अंग + 12 उपांग + 10 पयन्ना + 6 छेद सूत्र + 4 मूलसूत्र + 2 चूलिका = 45 आगम ।

वर्तमानकाल में 45 आगम विद्यमान हैं ।

प्रश्न— 67. पंचांगी किसे कहते हैं ?

उत्तर— अपने पंचांगी रूप 45 आगम मानते हैं ।

1. मूल सूत्र

2. उस मूलसूत्र पर 'निर्युक्ति रचने' में आती है उसका विवरण प्राकृत भाषा में किया गया है ।

3. भाष्य— इस में निर्युक्ति पर भाष्य रचा गया इसका भी प्राकृत भाषा में ही विस्तार किया गया ।

4. चूर्णी— इसका संस्कृत भाषा में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया ।

5. वृत्ति—टीका— सविस्तार वर्णन किया गया ।

यह पाँचों ही आगम के अंग कहे जाते हैं । इसी कारण अपने आगम पंचांगी के रूप में प्रसिद्ध हैं ।

प्रश्न— 68. श्रुत ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम कैसे होता है ?

उत्तर— ज्ञान—ज्ञानी— ज्ञान के साधन पुस्तकादि को लिखाने से शास्त्रों का अभ्यास करने से, कराने से श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है ।

प्रश्न— 69. श्रुतज्ञान के चौदह भेदों का वर्णन समझाएँ ?

उत्तर— श्रुतज्ञान चौदह प्रकार का है ।

1. अक्षर श्रुत— अ—ब—च आदि वर्णात्मक अक्षर द्रव्य श्रुत कहा जाता है । इन अक्षरों द्वारा पदार्थों का बोध अक्षर श्रुत कहा जाता है ।

2. अनक्षर श्रुत— छींक आने से, ताली बजाने से, श्वास, निःश्वास लेने से आदि क्रिया द्वारा अन्तर के भाव को सामने वाले व्यक्ति को बताना अनक्षर श्रुत कहा जाता है ।

3. संज्ञी श्रुत— संज्ञी जीवों को जो श्रुतज्ञान होता है वह संज्ञी श्रुत कहा जाता है । जिनके पास संज्ञा अर्थात् दीर्घकालिकी तथा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा होती है उसे ही संज्ञी कहा जाता है ।

4. असंज्ञी श्रुत— दीर्घकालिकी संज्ञा बिना के जीवों को असंज्ञी कहा जाता है । असंज्ञी जीवों का जो श्रुतज्ञान वह असंज्ञी श्रुत कहा जाता है । मन वाले जीवों को संज्ञी कहते हैं तथा मन बिना के एकेन्द्रिय—विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को असंज्ञी श्रुत होता है ।

प्रश्न— 70. संज्ञा किसे कहते हैं ? वह कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर— किसी भी वस्तु को अच्छी तरह जानना संज्ञा कहलाता है । संज्ञा तीन प्रकार की होती है ।

1. दीर्घकालिकी संज्ञा— दीर्घ—लम्बी, सोचने की, विचारने की शक्ति को दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं । भूत—भविष्य—वर्तमान काल तीनों काल का विचार करने की शक्ति को दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं ।

2. हेतु वादोपदेशिकी संज्ञा— केवल वर्तमान काल का विचार करने की शक्ति को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते हैं ।

3. दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा— विशिष्ट श्रुतज्ञान के बल से हेय उपादेय की प्रवृत्ति वाले, सम्यग्दृष्टि जीव की विचारणा को दृष्टिवादोपदेशिकी की संज्ञा कहते हैं ।

प्रश्न— 71. श्रुतज्ञान के चार भेदों का वर्णन समझाया, अब आगे के भेदों की व्याख्या करें ?

उत्तर— 5. सम्यक् श्रुत— जो ग्रन्थ सम्यग्दृष्टि के रचे होते हैं उन्हें सम्यक् श्रुत कहते हैं । जैसे— आचारांग आदि ।

6. मिथ्या श्रुत— जो ग्रन्थ मिथ्यादृष्टि द्वारा रचे होते हैं उन्हें मिथ्याश्रुत कहते हैं । मिथ्यात्वी के रचे हुए ग्रन्थ अगर सम्यक्त्वी के हाथ में आए तो मिथ्याश्रुत भी सम्यक् श्रुत बन जाता है । क्योंकि उनकी बुद्धि सम्यग् होने से सत्य को सत्य रूप और असत्य को असत्य

रूप जान सकता है । इस कारण मिथ्याश्रुत सम्यक् रूप में परिणत होता है ।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के रचे ग्रन्थ मिथ्यात्वी के हाथ में आ जाए तो सम्यक् श्रुत मिथ्याश्रुत बन जाएगा क्योंकि बुद्धि मिथ्या होने से।

7. सादि श्रुत- जिस श्रुत ज्ञान की आदि हो उसे सादि श्रुत कहते हैं ।

8. अनादि श्रुत- जिस श्रुतज्ञान की आदि न हो वह अनादि श्रुत कहा जाता है ।

प्रश्न- 72. श्रुतज्ञान के शेष 6 भेदों का वर्णन समझाएँ ?

उत्तर- 9. सपर्यवसित श्रुत- जिस श्रुत ज्ञान का अन्त होता हो उसे सपर्यवसित अर्थात् सान्तश्रुत भी कहते हैं ।

10. अपर्यवसित श्रुत- जिस श्रुत ज्ञान का अन्त न होता हो उसे अपर्यवसित श्रुत या अनन्त श्रुत भी कहते हैं ।

11. गमिक श्रुत- जिस शास्त्र में एक समान पाठ हों उन्हें गमिक श्रुत कहते हैं जैसे दृष्टिवाद नाम का बारहवाँ अंग ।

12. अगमिक श्रुत- जिस शास्त्र में एक समान पाठ न हो उसे अगमिक श्रुत कहते हैं जैसे कालिक श्रुत । आचारंग-सूयगडांग आदि कालिक श्रुत कहे जाते हैं ।

13. अंग प्रविष्ट श्रुत- श्री गौतमस्वामीजी आदि गणधर भगवन्तों द्वारा रची हुई द्वादशांग रूप जो श्रुत है वह अंग कहे जाते हैं । इन अंगों में रहा हुआ जो श्रुत है वह अंग प्रविष्ट श्रुत कहलाता है ।

14. अंगबाह्य श्रुत:- गणधर भगवन्त के पश्चात् श्री भद्रबाहुस्वामीजी आदि स्थविर पुरुषों ने अवसर्पिणी काल में आयु-बल-बुद्धि क्षीण

होते देखकर लोगों के उपकार के लिए अंग प्रविष्ट श्रुत के आधार पर जो-जो ग्रन्थ लिखे वह अंगबाह्य श्रुत कहे जाते हैं । जैसे- दशवैकालिक, आवश्यक निर्युक्ति आदि ।

प्रश्न- 73. अवधि ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- अवधि-मर्यादा, 1. मर्यादायुक्त ज्ञान वह अवधिज्ञान 2. जिस ज्ञान से केवल रूपी पदार्थों का ही बोध हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न:- 74. अवधि ज्ञान के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर- अवधि ज्ञान के मुख्य दो भेद हैं।

1. भवप्रत्ययिक- जो अवधि ज्ञान भव के निमित्त से उत्पन्न होता है वह भवप्रत्ययिक अवधि ज्ञान कहा जाता है ।

जैसे पक्षी को भव मिलते ही आकाश में उड़ने की शक्ति मिल जाती है । वैसे ही सम्यकत्वी जीव को देव का भव मिलते ही अवधि ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । देवता और नारकी को जो अवधि ज्ञान होता है वह भवप्रत्ययिक अवधि ज्ञान कहा जाता है ।

2. गुणप्रत्ययिक- जो अवधि ज्ञान सम्यग्दर्शन आदि गुण के निमित्त से उत्पन्न है वह गुण प्रत्ययिक (गुण निमित्तक) अवधि ज्ञान कहा जाता है ।

तिर्यच और मनुष्य को ज्ञान-दर्शन-चरित्र और तप धर्म की आराधना करते-करते अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से गुण निमित्त अवधि ज्ञान उत्पन्न होता है ।

प्रश्न- 75. गुण निमित्तक अवधि ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर- गुण निमित्तक अवधि ज्ञान 6 प्रकार का है ।



प्रश्न- 76. गुण निमित्तक अवधि ज्ञान के 6 भेद बताएँ ?

उत्तर-

1. आनुगामिक- जो अवधि ज्ञान आँख की तरह जहाँ-जहाँ जाए साथ ही रहे उसे अनुगामी अवधि ज्ञान कहते हैं ।

2. अननुगामिक- दीपक की तरह जहाँ अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ उस स्थल से संख्यात-असंख्यात योजन में रहे रूपी द्रव्यों को देख सकता है । वहाँ से दूसरे स्थान पर जाएगा तो अवधि ज्ञान साथ में नहीं जाएगा ।

3. वर्धमान- जैसे लकड़ियों को आग में डालने से अग्नि की ज्वाला बढ़ जाती है वैसे ही अवधि ज्ञान विशुद्ध-विशुद्धतर अध्यवसाय से बढ़ता जाए उसे वर्धमान अवधि ज्ञान कहते हैं ।

4. हीयमान- जो अवधि ज्ञान अध्यवसायों की अशुद्धि के कारण अथवा तथाविध सामग्री के अभाव से दिन-प्रतिदिन घटता जाए उसे ही हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

5. प्रतिपाती- जिस प्रकार जलता हुआ दीपक जोरदार पवन के कारण एकदम बुझ जाता है वैसे ही जो अवधि ज्ञान निमित्त मिलते ही एकदम चला जाए उसे प्रतिपाती अवधि ज्ञान कहते हैं ।

दृष्टान्त- जैसे कि एक मुनि को काजा निकालते-निकालते शुभ अध्यवसाय से अवधि ज्ञान हुआ । मुनि ने अवधि ज्ञान के बल से देखा कि देवलोक में इन्द्र महाराजों को इन्द्राणि के चरणों में गिर रहा है, इन्द्राणी ने जोर से लात लगाई तो भी उसके पावों को दबा रहा है ऐसा दृश्य देख मुनि को हँसी आ गई । गम्भीरता समाप्त हुई कि अवधिज्ञान तुरन्त चला गया ।

6. अप्रतिपाती- जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात जब तक केवलज्ञान की प्राप्ति न हो, तब तक स्थिर ही रहे, जाए ही नहीं उसे अप्रतिपाती कहते हैं ।

प्रश्न- 77. सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के अवधि ज्ञान में कोई अन्तर है ?

उत्तर- देवलोक में दोनों प्रकार के देवता होते हैं । सम्यग्दृष्टि भी और मिथ्यादृष्टि भी । सम्यग्दृष्टि जीव को मति-श्रुत-अवधि तीनों ज्ञान रूप में होते हैं जबकि मिथ्यादृष्टि को मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान और अवधि अज्ञान-विभंग ज्ञान होता है ।

प्रश्न- 78. मनःपर्यव ज्ञानावरणीय किसे कहते हैं ?

उत्तर- मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से दूसरे व्यक्ति के मन के भावों को नहीं जान सकता क्योंकि मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म के ही कारण है ।

प्रश्न- 79. मनःपर्यवज्ञान के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर- मनःपर्यवज्ञान के दो भेद हैं ।

1. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान- ढाई द्वीप और दो समुद्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के भावों को सामान्य रूप से जानने की आत्म शक्ति को ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञान कहते हैं ।

2. विपुलमति मनःपर्यवज्ञान- ढाई द्वीप और दो समुद्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के विचारों को विशेष रूप से बताने वाली आत्मशक्ति को विपुलमति मनः पर्यव ज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न- 80. मनःपर्यव ज्ञान किसे होता है ?

उत्तर- मनःपर्यव ज्ञान साधु वेश धारण किए बिना प्राप्त नहीं होता । तीर्थंकर भगवन्त भी जब दीक्षा ग्रहण करते हैं तब उनके कन्धे पर देवता देवदूष्य वस्त्र डालते हैं करेमि भंते का पाठ लेते हैं, उसी समय तीर्थंकर परमात्मा को मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है । गृहस्थ जीवन में इस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ।

प्रश्न- 81. केवलज्ञान के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर- केवलज्ञान एक ही प्रकार का है । क्योंकि वह एक ही समय में सभी क्षेत्र के, सभी पदार्थों को अक्रम रूप से, हाथ में रहे हुए आँवले के समान एक ही साथ में जो ज्ञान बताता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न- 82. केवलज्ञानी के पर्यायवाची नाम बताएँ ?

उत्तर- सर्वज्ञ, वीतराग, केवली, जिन आदि नाम से पुकारे जाते हैं ।

प्रश्न- 83. अवधि-मनःपर्यव तथा केवल में कोई विशेषता है ?

उत्तर- अवधि और मनःपर्यव ज्ञान में उपयोग दिया जाए तो ही जानकारी होती है जबकि केवल ज्ञान में बिना उपयोग दिए, सहज रूप से, रूपी-अरूपी सभी पदार्थ केवल ज्ञान में दिखते ही रहते हैं । इसीलिए केवल ज्ञान उत्तमोत्तम, सर्वोत्कृष्ट ज्ञान कहा जाता है । इसको रोकने वाला कर्म केवल ज्ञानावरणीय है ।

प्रश्न- 84. ज्ञान के कुल कितने भेद हुए ?

उत्तर- मतिज्ञान के 28 भेद, श्रुतज्ञान के 14 भेद, अवधि-ज्ञान के 6 भेद, मनःपर्यवज्ञान के 2 भेद, केवल ज्ञान का एक भेद ।

$$28 + 14 + 6 + 2 + 1 = 51 \text{ भेद हुए ।}$$

प्रश्न- 85. 5 ज्ञान में से प्रत्यक्ष और परोक्ष कितने हैं?

उत्तर- प्रत्यक्ष अर्थात् प्रति + अक्ष

अक्ष शब्द का अर्थ है आत्मा

1. प्रत्यक्ष ज्ञान- साक्षात् आत्मा द्वारा वस्तु का जो बोध होता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं । केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान यह तीनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं ।

2. परोक्ष ज्ञान— जिस प्रकार लंगड़े व्यक्ति के पास चलने की सहज शक्ति क्षीण होने से लकड़ी की सहायता लेनी पड़ती है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के कारण जानने की सहज आत्मिक शक्ति ढक जाने से साक्षात् आत्मा द्वारा वस्तु का बोध नहीं होता तब जीव को इन्द्रिय और मन की सहायता लेनी पड़ती है । इन्द्रियाँ पदार्थ का ज्ञान होते ही तुरन्त मन को सूचना देती हैं तथा मन तुरन्त आत्मा को सूचना देता है तब आत्मा को पदार्थ का ज्ञान होता है । इन्द्रिय और मन की सहायता से जो बोध होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं जैसे मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान परोक्ष है ।

## दूसरा कर्म - दर्शनावरणीय कर्म

प्रश्न— 86. दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— दर्शन अर्थात् देखना । आत्मा में रही देखने की शक्ति को रोकने वाला कर्म दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है । आत्मा में अनन्त दर्शन गुण है । आत्मा द्वारा कोई भी वस्तु देखे बिना नहीं रह सकती परन्तु जब दर्शनावरणीय कर्म रूपी बादल आत्मा रूपी सूर्य के आगे आ जाते हैं तब आत्मा अन्धा-बहरा बन जाता है । सूँघने की शक्ति मन्द हो जाती है । जीभ भोजन के स्वाद के लिए, चमड़ी स्पर्श का अनुभव करने के लिए व्यर्थ जैसी हो जाती है । सदा जागृत रहने वाली आत्मा निद्रा लेने का कार्य करती है । यह सब दर्शनावरणीय कर्म का प्रभाव है ।

प्रश्न— 87. दर्शनावरणीय कर्म किसके समान है ?

उत्तर— दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल के समान है । जैसे किसी व्यक्ति को राजा से मिलने की इच्छा हो परन्तु द्वारपाल नाराज हो तो वह राजा के पास नहीं लेकर जाएगा । जिस कारण व्यक्ति राजा से मिल नहीं सकता । ठीक इसी प्रकार जीव रूपी राजा की इच्छा

अनन्त पदार्थों को देखने की है परन्तु द्वारपाल की तरह दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति को ढक देता है जिस कारण जीव संसार के अनन्त पदार्थों को देख नहीं सकता । परिणामस्वरूप आत्मा इस भव में बहुत वस्तुओं को देख नहीं सकता ।

प्रश्न- 88. दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर-

1. सभी इन्द्रियों से सम्पूर्ण होने पर भी अपना इच्छित कार्य न होने से बोलना- क्या तू अन्धा है ? तुझे दिखाई नहीं देता ? क्या तू बहरा है ? तुझे कुछ सुनाई नहीं देता ? तेरे पाँव टूट गए हैं जो कार्य नहीं करता ? ऐसे शब्द बोलने से अपने को वैसा ही बनाने वाला दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध हो जाता है ।
2. कभी भी कान-आँख-नाक-जीभ-शरीर आदि का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए ।
3. दूसरों की निन्दा करने से, सिनेमा के गीत सुनने से, टीवी वीडियो द्वारा अश्लील चित्रों को देखने से, इन्द्रियों का दुरुपयोग करने से दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होता है ।
4. जागते हुए होने पर भी सोने का ढोंग करने से भी दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होता है ।
5. जो दूसरों की चमड़ी उतारता है उसे भी अपनी चमड़ी उतरानी पड़ती है जैसे खन्धक मुनिवर पूर्व जन्म में चीभड़ा के फल की पूरी छाल उतारने पर उसकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए पत्नि को कहा- है तेरे पास ऐसी कला ! एक भी टुकड़ा उतारे बिना कैसी अखण्ड छाल उतारी ! परिणाम ! संयमी बनने के बाद शरीर की चमड़ी उतरानी पड़ी ।
6. जो दूसरे को अन्धा कहता है दूसरे भव में अन्धा बनना पड़ता

है। गूँगा-तोतला-बोबड़ा कहकर चिढ़ाने से दूसरे भवों में स्वयं को गूँगा बहरा-तोतला, बोबड़ा बनने का रिजर्वेशन कराना होगा।

प्रश्न- 89. दर्शनावरणीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर- दर्शनावरणीय कर्म के नव भेद शास्त्रों में बताए गए हैं।

1. चक्षुदर्शनावरणीय कर्म- जिस कर्म के उदय से अन्धापन मिले, आँखों में मोतिया, आँख सम्बन्धी वेदना लाने का कार्य चक्षुदर्शनावरणीय कर्म का है।

2. अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म- जिस कर्म के उदय से जीव को गूँगापन, पेरेलाईसीस (लकवा), कान-नाक-जीभ-मन आदि की शक्ति न मिले उसे अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

3. अवधिदर्शनावरणीय कर्म- जिस कर्म के उदय से जीव को साक्षात् आत्मा से रूपी द्रव्यों का सामान्य बोध न हो उसे अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

4. केवलदर्शनावरणीय कर्म- जिस कर्म के उदय से जीव को साक्षात् आत्मा से लोकालोक में रहे सर्वपर्यायों का एक साथ सामान्य बोध न हो उसे केवलदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

5. निद्रादर्शनावरणीय कर्म- सुखपूर्वक जाग सके ऐसी नींद को निद्रा कहते हैं उसका कारण निद्रा दर्शनावरणीय नाम का कर्म है।

6. निद्रा-निद्रादर्शनावरणीय कर्म- खूब मुश्किलों से जाग सके ऐसी निद्रा का नाम निद्रा-निद्रा उसका कारण निद्रा-निद्रा नाम का दर्शनावरणीय कर्म।

7. प्रचलादर्शनावरणीय कर्म- बैठे-बैठे या खड़े-खड़े रहने से जो

निद्रा आए वह प्रचला उसका कारण प्रचला दर्शनावरणीय नाम का कर्म है ।

8. प्रचला-प्रचलादर्शनावरणीय कर्म- चलते-चलते नींद का आना जैसे घोड़ा-ऊँट-बलद आदि उसका कारण प्रचला-प्रचलादर्शनावरणीय कर्म है ।

9. थिणाद्धिदर्शनावरणीय कर्म- दिन में चिन्तन किए हुए कार्य को रात्रि में नींद-नींद में ही कर आना । तो भी स्वयं को ख्याल न आना सुबह जागने पर ऐसा लगे कि मुझे स्वप्न आया है । ऐसी निद्रा थिणाद्धि कहलाती है । प्रथम संघयण वाले जीव को नींद समय वासुदेव के बल से आधा बल बढ़ जाता है । वर्तमान काल में युवान पुरुष के बल से आठ गुणा बढ़ जाता है । ऐसा जीव मरने के बाद अवश्य नरक में जाता है ।

## तीसरा कर्म - वेदनीय कर्म

प्रश्न- 90. वेदनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- आत्मा का सुख सदा टिकने वाला है । सुख-दुःख से मिश्रित नहीं है । आत्मा का सुख कभी भी दुःख लाने वाला नहीं है । उसका सुख स्वाधीन है । आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती परन्तु आत्मा रूपी सूर्य के सामने वेदनीय कर्म रूपी बादल आ जाने से आत्मा रूपी सूर्य का अब्याबाध नाम का गुण ढँक गया है जिस कारण जीवन सुखी-दुखी बनता रहता है । सुखी-दुखी करने वाला कर्म वेदनीय कर्म है ।

प्रश्न- 91. भौतिक सुख किसे कहते हैं ?

उत्तर- भौतिक यानि सांसारिक सुख ! सदैव टिकने वाले नहीं है । वह सुख-दुःख मिश्रित है । प्रत्येक सुख के पीछे दुःख रहा हुआ है ।

भौतिक सुख-दुःख को लाने वाला है । वह सुख पराधीन है । किसी न किसी साधन-सामग्री की सहायता से ही सुख का अनुभव किया जा सकता है । ऐसे सुखों को भौतिक सुख कहा जाता है ।

प्रश्न- 92. वेदनीय कर्म के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर- वेदनीय कर्म के दो भेद हैं ।

1. सात्ता वेदनीय- जिस कर्म के उदय से जीव को अनुकूलता एवं सुख सामग्री की प्राप्ति हो उसे सात्ता वेदनीय कहते हैं ।

2. असात्ता वेदनीय- जिस कर्म के उदय से जीव को दुःख की प्रतिकूलता- रोग आदि प्राप्ति हो उसे असात्ता वेदनीय कहते हैं ।

प्रश्न- 93. किस-किस ने अपने जीवन में दुःखों को पाया ?

उत्तर- अंजना सुन्दरी ने 22-22 वर्ष तक पति वियोग पाया ।

महासती सीता का जीवन कितना दुःखमय रहा ।

जन्मते ही भाई भामण्डल का वियोग हुआ ।

बड़े होने पर भाई भामण्डल सीता के प्रति मोहित बना ।

राजकुमार रामचन्द्र के साथ विवाह होने के बाद वन में जाने का समय आया ।

रावण को हराकर रामचन्द्रजी सीता को अयोध्या ले आये । वहाँ पर किसी ने कलंक लगा दिया ।

लव-कुश अभी गर्भ में थे, जंगल में हिंसक पशुओं के बीच छोड़ा गया ।

लव-कुश का रामचन्द्रजी के साथ मिलाप होने के पश्चात् अग्नि



परीक्षा में पसार होने का समय आया । महासती के जीवन में कैसी दुःखद घटमाला । इतने सारे दुःखों को सीता के जीवन में कौन लाया ? इन दुःखों को लाने वाला अन्य कोई नहीं—वेदनीय कर्म ! क्षण में सुखी और क्षण में दुःखी करने वाला—वेदनीय कर्म ।

प्रश्न— 94. जीवन में साता वेदनीय कर्म का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर— प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सुख चाहता है। उस सुख की प्राप्ति निम्नलिखित कार्यों से होती है ।

1. दूसरों को सुख—अनुकूलता देने से ।
2. दूसरों की सहायता करने से ।
3. दूसरों के साथ प्रेमपूर्वक का व्यवहार करने से ।
4. माता—पिता—गुरु की भक्ति करने से ।
5. क्रोध का निमित्त मिलने पर भी समभाव रखने से ।
6. प्रत्येक प्राणी पर दयाभाव रखने से ।
7. व्रतों का पालन करने से ।
8. सुपात्रदान—अनुकम्पा दान—अभयदान आदि करने से ।
9. आपत्ति आने पर भी नियम—धर्मानुष्ठान करने से । इन सभी सत्कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है ।

प्रश्न— 95. दुख देने वाला असाता वेदनीय का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर— शाता वेदनीय बन्ध के कारणों से विपरीत कारणों द्वारा जीव असाता वेदनीय कर्म बान्धता है । इसके अतिरिक्त अन्य भी कारण हैं ।

1. गुरु की आशातना करने से । जैसे गौशालक ने प्रभु वीर पर

तेजोलेश्या छोड़ी । गुरु का अपमान किया । उसी भव में सात दिन तक सतत संतप्त रहा । भवोभव में दुखों को भोगने वाला होगा ।

2. माता-पिता के प्रति तिरस्कार का भाव रखने से ।

3. घोड़ा-बलद आदि को निर्दयता से वहन करने से ।

4. दुःख आने पर हाथ-पाँव-मस्तक को पछाड़ने से ।

5. घर के आँगन में आए भिखारी आदि को गाली देना-भोजन न देना ।

साता-असाता वेदनीय के कारण जानने पर कभी भी भूल से भी असाता वेदनीय कर्म का बन्ध न हो सदैव ध्यान रखें ।

प्रश्न- 96. वेदनीय कर्म किस के समान है ?

उत्तर- वेदनीय कर्म शहद से लिप्त तलवार की तरह है । शहद से लिप्त तलवार को चाटने से शहद का स्वाद आने से आनन्द तो आता है परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाने से दुःख भी होता है । सुख-दुःख दोनों को लाए बिना नहीं रहता ।

प्रश्न- 97. किस-किस ने साता वेदनीय कर्म के कारण सुख पाया ?

उत्तर- जो कोई भी, किसी भी प्रकार का सुख हमें प्राप्त होता है उसका कारण सातावेदनीय कर्म ।

1. शालीभद्र ने पूर्वभव में मासखमण के तपस्वी को, खीर का दान उत्कृष्ट भावों से दिया फलस्वरूप अखूट ऋद्धि को पाया । बाद में संयमी बन सर्वार्थ सिद्ध विमानवासी देवता बने । एक भव कर मोक्ष में जाएँगे ।

2. कयवन्ना सेठ ने भी पूर्वभव में दान देकर साता वेदनीय कर्म बान्धा ।

3. मेघकुमार ने भी पूर्वभव में खरगोश की दया बुद्धि से जान बचाई । जीवदया के प्रभाव से पुष्कल साता वेदनीय कर्म बान्धा । श्रेणिक महाराजा का पुत्र मेघकुमार बना । खूब सुखशाता को प्राप्त किया प्रभु महावीर के शिष्य बने केवलज्ञानी बन मुक्तिपद को पाए ।

4. महाबल राजा व्रतों का पालन कर साता वेदनीय बान्धकर देवलोक के सुखों का भोक्ता बने ।

5. स्वयं की इच्छा से सहन करें तब सकाम निर्जरा होती है । इच्छा बिना सहन करने से जो निर्जरा होती है वह अकाम निर्जरा कही जाती है । ऐसी सकाम अकाम निर्जरा समय भी साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है ।

6. शूलपाणी यक्ष पूर्व भव में बलद था । खूब मार को खाया, सहन किया । साता वेदनीय के बन्ध से यक्षभव में साता की प्राप्ति हुई।

### चौथा कर्म : मोहनीय कर्म

प्रश्न- 98. मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- 1. आत्मा के सत्य स्वरूप को भुलाकर संसार के पदार्थों में मोह पैदा करने वाला कर्म मोहनीय कर्म कहलाता है ।

2. जिस प्रकार चलती गाड़ी में बैठे हों तब वृक्ष-मकान स्थिर होते हुए भी दौड़ते हुए नजर आते हैं परन्तु वास्तविक रूप से यह भ्रम है । वस्तुतः गाड़ी चलती है । परन्तु वृक्ष मकान स्थिर होते हैं । इसी प्रकार संसार के पदार्थों में सुख की भ्रमणा कराने वाला मोहनीय कर्म है ।

3. संसार हकीकत में दुःखमय है तो भी उसमें सुख की बुद्धि मोहनीय कर्म करवाता है ।

प्रश्न- 99. मोहनीय कर्म किस के समान है?

उत्तर- मोहनीय कर्म मदिरा समान है । जिस प्रकार शराब पीने वाला व्यक्ति अपनी स्थिति-जात को भूल जाता है, माता को बहन, बहन को पत्नी, पत्नी को माता-बहन मानने लगता है । उसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय वाला जीव अपनी आत्मा के स्वभाव को भूलकर विभाव दशा-परभाव दशा में रमण करने लग जाता है ।

प्रश्न- 100. मोहनीय कर्म आत्मा के कौन से गुण को ढक देता है ?

उत्तर- आत्मा का गुण है वीतरागता । नहीं किसी पर राग, न ही किसी पर द्वेष । आत्मा रूपी सूर्य के वीतरागता रूपी गुण के आगे मोहनीय कर्म रूपी बादल आ जाने से, आत्मा सिंह समान होते हुए भी कायर बन गया है । कभी रागी बनता है तो कभी द्वेषी । कभी क्रोध से आग बबूला हो जाता तो कभी अहंकार में अक्कड़ बन जाता है । कभी तो माया की मस्ती में खेलता है तो कभी-कभी लोभ के महासागर में डुबकी लगाता है । कभी-कभी खड़खड़ाहट हँसता है तो कभी जोर-जोर से रोने लग जाता है । कभी तो आनन्द में आकर झूमता है तो कभी शोकसागर में डूब जाता है । यह सब तूफान मोहनीय कर्म के हैं । सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य मानने लगता है । जो सच्चा वह मेरा ऐसी मान्यता होनी चाहिए उसके बदले जो मेरा वही सत्य ऐसा कदाग्रही बन जाता है । सभी सदगुणों को ढँकने वाला मोहनीय कर्म है ।

प्रश्न- 101. मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर- मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं ।

1. दर्शन मोहनीय- परमात्मा की वाणी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न न होने दे या उत्पन्न हुई श्रद्धा को शंका आदि द्वारा तोड़ने वाला कर्म वह दर्शन मोहनीय कहलाता है । इस के तीन भेद हैं ।

2. चारित्र मोहनीय— परमात्मा की वाणी के प्रति श्रद्धा हो जाने पर भी उसके अनुसार आचरण न करने दे उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते हैं । इसके 25 भेद हैं ।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के कुल  $3 + 25 = 28$  भेद हैं ।

प्रश्न— 102. दर्शन मोहनीय के तीन भेदों की व्याख्या समझाएँ ?

उत्तर— 1. मिथ्यात्वमोहनीय कर्म— सत्य में असत्य की तथा असत्य में सत्य की बुद्धि कराने वाला कर्म मिथ्यात्वमोहनीय है ।

2. मिश्रमोहनीय कर्म— जिनवचन में रुचि भी नहीं और अरुचि भी न होने दे वह मिश्रमोहनीय कर्म है ।

3. सम्यक्त्वमोहनीय कर्म— प्राप्त समकित में बारम्बार शंका पैदा कर दूषित करने वाला कर्म सम्यक्त्व मोहनीय कहलाता है । ये तीनों दर्शन मोहनीय कर्म कहलाते हैं । यह सम्यग्दर्शन रूपी आत्मा के गुण पर आक्रमण करते हैं ।

प्रश्न— 103. चारित्र मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर— चारित्र मोहनीय कर्म के 25 भेद हैं ।

16 कषाय मोहनीय कर्म + 9 नौ कषाय मोहनीय कर्म ।

16 कषाय मोहनीय— 1. क्रोध—मान—माया—लोभ ये चार कषाय जिन्दगी तक रहे तो अनन्तानुबन्धी कषाय कहे जाते हैं ।

2. अप्रत्याख्यानीय कषाय— ये चारों कषाय 1 वर्ष तक रहे तो अप्रत्याख्यानीय कषाय कहे जाते हैं ।

3. प्रत्याख्यानीय कषाय— ये चारों क्रोध—मान—माया—लोभ 4 मास तक रहे तो प्रत्याख्यानीय कषाय कहे जाते हैं ।

4. संज्वलन कषाय— ये चारों कषाय 15 दिन तक टिके रहे तो संज्वलन कषाय कहा जाता है ।

अनन्तानुबन्धी— अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय, संज्वलन ये चारों के क्रोध—मान—माया—लोभ ऐसे चार—चार प्रकार होने से कषाय मोहनीय कर्म 16 प्रकार के होते हैं ।

प्रश्न— 104. नव नोकषाय मोहनीय कर्म को समझाएँ ।

उत्तर— नोकषाय— नो का अर्थात् है प्रेरित करना । जो कषायों को करने में प्रेरणा करें उसे नोकषाय कहते हैं । उसके नव भेद हैं ।

1. हास्यमोहनीय कर्म— कारण या कारण बिना हँसी कराए ।

2. शोकमोहनीय— शोक उत्पन्न करें ।

3. रंतिमोहनीय— प्रत्येक पदार्थ में आनन्द की अनुभूति कराए ।

4. अरति मोहनीय— खेद—व्याकुलता का अनुभव कराए उसे....।

5. भय मोहनीय— भयभीत बनाए उसे....।

6. दुर्गंछा मोहनीय— जुगुप्सा—दुर्गंछा पैदा कराए....।

7. पुरुषवेद मोहनीय— स्त्री के साथ काम सेवन की इच्छा कराए उसे....।

8. स्त्रीवेद मोहनीय— पुरुष के साथ काम सेवन की इच्छा कराए उसे....।

9. नपुंसक वेदमोहनीय— पुरुष—स्त्री दोनों के साथ कामसेवन की इच्छा कराए उसे....।

इस प्रकार 16 कषाय + 9 नोकषाय मिलकर चारित्र मोहनीय कर्म के 25 भेद हुए । इसमें तीन प्रकार के दर्शन मोहनीय कर्म मिलाए

तो मोहनीय कर्म के 28 भेद बनते हैं । ये 25 भेद चारित्र मोहनीय के आचरण पर आक्रमण करते हैं ।

प्रश्न- 105. अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषायों से कौन-सी गति का बन्ध होता है ?

उत्तर- 1. अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय वाला जीव नरकगति योग्य कर्म का बन्ध करता है ।

2. अप्रत्याख्यानीय कषायोदय वाला तिर्यचगति का बन्ध करता है ।

3. प्रत्याख्यानीय कषायोदय वाला जीव मनुष्यगति का बन्ध करता है ।

4. संज्वलन कषायोदय वाला जीव देवगति का बन्ध करता है ।

प्रश्न- 106. अनन्तानुबन्धी आदि चार कषाय किस-किस गुण का नाश करते हैं ?

उत्तर- अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्वगुण का नाश करता है ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय देशविरति का नाश करता है ।

प्रत्याख्यानीय कषाय सर्वविरति का नाश करता है ।

संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र का नाश करता है ।

प्रश्न- 107. अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार का क्रोध किस के समान है ?

उत्तर- 1. संज्वलन क्रोध- पानी में पड़ी रेखा के समान है । तुरन्त संज्वलन क्रोध शान्त हो जाता है ।

2. प्रत्याख्यानीय क्रोध- रेती में की गई रेखा समान है पवन के चलने से मिट जाती है । इस प्रकार प्रत्याख्यानीय क्रोध थोड़े से उपाय से शान्त हो जाता है ।

3. अप्रत्याख्यानीय क्रोध- मिट्टी वाली पृथ्वी पर पड़ी रेखा समान कभी वर्षा आदि जोर से आए तो रेखा मिट सकती है वैसे ही यह कषाय मुश्किल से शान्त होता है ।

4. अनन्तानुबन्धी क्रोध- पर्वत पर पड़ी रेखा समान । किसी भी प्रकार से यह क्रोध शान्त नहीं होता । यह क्रोध जिंदगी के अन्त तक रहता है । क्रोध-गुस्सा-द्वेष-आक्रोश-कलह-ईर्ष्या-आवेश पर्यायवाची नाम है ।

प्रश्न- 108. अनन्तानुबन्धी आदि चारों प्रकार का मान किस के समान है ?

उत्तर- मान अर्थात् गर्व-अहंकार-अभिमान-अक्कड़ता आदि ।

1. संज्वलन मान- नतेर की लकड़ी समान, सरलता से झुक जाता है ।

2. प्रत्याख्यानीय मान- काष्ठ की सोटी समान, मुश्किल से झुकती है ।

3. अप्रत्याख्यानीय मान- हड्डी-अस्थि के समान बहुत अधिक उपायों से महामुश्किल से दूर होती है ।

4. अनन्तानुबन्धी मान- पत्थर के स्तम्भ समान सैंकड़ों उपाय करने पर भी यह मान दूर नहीं होता ।

प्रश्न- 109. अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार की माया किस-किस के समान है ?

उत्तर- माया अर्थात् कूड़-कपट-वक्रता-दम्भ आदि ।

1. संज्वलन माया- जैसे आकाश में होने वाली इन्द्रधनुष की रेखा समान जल्दी नाश हो जाती है ऐसी ही संज्वलन माया शीघ्र समाप्त हो जाती है ।



2. प्रत्याख्यानीय माया— मार्ग में चलते बलद की टेढ़ी मूत्र रेखा (गोमूत्रिका) जैसे धूप आदि से समाप्त हो जाती है वैसे ही थोड़े प्रयत्न से यह माया नाश हो जाती है ।

3. अप्रत्याख्यानीय माया— जैसे भेड़ का सींग बड़ी मुश्किल से, अनेक उपायों से सीधा किया जा सकता है वैसे ही यह माया महामुश्किल से दूर होती है ।

4. अनन्तानुबन्धी माया— जैसे अतिकठिन टेढ़ा मेढ़ा बाँस का मूल अग्नि में जलाने पर भी अपनी वक्रता नहीं छोड़ता वैसे ही यह अनन्तानुबन्धी माया किसी भी उपाय से दूर नहीं हो सकती ।

प्रश्न— 110. अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार का लोभ किस-किस के समान है ?

उत्तर— लोभ अर्थात्— मूर्च्छा—ममत्व—आसक्ति—असंतोष—परिग्रह वृत्ति—तृष्णा—इच्छा—अभिलाषा—आकांक्षा ।

1. संज्वलन लोभ— हल्दी समान—जैसे वस्त्र पर लगा हल्दी का दाग धूप के स्पर्शमात्र से उड़ जाता है वैसे ही यह लोभ प्रयत्न किए बिना ही शीघ्र नाश हो जाता है ।

2. प्रत्याख्यानीय लोभ— दीपक की कालाश समान— जैसे दीपक की कालाश वस्त्र को लग जाए तो साबुन पानी में वस्त्र डालने से कालाश (मेघ) दूर होती है वैसे ही यह लोभ थोड़े प्रयत्न से दूर होता है ।

3. अप्रत्याख्यानीय लोभ— गाड़े की लगी कालाश समान— वह कालाश साबुन आदि लगाने से खूब-खूब रगड़ने से दूर की जा सकती है वैसे ही यह लोभ बहुत प्रयत्नों से शान्त होता है ।

4. अनन्तानुबन्धी लोभ— मजिद्धा रंग समान— जैसे यह रंग वाला

वस्त्र फट जाएगा परन्तु रंग कभी भी दूर नहीं होता वैसे ही अनन्तानुबन्धी लोभ अनेक प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं होता ।

प्रश्न— 111. आठों कर्मों का राजा कौन है ?

उत्तर— सभी कर्मों का सम्राट मोहनीय कर्म है । जैसे युद्ध में राजा के भाग जाने पर सभी सैनिकों को भागना ही पड़ता है वैसे ही मोहनीय कर्म का नाश होते ही सभी कर्मों को विदाई लेनी ही पड़ेगी । कर्मों के नाश के समय भी सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का नाश होता है उसके बाद ज्ञानावरणीय आदि शेष कर्मों का नाश होता है ।

प्रश्न— 112. मोहनीय कर्म का बन्ध किन कारणों से होता है ?

उत्तर— 1. उन्मार्ग की देशना देने से— जैसे शासन की मान्यता से विपरीत देशना देने से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है जैसे देव—देवी की मूर्ति समक्ष पशु बगैरा का बलिदान देना धर्म है ऐसा उपदेश देने से दर्शन मोहनीय कर्म का बन्ध होता है ।

जैसे मरिची ने कहा था कपिल ! धर्म यहाँ भी है और वहाँ भी है ऐसा बोलने से एक कोटा कोटि सागरोपम संसार को बढ़ा लिया ।

2. मार्ग (शुद्ध प्ररूपणा) का नाश करने से— जैसे कि मोक्ष, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप ऐसी कोई चीज नहीं है । परलोक पुनर्जन्म आदि काल्पनिक है । तप—त्याग करके शरीर को सुखाना निरर्थक है । ऐसी बातें करने से भद्रिक जीवों को सन्मार्ग से दूर करने से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है । अज्जा साध्वी ने अपनी शिष्याओं को कहा कि गर्म पानी पीने से मुझे कोढ़ रोग हुआ है एक को छोड़कर सभी ने गर्म पानी पीना छोड़ दिया जिससे अज्जा साध्वी ने मोहनीय कर्म बान्धा । धर्म आराधना की परम्परा बन्द हो जाए ऐसी बातें या व्यवहार करने से मोहनीय कर्म बन्धता है ।

3. देवद्रव्य का भक्षण करने से— परमात्मा को जो वस्तु समर्पण कर दी उसे देवद्रव्य कहते हैं । उस देवद्रव्य का स्वयं उपयोग करने से मोहनीय कर्म बन्धता है । मन्दिरजी में कोई बोली बोलकर उसका पैसा न चुकाने से भी कर्म का बन्ध होता है अगर लेट हो जाए तो ब्याज सहित चुकाना चाहिए ।

ऋषभ दत्त श्रावक ने देवद्रव्य में पैसा लिखाया परन्तु देना ही भूल गया परिणाम स्वरूप ऐसा मोहनीय कर्म बन्धा कि मरने के बाद भैंसा बना मन्दिरजी के काम के लिए पानी उठाकर लाता वहाँ परमात्मा की हो रही पूजा को देखकर जातिस्मरण ज्ञान हुआ । परमात्म भक्ति करने लगा । अपनी भूल का पश्चाताप किया ।

ज्ञानी भगवन्त के कहने से किसी सेठ के पुत्र ने भैंसे को छुड़ाया । जितना पैसा लिखाया था पूर्वजन्म में, उससे भी हजारगुणा द्रव्य जमा कराकर भैंसे को परमात्मा के ऋण से मुक्त किया । अन्त में अनशन कर भैंसा स्वर्ग में गया । यह दृष्टान्त पढ़ने के बाद बोली बोलने के बाद तुरन्त पैसा जमा करा देना चाहिए ।

देवद्रव्य का नुकसान हो ऐसी प्रवृत्ति करने से भी मोहनीय कर्म का बन्ध होता है ।

4. तीर्थकर परमात्मा की निन्दा करने से ।

5. साधु—साध्वी की निन्दा करने से ।

6. जिन प्रतिमा की आशातना करने से ।

7. चतुर्विध संघ की निन्दा करने से ।

इसके अतिरिक्त संगम देव ने प्रभु महावीर के ऊपर उपसर्गों को करने कठिन मोहनीय कर्म को बान्धा । इस प्रकार मोहनीय की व्याख्या संक्षिप्त से पूर्ण कर अब आगे के कर्मों का वर्णन पढ़ें ।

## पाँचवाँ कर्म - आयुष्य कर्म

प्रश्न- 113. आयुष्य कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-

1. जिस कर्म के उदय से आत्मा को नियत समय तक शरीर में रहना ही पड़े उसे आयुष्य कर्म कहते हैं ।

2. जन्म लेने के पश्चात् भले कितनी भी मरने की इच्छा हो, तो भी जो जीवन को टिकाए रखने वाला कर्म आयुष्य कर्म है ।

प्रश्न- 114. आयुष्य कर्म आत्मा के कौन से गुण को ढँकता है ?

उत्तर-

आत्मा रूपी सूर्य के प्रकाश जैसा गुण है अक्षय स्थिति, आत्मा रूपी सूर्य के आगे आयुष्य कर्म रूपी बादल आ जाने से आत्मा को जन्म-मरण की परम्परा में से गुजरना पड़ता है । जन्म और मरण को कराने वाला आयुष्य कर्म है । यह कर्म अक्षयस्थिति नाम के गुण को ढँक देता है ।

प्रश्न- 115. जन्म और मरण किसे कहते हैं ?

उत्तर-

दूसरे भव में नया शरीर बनाने की क्रिया का नाम जन्म है । इस भव के स्थूल शरीर को छोड़ने की क्रिया का नाम मरण है । जन्म से लेकर मरण तक के काल को जीवनकाल अथवा आयुष्य कहते हैं ।

प्रश्न- 116. क्या आयुष्य कर्म को बढ़ाया जा सकता है ?

उत्तर-

नहीं ! कार्तिक वदि अमावस्या का समय था । प्रभु महावीरस्वामीजी अन्तिम सोल प्रहर की देशना दे रहे थे । इन्द्र महाराजा भी परमात्मा का निर्वाण काल निकट जान कर आए हुए थे । इन्द्र महाराजा ने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर प्रभु को विनन्ती की । हे प्रभो !

आपका आयु दो क्षण बढ़ा लीजिए । भस्म राशि ग्रह का उदय होने वाला है । यदि आप की अमीय दृष्टि उस पर पड़ जाएगी तो खराब प्रभाव जैन शासन पर जो ग्रह बताने वाला है उस में कमी आ जाएगी ।

तब परमात्मा ने कहा— हे इन्द्र ! यह कभी भी नहीं हो सकता । तीर्थकर भी अपनी आयुष्य को बढ़ाने में समर्थ नहीं है ।

प्रश्न— 117. आयुष्य कर्म कितने प्रकार का है ?

उत्तर— आयुष्य कर्म 4 प्रकार है ।

1. देव आयुष्य कर्म— देवलोक में स्वभाविक रूप से अत्यन्त सुख साधनों से भरपूर रत्नों के विमानादि रूप आवासों की व्यवस्था है । उसमें उत्पन्न होने वाले प्राणि वर्ग का शरीर अत्यन्त सुशोभित होने से उन्हें सुर—देव कहते हैं । उस देव के शरीर में जीव को जितने समय तक रहना पड़े उसे देवायुष्य कहते हैं ।

2. मनुष्य आयुष्य कर्म— अदीर्घीय में मनुष्यों का निवास है । मनुष्य के शरीर में जीव को जितने समय तक रहना पड़े उसे मनुष्य आयुष्य कहते हैं ।

3. तिर्यचायुष्य कर्म— नीचा मुख रखकर जो चलते हैं उन्हें तिर्यच कहते हैं । यह अर्थ सभी तिर्यचों में नहीं घटता परन्तु कुत्ता—बिल्ली—बाघ—घोड़ा—हाथी—सिंह आदि तिर्यचों में यह व्याख्या घटित होती है । तिर्यच के शरीर में जितने समय तक रहना पड़े उसे तिर्यच आयुष्य कहते हैं ।

4. नरकायु कर्म— अधोलोक में 7 राजलोक प्रमाण क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से ही अत्यन्त पीड़ाकारी अशुभ द्रव्यों से भरपूर नरकावास होते हैं । उसमें उत्पन्न होने वाले जीव नारक कहे जाते हैं । इन नारक

के शरीर में जीव को जितना समय रहना पड़े उसे नरकायुष्य कहते हैं । इस प्रकार आयुष्य के 4 भेद हैं ।

प्रश्न- 118. क्या आयुष्य कर्म का बन्ध अन्य कर्मों की तरह ही होता है ?

उत्तर- नहीं ! आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध प्रतिपल होता रहता है । परन्तु आयुष्य कर्म का बन्ध एक भव में एक बार ही होता है । इतना ही नहीं देवादि 4 प्रकार की आयुष्य में से किसी एक ही आयुष्य का बन्ध अपने-अपने परिणाम के अनुसार होता है ।

प्रश्न- 119. आयुष्य कर्म का बन्ध कब होता है ?

उत्तर- देवता और नारकी जीव अपनी आयुष्य के 6 मास बाकी रहते हैं तब उनकी परभव की आयुष्य का बन्ध होता है ।

तिर्यच तथा मनुष्य भव में जितनी आयुष्य लेकर आता है उसके तीन भाग करे तो, उसमें दो भाग चले जाने पर जब एक भाग बाकी रहता है तब आगामी आयु का बन्ध होता है ।

अगर उस तीसरे भाग में भी बन्ध न हुआ तो उसके भी तीसरे भाग में बन्ध होगा । यदि तब भी न हुआ तो अन्त में मृत्यु के पूर्व भी बन्ध करेगा । नए भव की आयु को बान्धे बिना किसी का भी मरण नहीं होता (केवलज्ञानी को छोड़कर) केवलज्ञानी उसी भव में मोक्ष जाने वाले होते हैं इसलिए नए भव की आयु को नहीं बान्धते ।

प्रश्न- 120. आयुष्य बन्ध सम्बन्धी बात को विस्तार से समझाएँ ?

उत्तर- मान लीजिए किसी तिर्यच या मानव की आयु 81 वर्ष की हो तब आयु के दो भाग अर्थात् 54 वर्ष बीत जाने के बाद अपनी आयु का तीसरा भाग यानि 27 वर्ष रहे । तब आयु का बन्ध होगा । अगर

उस समय भी आयु का बन्ध न हुआ तो 27 वर्ष को दो भाग यानि 18 वर्ष बीत जाने पर  $54 + 18 = 72$  वर्ष की उम्र में आयु का बन्ध होगा ।

अगर उस समय भी आयु का बन्ध न हुआ 9 वर्ष का तीसरा भाग यानि 6 वर्ष व्यतीत हो जाने पर  $72 + 6 = 78$  वर्ष की वय में आयु का बन्ध होगा । नहीं तो मृत्यु समय भी बन्ध होगा ।

प्रश्न- 121. आयुष्य कर्म के बन्ध के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर- किस भव से आए हैं यह भी नहीं जानते । आगामी भव के लिए आयु बान्धने का नियत समय भी नहीं जान सकते । जीवन के किसी पल में भी आयु कर्म का बन्ध हो सकता है । अतः जैसा भाव वैसा भव । इस नियम को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक पल शुभ भाव में रहें ताकि आयु कर्म बन्धाए तो शुभ ही बन्धाए । अगर परभव आयु बान्धते समय आत्मा को शुभ भाव में नहीं रखा । किसी भी कारण से बिल्ली के भव का आयु बन्ध हो गया तो क्या होगा ? कीड़ी की रक्षा करने वाली आत्मा बिल्ली का भव मिलने से चूहे को पकड़ने की ही प्रक्रिया रहेगी । क्या ऐसी स्थिति सहन हो सकती है ? अतः आज से ही पल-पल सावधान रहने का शुभ संकल्प करें ।

प्रश्न- 122. तिथियों की महत्ता किसलिए ?

उत्तर- आयुष्य कर्म को बान्धने की शक्यता भी पर्व तिथियों में है । दो दिन व्यतीत होते ही तीसरे दिन बड़ी तिथि आ जाती है । जैसे तीज-चौथ के बाद बड़ी तिथि पंचमी । छठ-सातम के बाद अष्टमी । नवमी-दशमी के बाद अगिआरस । बारस-तेरस के बाद चौदस । पूनम-एकम के बाद दूज । आयु कर्म का बन्ध भी तीसरे भाग में होता है । तिथि

भी तीसरे दिन आती है। आयुष्य कर्म बान्धने की शक्यता है तिथि के दिन। अतः तिथि के दिन कपड़े नहीं धोना, हरी सब्जी-फल आदि नहीं खाना। आरम्भ-समारम्भ के कार्य नहीं करना। तिथि के दिनों में धर्मध्यान में विशेष लीन बनना चाहिए।

प्रश्न- 123. क्या आयु टूट भी सकती है ?

उत्तर- हाँ ! आयु दो प्रकार की होती है।

1. अपवर्तनीय- जो आयुष्य कर्म, शस्त्र-आपघात बाह्य रागादि आभ्यन्तर निमित्तों से टूट जाए उसे अपवर्तनीय आयुष्य कहते हैं। वह सोपक्रमी होती है।

सोपक्रमी = उपक्रम सहित

उपक्रम अर्थात् आयुष्य घटने के निमित्त जैसे किसी की आयुष्य 100 वर्ष की हो। वह 100 वर्ष तक जीने वाला है। परन्तु 50 वर्ष पूर्ण होते ही एकसीडेंट रूप निमित्त से बाकी रही 50 वर्ष की आयु अन्तमुहूर्त प्रमाण समय में भोग लेता है। कैसे ?

जैसे कि 10 मीटर लम्बी रस्सी हो उसके एक किनारे को आग लगाने से पूरी रस्सी को जलते बहुत समय लगेगा परन्तु उसी रस्सी को इकट्ठा करके केरोसीन लगाकर आग लगा दी जाए तो एक-आधे मिनट में ही पूरी रस्सी जल जाएगी वैसे ही अपवर्तनीय आयुष्य को उपक्रम (निमित्त) मिलते ही बाकी रही आयु जल्दी से भोगकर नाश कर देता है।

2. अनपवर्तनीय- जिस आयुष्य कर्म की स्थिति शस्त्रादि बाह्य निमित्त, रागादि आभ्यन्तर निमित्त द्वारा भी टूट न सके। सम्पूर्ण आयुष्य को भोगकर ही समाप्त करे उसे अनपवर्तनीय आयुष्य कहते हैं।



प्रश्न- 124. अनपवर्तनीय आयु किस-किस की होती है ?

उत्तर- अनपवर्तनीय (निरुपक्रमी) आयुष्य 63 शलाका पुरुष (24 तीर्थकर + 12 चक्रवर्ती + 9 वासुदेव + 9 प्रतिवासुदेव + 9 बलदेव) देवता-नारकी-अकर्म भूमि के मनुष्य युगलिक मनुष्य तथा तिर्यच ये सभी अपनी सम्पूर्ण आयुष्य को भोगते हैं ।

प्रश्न- 125. द्रव्यायुष्य और कालायुष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर- कोई भी जीव जितनी आयु लेकर आता है उसे प्रतिपल थोड़ी-थोड़ी भोगकर आत्मा पर से आयुष्य कर्म के दलिकों को दूर करके सम्पूर्ण आयु को भोगा तब द्रव्यायुष्य और काल आयुष्य दोनों को एक साथ पूर्ण करता है । परन्तु कभी दुर्घटना से, आत्महत्या करने से, गले में फन्दा डालकर मर जाने से, जहरीली दवा खाने से जो मरण हुआ उस में द्रव्यायुष्य पूर्ण करता ही है । द्रव्यायुष्य पूर्ण किए बिना किसी की भी मृत्यु नहीं होती । परन्तु कालायुष्य पूर्ण भोगा भी जाता है और नहीं भी । आघात-आपघात न आए तो कालायुष्य को पूर्ण भोगकर ही मृत्यु को पाता है ।

प्रश्न- 126. किन-किन कारणों से आयु टूटती है ?

उत्तर- आयु के टूटने को शास्त्रकार भगवन्त उपक्रम कहते हैं । वह उपक्रम सात प्रकार से हैं ।

1. अध्यवसाय, 2. निमित्त, 3. आहार, 4. वेदना, 5. पराघात, 6. स्पर्श, 7. श्वासोश्वास ।

प्रश्न- 127. सात प्रकार के उपक्रमों की व्याख्या समझाएँ ?

उत्तर- 1. अध्यवसाय अर्थात् आत्मा में उत्पन्न होने वाले संकल्प-विकल्प को अध्यवसाय कहते हैं । वह विकल्प तीन कारणों से उत्पन्न होते हैं ।

1. राग से, 2. स्नेह से, 3. भय से ।

1. राग से मृत्यु- गर्मी के ताप से व्याकुल बना युवान पथिक पानी के प्याऊ के पास आया । रूपवान युवान को पानी देते समय प्याऊ पर बैठी स्त्री युवान के तरफ आकर्षित हो गई । अपने भावों को उसे नहीं बताया ।

पानी पीकर युवान तो अपने स्थान की ओर चल पड़ा । युवान के प्रति अत्यन्त राग से आसक्त बनी स्त्री एकटक से जाते हुए युवान को देखने लगी । दृष्टिपथ से ओझल हो जाने पर अब मुझे वापस नहीं मिलेगा ? ऐसे अध्यवसायों से वह वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गई । इन अध्यवसायों से द्रव्यायुष्य को शीघ्र भोग लिया राग के अध्यवसाय मृत्यु को जल्दी ले आते हैं ।

प्रश्न- 128. राग से मृत्यु का दृष्टान्त समझाया अब स्नेह पर भी दृष्टान्त से समझाएँ ?

उत्तर-

1. स्नेह से मृत्यु- राम-लक्ष्मण दोनों के बीच अतितीव्र स्नेह था । उनके स्नेह की परीक्षा करने के लिए देवता ने अपना रूप परिवर्तन करके लक्ष्मणजी को कहा- अरे ! रामचन्द्रजी की मृत्यु हो गई । यह समाचार सुनते ही मैं रामचन्द्रजी के बिना कैसे जीवित रह सकूँगा । ऐसे स्नेह से उत्पन्न हुए विकल्प से लक्ष्मणजी को ऐसा गहरा आघात लगा कि उनकी तुरन्त मृत्यु हो गई । द्रव्यायुष्य और कालायुष्य दोनों एक साथ ही पूर्ण हुई ।

2. एक सार्थवाह बहुत समय के बाद परदेश से अपने घर आ रहा था । उसके आने से पूर्व उसके मित्र ने स्त्री के प्रेम की परीक्षा करते हुए कहा- तुम्हारे पति की मृत्यु हो गई । यह समाचार सुनते ही स्त्री मृत्यु को प्राप्त हो गई । सार्थवाह घर में आया । पत्नी की मृत्यु की बात सुन वह भी उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो गया । ये दोनों दृष्टान्त स्नेह से मृत्यु को प्राप्त होने के हैं ।

प्रश्न- 129. खूब जानकारी मिली अब भय का दृष्टान्त समझाएँ ?

उत्तर- 3. भय से मृत्यु- श्री कृष्णजी के पुत्र गजसुकुमाल ने परमात्मा नेमिनाथ प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की । मोक्ष की उत्कण्ठा इतनी जोरदार थी कि प्रभु की आज्ञा लेकर उसी दिन श्मशान में जाकर काउस्सग्ग ध्यान में लीन हो गए ।

उधर से ससुर सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमाल को मुनि अवस्था में देखा सोचने लगा- अरे ! यह तो साधु बन गया । मेरी बेटी को कुँवारी रख दिया । ऐसा सोचते ही उस ससुर सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाल बान्ध दी । उस पर अंगारे भर दिए । मुनिवर समभाव में लीन बने रहे । ससुर ने मुझे मोक्ष की पगड़ी बान्धी है, उसके उपकार को ध्यान में लेकर घाती-अघाती कर्मों को खपाकर मोक्ष में चले गए ।

सोमिल ससुर ने जैसे ही नगर में प्रवेश किया सामने ही कृष्ण वासुदेव को आते देखा और भय लगा हाय ! अब मेरा क्या होगा ? कृष्ण मुझे मार डालेगा । ऐसे अध्यवसाय भय के कारण पैदा होते ही ऐसा आघात लगा कि द्रव्य आयुष्य पूर्ण हुई और मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

प्रश्न- 130. आयु टूटने के अन्य कारण समझाएँ ?

उत्तर- दूसरा कारण 2. निमित्त- दण्ड-शस्त्र-जहर पीने से आदि निमित्तों से आयु का क्षय होता है ।

3. आहार- अधिक आहार करने से जैसे कंडरीक मुनि खाने में लुब्ध होने से, दीक्षा छोड़ राजा बनने के बाद अकाल में मृत्यु होने से सातवीं नरक में गए । सम्प्रति महाराजा पूर्वजन्म में द्रमक अति आहार करने से मृत्यु को पाए बारम्बार खा-खा करने से, अति-

स्निग्ध आहार के कारण रोग हो जाने से, शरीर को प्रतिकूल आहार देने से भी आयुष्य टूट जाती है ।

4. वेदना— शूलादि भयंकर बिमारियों से, कैंसर से भी अकाल मृत्यु हो जाती है ।

5. पराघात— गहरे गड्ढे में गिर जाने से, सातवीं मंजिल से गिरने से, पर्वतादि के ऊपर से झंपापात करने से, गाड़ी नीचे आ जाने से ऐसे कारणों से भी अकाल मृत्यु होती है ।

6. स्पर्श— तालपुट जहर के स्पर्श होने से, विषकन्या स्पर्श से, भयंकर सर्प—अग्नि के स्पर्श से अकाल मृत्यु हो जाती है ।

7. श्वासोश्वास— दमे आदि व्याधि के कारण अत्याधिक श्वासोश्वास जोर—जोर से लेने से या श्वासोश्वास रुक जाने से भी अकाल मृत्यु हो जाती है ।

उपरोक्त सात कारणों से आयुष्य कर्म के पुद्गल प्रतिसमय अधिक से अधिक भोगने से जीव की आयु अकाल में ही पूर्ण हो जाती है ।

प्रश्न— 131. नरकायु बन्ध का मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर— नरक की आयुष्य का मुख्य कारण सौद्रघ्यान है । वह सौद्रघ्यान चार प्रकार का है ।

1. हिंसानुबन्धी— प्राणियों की हिंसा करने का तीव्र परिणाम । सतत उसी की विचारणा । कालसौरिक कसाई हिंसा के तीव्र भाव में सतत रहने से मर कर सातवीं नरक में गया ।

2. मृषानुबन्धी— असत्य बोलने का तीव्रता पूर्वक सतत चिन्तन । जैसे वसुराजा मरकर नरक में गया ।

3. स्तेयानुबन्धी— चोरी करने की तीव्र विचारणा । सतत उसी का परिणाम ।

4. संरक्षणानुबन्धी— अमर्यादितपणे परिग्रह इकट्ठा करना । उसके रक्षा की सतत चिन्ता करना । मम्मण सेठ धन में तीव्र आसक्त बना तो नरकायु बान्धकर सातवीं नरक में गया । रात्रि भोजन—सात व्यसनों का सेवन करने से नरकगति में न जाना हो तो आज से उपरोक्त बातों में ब्रेक लगा देनी चाहिए ।

प्रश्न— 132. तिर्यचगति बन्ध का मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर— शैद्रध्यान नरकगति का कारण है तो आर्त्तध्यान तिर्यचगति का कारण है । वह भी चार प्रकार का है ।

1. इष्टवियोग आर्त्तध्यान— जो वस्तु या व्यक्ति अपने को अच्छी लगती हो उसके चले जाने से शोक—संताप—आक्रन्दन करना । जैसे व्यापार में नुकसान हो जाने पर, पुत्र—पत्नी—माता की मृत्यु होने पर करुण विलाप करना । इसे आर्त्तध्यान कहते हैं । रूपसेन कुमार अपनी इष्ट सुनन्दा के वियोग से आर्त्तध्यान करने के कारण मरने के बाद सर्प, कौआ, हंस, हरिण हाथी आदि का अवतार लेना पड़ा ।

2. अनिष्ट संयोग— जो वस्तु अपने को प्रिय न हो, अच्छी न लगती हो, वही वस्तु अपने पास आए जाए तो सारा दिन—रात यही विचारणा करते रहना कि यह कब दूर होगी ? ऐसा विचार अनिष्ट संयोग आर्त्तध्यान कहलाता है ।

3. चिन्ता— शरीर में कोई रोग हो जाए अथवा कोई प्रसंग उपस्थित हो जाए तब जो चिन्ता होती है उसे चिन्ता आर्त्तध्यान कहते हैं ।

4. निदान— भविष्य के सुख की चिन्ता करनी कि स्वयं द्वारा की

गई तपस्या आदि धर्मारधना के बदले परभव में सांसारिक फल की अपेक्षा रखना । नियाणा करना । यह भी निदान आर्तध्यान है । आर्तध्यान करने से तथा माया करने से भी तिर्यचायु का बन्ध होता है ।

प्रश्न- 133. मनुष्यायु का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर- दान की रुचि वाला, अल्प परिग्रह वाला, अल्प कषायी, विनय, सरलता, नम्रता आदि गुणों से युक्त मनुष्यायु का बन्ध कर सकता है ।

प्रश्न- 134. देवायु का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर- सम्यक्त्वी जीव, श्रावक जीवन जीने वाला, साधु जीवन का पालन करने से, दुःखों को सहने से, अनिच्छा से भी तपश्चर्या आदि करने से देवलोक की आयु का बन्ध होता है । देवगुरु की भक्ति करने वाला, धर्मश्रवण, सुपात्रदान देने वाला सामायिक आदि करने से भी देवायु का बन्ध होता है ।

प्रश्न- 135. आयुष्य कर्म किसके समान है ?

उत्तर- आयुष्य कर्म बेड़ी के समान है । जैसे पुलिस चोरादि को पकड़कर बेड़ी पहनाकर जेल में डाल देती है । अपने अपराध की सजा भोगने के लिए मर्यादित समय तक जेल में रहना ही पड़ता है । वैसे ही आयुष्य कर्म आत्मा को पकड़कर शरीर रूपी जेल में डाल देता है । जब तक आयुष्य कर्म का समय पूरा नहीं होता तब तक आत्मा को शरीर में रहना पड़ता है ।

प्रश्न- 136. भगवान महावीरस्वामीजी ने गर्भ में अभिग्रह क्यों किया था ? जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे दीक्षा नहीं लूँगा ?

उत्तर- प्रभु महावीरस्वामीजी ने अपने अवधिज्ञान के बल से देख लिया था

कि माता-पिता की आयुष्य को उपक्रम लगेगा वह अकालमृत्यु को प्राप्त करेंगे । सर्वजीवों का हित करने वाली सर्वविरति जीवन की प्राप्ति माता-पिता के मरण में निमित्त बनेगी और माता-पिता का मरण दीक्षा जीवन के लिए अमंगल रूप बनेगा । कहीं ऐसी दुर्घटना घटित न हो जाए इसीलिए परमात्मा ने अभिग्रह किया कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक दीक्षा नहीं लूँगा । अगर माता-पिता की आयुष्य सोपक्रमी न होती तो प्रभु को ऐसे अभिग्रह की जरूरत नहीं पड़ती ।

प्रश्न- 137. तो क्या आजकल भी ऐसा अभिग्रह करना चाहिए ?

उत्तर- नहीं ! नहीं ! जिनके पास अपने माता-पिता की आयुष्य कितनी है ? उस का ज्ञान नहीं, वह परमात्मा का उदाहरण लेकर दीक्षा नहीं लेनी, जब तक माता-पिता जीवित हैं, कैसे सोच सकते हैं ?

हाँ ! अगर परमात्मा का उदाहरण ही लेना है तो माता-पिता की मृत्यु बाद भगवान ने दीक्षा ली थी तो जिनके माता-पिता की मृत्यु हो गई हो तो प्रत्येक को दीक्षा लेनी ही चाहिए । यह भी अभिग्रह लेना चाहिए ।

## छठा कर्म - नाम कर्म

प्रश्न- 138. नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- आत्मा का गुण अरूपी है । उस अरूपीगुण को ढँकने वाला कर्म नाम कर्म कहलाता है । जिस प्रकार नाटक मण्डली के नायक नट को जो-जो वेश धारण करने के लिए कहा जाए उसे वहीं वेश धारण करना ही पड़ता है इसी प्रकार नाम कर्म आत्मा को भी रूप-यश-स्वर-दुःस्वर-अपयश आदि को धारण कराकर संसार

रूपी मण्डप में नाचना ही पड़ता है । आत्मा को पराधीन बनाकर नचाने वाला कर्म नाम कर्म कहा जाता है ।

प्रश्न- 139. नामकर्म किसके समान है ?

उत्तर- नामकर्म चित्रकार के समान है । जिस प्रकार चित्रकार रंग-बिरंगे अलग-अलग प्रकार के अच्छे-बुरे चित्र बनाता है उसी प्रकार नाम कर्म भी शुभाशुभ शरीर सम्बन्धी रचनाओं को करता है ।

प्रश्न- 140. नाम कर्म कौन-कौन से कार्य करता है ?

उत्तर-

1. जैसे अंग्रेजों की गौरवर्ण चमड़ी, चीनी लोगों की पीली चमड़ी, हबशीओं की काली चमड़ी ये सब नाम कर्म की ही करामात है ।
2. कोयल की मीठी वाणी - कौए की कर्कश वाणी में भी नाम कर्म की ही विशेषता है ।
3. नीबू खट्टा क्यों ? आम मीठा क्यों ? करेला कड़वा क्यों ? यह सब नाम कर्म की ही विलक्षणता है ।
4. हाथी का शरीर बड़ा, कीड़ी का शरीर छोटा क्यों ?
5. आकाश में उड़ सके इसके लिए पक्षियों का पंख वाला शरीर किसने बनाया ?
6. किसी को एक तो किसी को दो-तीन-चार-पाँच इन्द्रियाँ क्यों? नाम कर्म ही कारण है ।
7. किसी को मोर, किसी को देव, किसी को दानव, किसी को मानव, किसी को पशु अलग-अलग प्रकार के शरीर को देने वाला कौन ? नाम कर्म ।
8. अलग-अलग प्रकार के स्पर्श अर्थात् ठण्डा-गर्म-रूक्ष स्निग्ध का कारण कौन ? नामकर्म ।



प्रश्न- 141. नामकर्म के कुल कितने भेद है ? वर्णन करें ।

उत्तर- नामकर्म के कुल 103 भेद हैं ।

1. पाँच प्रकार के शरीर जैसे औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-कर्मण ये भी नामकर्म के उदय से मिलते हैं ।

2. नन्दन राजर्षि के भव में प्रभु महावीरस्वामीजी की आत्मा ने सभी जीवों के प्रति असीम करुणा का चिन्तन करते हुए तीर्थकर नाम कर्म बान्धा यह इसी नामकर्म का भेद है ।

3. पुत्र-पुत्री को माता-पिता हित की-भले की बात करते हैं, उस बात से माता-पिता के प्रति आदर बढ़ने की अपेक्षा अनादर भाव बढ़ जाता है तब सन्तान के प्रति तिरस्कार भाव पैदा करने की जरूरत नहीं है । अच्छी बात निःस्वार्थ भाव से कहने पर भी अपनी बात को कोई नहीं स्वीकारता इसमें अपना ही अनादेय नाम कर्म कारण है ।

4. कई बार ऐसा भी होता है मित्रों के द्वारा अपने अहित की बात भी स्वीकार कर ली जाती है उसी को सत्य मान लेते हैं इसमें उन मित्रों का आदेय नाम कर्म कारण है ।

5. किसी का कण्ठ बहुत सुरीला होता है सुनना अच्छा लगता है तो समझे सुस्वर नाम कर्म कारण है । सुरीली आवाज होने पर भी दूसरों को अप्रिय लगे तो अपना दुःस्वर नाम कर्म का उदय समझें ।

6. कई बार व्यक्ति कहता है कि पू. महाराज श्रीजी ! मैं अपने कुटुम्ब-परिवार के लिए कितनी तनतोड़ मेहनत करता हूँ । संघ-समाज-नगर के कार्य भी सम्भालता हूँ तो भी मुझे कोई यश नहीं मिलता उल्टा अपयश ही मिलता है क्या करूँ ? समझ नहीं

आता । अगर निःस्वार्थ भाव से संघ-समाज के कार्य करने पर भी यश के बदले अपयश मिलता है तो किसी को भी दोषी ठहराए बिना अपने अपयश नाम कर्म को दूर करने का प्रयत्न करना आवश्यक है ।

7. कई बार काम कोई करता है यश स्वयं को मिलता है उसके पीछे उस व्यक्ति का यश नाम कर्म कारण है ।

8. पाँच प्रकार की जाति अर्थात् एकेन्द्रिय-दोइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रिय-पचेन्द्रिय ये पाँच जाति नाम कर्म ।

9. किसी को हंस जैसी गति तो, किसी की कौए जैसी यह भी शुभ विहायोगति-अशुभ विहायोगति नाम कर्म कारण है ।

प्रश्न- 142. नाम कर्म का अधिक प्रभाव किस के रूप पर पड़ता है ?

उत्तर- नाम कर्म का मुख्यतः शरीर उपर प्रभाव पड़ता है । जैसे किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व ही ऐसा होता है कि सामने वाला देखते ही प्रभावित हो जाता है । यह पराघात नाम कर्म है ।

अपने शरीर के सभी अवयव यथास्थान पर व्यवस्थित जैसे मुख में ही दाँत है- हाथ-पाँव स्वस्व स्थान पर है यह सब निर्माण नाम कर्म का ही उपकार है ।

रावण अष्टापद तीर्थ पर भक्ति करते हुए, मंदोदरी नृत्य कर रही है रावण वीणा बजा रहे हैं वीणा का तार टूटते ही भक्ति में विघ्न न आए रावण ने अपनी जंघा से नस निकाल तार रूप में उपभोग कर संगीत चालू रखा, हृदय में रहे भावोल्लास से तीर्थकर नाम कर्म बान्धा । इस प्रकार मुख्य-मुख्य भेदों का वर्णन किया है ।

प्रश्न- 143. नामकर्म का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर— नामकर्म की प्रकृतियाँ दो प्रकार की हैं ।

1. शुभ नाम कर्म, 2. अशुभ नाम कर्म ।

शुभ नाम कर्म का बन्ध— सरलता रखने से, तीन प्रकार के गारव रहित ।

1. ऋद्धि गारव यानि धन आदि का अभिमान करना ऋद्धि गारव कहलाता है ।

2. रस गारव अर्थात् अच्छे-अच्छे पकवान मिलने पर गर्व करना रस गारव कहलाता है ।

3. साता गारव— आरोग्य का अभिमान करना साता गारव कहा जाता है ।

तीनों प्रकार के गारव रहित, क्षमा—मृदुता आदि गुणों वाला शुभ नाम कर्म बान्धता है ।

प्रश्न— 144. अशुभनाम कर्म का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर— मायावी व्यक्ति, गलत साक्षी देने वाला, देवद्रव्य—ज्ञानद्रव्य—समाज सेवादि संस्था का धन खाने वाला कामण—टूमण करने वाला, वशीकरण करने वाला, तीव्र कषाय वाला अशुभ नाम कर्म की प्रकृतियों को बान्धता है ।

प्रश्न— 145. नाम कर्म सम्बन्धी कुछ उदाहरण दीजिए ?

उत्तर— सुस्वर नाम कर्म — कोयल का

यश नाम कर्म — श्रीपाल महाराजा—अभयकुमार

दुःस्वर नाम कर्म — कौआ, गधा

अपयश नाम कर्म - धवल सेठ, कोणिक

अशुभ शरीर नाम कर्म - मृगा लोढिया

सुरभि नाम कर्म - गुलाब का फूल

दुर्गन्ध नाम कर्म - सड़ा हुआ कलेवर

मधुर रस नाम कर्म - गन्ना

आदेय नाम कर्म - भगवान पार्श्वनाथजी

उज्ज्वल वर्ण नाम कर्म - चन्द्रमा

स्थिर नाम कर्म - दाँत

स्थावर नाम कर्म - वृक्ष

जिन नाम कर्म - तीर्थकर पद

गति नाम कर्म - 4 गति में से एक आदि ।

प्रश्न- 146. सबसे अधिक भेद किसको ?

उत्तर- इस प्रकार आठों कर्मों में से सबसे अधिक भेद नाम कर्म के हैं । क्योंकि अलग-अलग प्रकार के जीवों के शरीर की रचना में जो अनेक प्रकार की विविधता-विलक्षणता दिखाई देती है वह सब नाम कर्म के कारण ही है । क्योंकि शरीर सम्बन्धी जितने भी कार्य दृष्टिगोचर होते हैं वह सभी नाम कर्म के ही प्रभाव से है । हड्डियों की मजबूती, शरीर के आकार की रचना अंगोपांग आदि नाम कर्म का ही उपकार है । इसीलिए सबसे अधिक भेद इसी कर्म के हैं ।

## सातवाँ कर्म - गोत्र कर्म

प्रश्न- 147. गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस कर्म के उदय से जीव को ऊँच संस्कार वाले कुल में अथवा निम्न संस्कार वाले कुल में जन्म हो उसे गोत्र कर्म कहते हैं ।

प्रश्न- 148. गोत्र कर्म के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर- गोत्र कर्म के दो भेद हैं ।

1. उच्च गोत्र- उच्च गोत्र के प्रभाव से ऊँचे कुल में जन्म होता है । जीवन भी मान सम्मानपूर्वक व्यतीत होता है ।
2. नीच गोत्र- नीच गोत्र के प्रभाव से (उदय से) हल्के कुल में जन्म मिलता है । जीवन में तिरस्कार मिलता है ।

प्रश्न- 149. किन-किन जीवों को कौन-कौन से गोत्र कर्म का उदय होता है ?

उत्तर- नरकगति के जीवों को तथा कुत्ता-बिल्ली आदि पशु-पक्षी रूप तिर्यच जीवों को नीच गोत्र कर्म का उदय होता है । देवों को सदा उच्च गोत्र का उदय माना गया है । मनुष्य गति में कितने मनुष्यों को उच्च गोत्र का तथा कितने मनुष्यों को नीच गोत्र का उदय होता है । परन्तु किसी भी जीव को दोनों गोत्र कर्म का उदय एक ही साथ में नहीं हो सकता ।

1. कर्ण का जन्म कुन्ती के पेट से होने पर भी नीच गोत्र कर्म के उदय से सारथी के घर में पालन-पोषण हुआ ।
2. भ. महावीरस्वामीजी को भी 82 दिन तक ब्राह्मणी की कुक्षी में रहना पड़ा यह नीच गोत्र कर्म के कारण ही ।

प्रश्न- 150. भ. महावीरस्वामीजी ब्राह्मण कुल में क्यों आए ?

उत्तर— प्रभु वीरस्वामीजी की आत्मा ने समकित के पश्चात् तीसरे भव में मरिची के भव में यह नीच गोत्र कर्म बान्धा था । साधना के बल से बहुत सारा कर्म क्षपित हो गया था । बाकी जो रहा था उस कर्म को भोगने के लिए प्रभु वीर को देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में आना पड़ा ।

प्रश्न— 151. भ. महावीरस्वामीजी का यह नीच गोत्र कब समाप्त हुआ ?

उत्तर— 82 दिन पूर्ण होते ही, नीच गोत्र समाप्त हुआ कि इन्द्र महाराजा को विचार आया कि मुझे प्रभु को उच्चकुल में लाना चाहिए । उसी समय इन्द्र महाराजा ने हरिणगमैषी देव को बुलाकर आदेश दिया परमात्मा को देवानन्दा की कुक्षी से लेकर महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षी में स्थापन करो । तब प्रभु महाराजा सिद्धार्थ के घर में पहुँचते ही ऊँच गोत्र कर्म का उदय चालू हुआ । 82 दिन तक देवानन्दा की कुक्षी में रखने वाला कर्म गोत्र कर्म है ।

प्रश्न— 152. देवानन्दा की कुक्षी में प्रभु का च्यवन हुआ है क्या यह इन्द्र को पता नहीं चला ?

उत्तर— ना ! वैसे तो सभी तीर्थकरों के च्यवन—जन्म—दीक्षा केवलज्ञान—मोक्ष कल्याणक समय 14 राजलोक में प्रकाश हो जाता है । इन्द्र महाराजा का सिंहासन कम्पायमान होता है फिर परमात्मा के कल्याणक का महोत्सव मनाते हैं परन्तु भ. महावीरस्वामीजी का ऐसा निकाचित गोत्र कर्म था कि सदैव चली आ रही परम्परा को भी स्तम्भित कर दिया । प्रभु वीरस्वामी का च्यवन कल्याणक जब हुआ तब इन्द्र महाराजा का सिंहासन कम्पायमान ही न हुआ । अगर आषाढ़ सुदि छठ के दिन इन्द्र का सिंहासन चलायमान हुआ होता तो इन्द्र म. उसी दिन उन को त्रिशला कुक्षी में स्थापन कर देते । परन्तु कर्म सत्ता की करामात विचित्र है । उसने सिंहासन ही कम्पने नहीं दिया

82 दिन तक प्रभु को वहीं रहना पड़ा । जब नीच गोत्र पूर्ण होने की तैयारी थी तब इन्द्र म. ने अवधिज्ञान का उपयोग दिया । परमात्मा वीर प्रभु को 82 दिन तक देवानन्दा की कुक्षी में पकड़े रखने वाला सातवाँ कर्म गोत्र कर्म है ।

प्रश्न- 153. गोत्र कर्म किसके समान है ?

उत्तर- गोत्र कर्म कुम्भार के समान है । कुम्भार द्वारा बनाया गया अच्छा घड़ा घी, दूध आदि भरने के काम भी आता है । कई घड़े मंगल कलश के रूप में भी स्थापन किए जाते हैं । कुम्भार कई घड़े ऐसे भी बनाता है जिसमें मदिरा आदि भरी जाती है ऐसे घड़े लोक में निन्दनीय एवं तिरस्कार के पात्र बनते हैं तो कई अपमान-तिरस्कार वाले हल्के कुल में उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न- 154. ऊँच गोत्र कर्म का बन्ध कैसे होता है ?

- उत्तर-
1. गुणग्राही- दूसरों के गुणों को देखने वाला तथा दोषों की उपेक्षा करने वाला जीव ऊँच गोत्र बान्धता है ।
  2. मद रहित- जाति, कुल, ऐश्वर्य, लाभ, बल, रूप, तप और श्रुत (विद्या) युक्त होने पर भी अहंकार रहित जीव ऊँच गोत्र का बन्ध करता है ।
  3. पढ़ने-पढ़ाने की रूचि रखने वाला - पढ़ने वालों के प्रति हार्दिक बहुमान रखने वाला भी ऊँच गोत्र बान्धता है ।
  4. जिनेश्वर परमात्मा, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, चैत्य, मात-पिता की भक्ति करने वाला ऊँच गोत्र बान्धता है ।
  5. स्वनिन्दा-परप्रशंसा करने वाले जीव ऊँच गोत्र बान्धते हैं । ऊँच गोत्र कर्म के उदय से जीव ऐश्वर्य, सत्कारादि से युक्त उत्तम जाति एवं उत्तम कुल में जन्म लेता है ।

प्रश्न- 155. नीच गोत्र कर्म का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर-

1. जातिमद करने से- मेरी जाति कितनी महान स्वयं को प्राप्त उत्तम जाति का अभिमान करने से नीचगोत्र कर्म का बन्ध होता है । हरिकेशी ने पूर्वभव में स्वयं की जाति का मद किया तो अगले भव में उसे चाण्डाल रूप में जन्म लेना पड़ा ।

2. कुलमद करने से- माता के कुल को जाति कहते हैं । जबकि पिता के पक्ष को कुल कहा जाता है । मरिची (प्रभु वीर की आत्मा) अपने कुल का मद करते हुए नृत्य करने लगा और बोलने लगा- मेरा कुल कितना महान् ! मेरा दादा (ऋषभदेव) प्रथम तीर्थंकर ! मेरे पिता भरत प्रथम चक्रवर्ती, मैं (मरिची) प्रथम वासुदेव बनूँगा । इस प्रकार कुल का मद करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध हुआ । नीचगोत्र कर्मोदय से उन्हें देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में 82 दिन तक रहना पड़ा ।

3. दूसरों की निन्दा करने से- दूसरे व्यक्तियों के दोषों को देखने से, उनकी निन्दा करने से, किसी को कलंकित करने से, आक्षेप करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है ।

4. स्वप्रशंसा करने से- अपने गुणों का दूसरों के पास बयान करने से स्वगुणों की प्रशंसा करने से नीचगोत्र कर्म का बन्ध होता है । जीवन में की गई सुन्दर दान-तप आदि की आराधना की स्वप्रशंसा करने से पुण्य क्षीण हो जाता है ।

5. धर्मीजनों की हँसी करने से- धर्म की आराधना करने वाले जीवों की मशकरी करने से, उन्हें धर्म का पूँछड़ा ढोंगी आदि शब्दों से बोलने पर भी नीचगोत्र कर्म का बन्ध होता है ।

6. दुर्गन्ध करने से- साधु-साध्वी जी के मलीन वस्त्रों को देखकर



घृणा करने से, हँसी करने से नीचगोत्र कर्म का बन्ध होता है दुर्गच्छ करने से पूर्वभव में मेतारज मुनि ने नीचगोत्र कर्म बान्धा था जिसके उदय से उन्हें चाण्डाल कुल में उत्पन्न होना पड़ा । अगर नीच कुल में जन्म न लेना हो तो उपरोक्त बातों पर चिन्तन-मनन करके इन का त्याग कर देना चाहिए ।

## आठवाँ कर्म - अन्तराय कर्म

प्रश्न- 156. अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- आत्मा अनन्त शक्ति का स्वामी है । इस अनन्त शक्ति को ढँकने वाला कर्म अन्तराय कर्म कहलाता है ।

प्रश्न- 157. अन्तराय कर्म को विशेष रूप से वर्णन करें ।

उत्तर- सुबह से लेकर शाम तक तन-तोड़ मेहनत करने पर भी धनादि का लाभ क्यों नहीं होता ? अन्तराय कर्म ही कारण है ।

2. खाने के लिए बढ़िया भोजन बनाया । अचानक बाहर ग्राम से अतिथि आ गए । सारा भोजन उन्हें ही खिलाना पड़ा । स्वयं की इच्छा पूर्ण नहीं हुई ? क्यों ? अन्तराय कर्म ही कारण है ।

3. नए डिजाईन के वस्त्र बनाए, पहन कर पिकनिक पर जाने की तैयारी कर ही रहे थे अचानक किसी निकट के सम्बन्धी का मरण समाचार आ गया । नए कपड़े छोड़कर सादे वस्त्र पहनकर जाना पड़ा । इच्छा होने पर भी बढ़िया वस्त्र क्यों नहीं पहने गए ? ऐसा समाचार क्यों मिला ?

ऐसे अनेक प्रश्नों के सामने आठवाँ कर्म अन्तराय कर्म ही कारण है ।

4. नये कपड़े पहनते समय समाचार का आना, भोजन समय अतिथि का आ जाना यह सब निमित्त मात्र है मुख्य रूप से कर्म ही कारण है ।

प्रश्न- 158. अन्तराय कर्म सम्बन्धी अन्य घटनाएँ ओर भी बताएँ ?

उत्तर- तप-त्याग करने की भावना होते हुए भी क्यों नहीं कर पाते ? शक्ति क्षीण क्यों हुई ?

1. 50 किलो भार उठाने की क्षमता रखने वाले अब आधा किलो भी वजन नहीं उठा सकते क्यों ?

2. करोड़ों रुपए कमाने वाला व्यापारी भी आज 50 रुपए के लिए लाचारी का अनुभव कर रहा है । क्यों ?

3. 20 गुलाब जामुन खाने की शक्ति रखने वाला युवान आधी रोटी भी नहीं खा सकता ऐसी स्थिति क्यों ?

4. रोज नए-नए डिजाईन के वस्त्र पहनकर घूमने वाला युवान वस्त्र बिना ही भागना पड़ा क्यों ? इन सभी के पीछे कोई कर्म कारण है तो वह है अन्तराय कर्म ।

प्रश्न- 159. अन्तराय कर्म किस के समान है ?

उत्तर- अन्तराय कर्म को भण्डारी की उपमा दी गई है । जैसे राजा भण्डारी को कहें कि तू याचक आदि को दानादि दे देना । परन्तु भण्डारी प्रतिकूल हो तो याचक को कह देता है कि अभी समय नहीं है, कल आना । फिर बहाना बनाकर उसे अन्त में जाकर ना कह देता है इसी प्रकार जीव को दान देने की, वस्तु प्राप्त करने की इच्छा हो परन्तु अन्तराय कर्म कोई ना कोई विघ्न उपस्थित कर देता है जिससे दान देने की वस्तु प्राप्त करने की इच्छा होने पर वस्तु की प्राप्ति नहीं होती । महान कार्य करने की इच्छा हो तो महान कार्य

करने नहीं देता इसीलिए अन्तराय कर्म को भण्डारी की उपमा दी गई है ।

प्रश्न— 160. अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं ? वर्णन करें ।

उत्तर— अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं ।

1. दानान्तराय— दान—अपनी वस्तु दूसरों को देना दान कहा जाता है ।

मान लीजिए— दान देने की तीव्र भावना हो, दान देने के लिए धन आदि की पूरी समर्थता भी है । सामने वाला दान स्वीकारने की भावना भी रखता है तो भी दान न कर सके तो समझना चाहिए कि दानान्तराय कर्म अपना प्रभाव दिखा रहा है । जैसे कपिला दासी ।

2. लाभान्तराय— लाभ यानि प्राप्त, इच्छित वस्तु की प्राप्ति होनी लाभ कहा जाता है ।

मान लीजिए— किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा हो उस वस्तु को अपने लिए देना भी चाहता हो तो भी अपने को इच्छित वस्तु की प्राप्ति न हो तो उसमें लाभान्तराय कर्म ही कारण है ।

1. ऋषभदेव प्रभु को लाभान्तराय कर्म के उदय से एक वर्ष तक आहार नहीं मिला था ।

2. श्रीकृष्ण के भाई दंडण मुनि उनका भी लाभान्तराय कर्म का उदय था कि उनको गौचरी ही नहीं मिलती थी, इतना ही नहीं उनके साथ जो कोई अन्यमुनि भी गौचरी जाता तो उसे भी गौचरी नहीं मिलती । अपनी लब्धि से गौचरी मिले तो ही वापरना ऐसा निश्चय किया था । परन्तु लाभान्तराय कर्म के उदय से गौचरी प्राप्त नहीं होती दाता की इच्छा भी हो, स्वयं के लेने की इच्छा भी है, वस्तु भी तैयार है दंडण मुनि वोहरने जाए तो लाभान्तराय कर्म

के कारण कोई न कोई दोष ही लग जाता है गौचरी लिए बिना ही वापस आना पड़ता है ।

3. भोगान्तराय कर्म— जिस वस्तु को एक ही बार भोगा जाए उसे भोग कहा जाता है जैसे आहार, फूल, दूध, घी आदि । जीव के पास आहारादि भोग्य वस्तु प्रचुर मात्रा में हो, स्वयं उस का त्यागी भी न हो तो भोगान्तराय के उदय से वस्तु को भोग नहीं सकता । जैसे— मम्मण सेठ । डायबिटीज होने पर, मीठी वस्तु स्वयं बनाई हो खाने में स्वतन्त्र भी है तो भी खा नहीं सकते । बीमार होने पर डॉक्टर केवल (तरल पदार्थ) खाने को कहता है । भूख होने पर खा नहीं सकता । हार्ट अटैक के दर्दी को दूध, घी वाले पदार्थ अनिच्छा से भी छोड़ने पड़ते हैं । यह सभी किस कर्म के कारण ? भोगान्तराय कर्म का ही प्रभाव है ।

4. उपभोगान्तराय कर्म— जो वस्तु बारम्बार भोगी जा सके उसे उपभोग कहते हैं । जैसे वस्त्र, अलंकार, पैसा, मकान आदि वस्तुएँ उपभोग की सभी वस्तुएँ पास में हों, उपयोग करने की इच्छा भी हो तो भी उपभोग न कर सके तो उपभोग अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिए ।

जैसे— विधवा स्त्री अच्छे कपड़े आभूषण पहनने की क्षमता होने पर भी, वस्तु पास में होने पर भी उसका उपभोग न कर सके तो उपभोगान्तराय कर्म का उदय समझें ।

5. वीर्यान्तराय कर्म— वीर्य का अर्थ— शक्ति, बल, उत्साह, पराक्रम आदि । जीव को किसी भी कार्य के लिए उत्साह पैदा नहीं होता तो वीर्यान्तराय ही कारण है । कई बार शक्ति भी हो, इच्छा भी हो तो भी उपयोग न कर सकें उसमें यही कर्म कारण है ।

जैसे— पर्यूषण पर्व में अड्डाई करने की भावना हो, शरीर में शक्ति भी

है, घर के बड़ों की अनुमति भी मिल गई है परन्तु पर्यूर्पण के एक दिन पहले स्वास्थ्य ही बिगड़ गया अथवा घर के किसी निकट सम्बन्धी का एकसीडेंट हो गया, हॉस्पिटल भी बारम्बार जाना पड़ेगा आदि जिम्मेदारियाँ आने से अड्डाई न हो सकी उसमें वीर्यान्तराय कर्म का उदय है । अगर अन्तराय कर्म का उदय नहीं चाहिए तो अन्तराय कर्म बान्धने के कार्यों को आज से बन्द कर देना चाहिए ।

प्रश्न- 161. अन्तराय कर्म के बन्ध के कारण समझाएँ ।

उत्तर-

1. जिन पूजा में अन्तराय करने से ।
2. जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथून, परिग्रह, रात्रिभोजन में आसक्त रहने से ।
3. भव्य जीवों को मोक्षमार्ग से पतित करने वाला ।
4. साधु-साध्वी जी म. को आहार-पानी, उपाश्रय औषध आदि में निषेध करने वाला ।
5. अन्य जीवों को दान, लाभ, भोग, उपभोग में अन्तराय करने से
6. दान देने के बाद पश्चात्ताप करने से ।
7. धर्मक्रिया में प्रमाद करने से, अविधि पूर्वक करने से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है ।

प्रश्न- 162. अन्तराय कर्म को तोड़ने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर-

शुभ कार्यों में अगर विघ्न आते हों तो पूर्वभव के कर्म का उदय मानकर आर्त्तध्यान नहीं करना परन्तु धर्म की आराधना, दानादि के कार्य दूसरों के पास करना, जो कर रहे हों उनकी अनुमोदना करना इससे नए कर्मों का बन्ध नहीं होगा तथा पुराने कर्मों का क्षय होगा ।

प्रश्न- 163. आठों कर्मों के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर-	ज्ञानावरणीय कर्म के -	5 भेद
	दर्शनावरणीय कर्म के -	9 भेद
	वेदनीय कर्म के -	2 भेद
	मोहनीय कर्म के -	28 भेद
	आयुष्य कर्म के -	4 भेद
	नामकर्म के -	103 भेद
	गोत्र कर्म के -	2 भेद
	अन्तराय कर्म के -	5 भेद

---

158 भेद हैं ।

---

प्रश्न- 164. आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी-कितनी है ?

- उत्तर-
1. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तराय कर्म इन चारों की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोटा-कोटि सागरोपम की है ।
  2. मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोटा-कोटि सागरोपम की है ।
  3. नाम और गोत्र कर्म की 20 कोटा-कोटि सागरोपम की है ।
  4. आयुष्य कर्म की 33 सागरोपम की है ।

प्रश्न- 165. आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर— वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति— 12 मुहूर्त की है । नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति— 8 मुहूर्त है । शेष सभी कर्मों की अन्तमुहूर्त स्थिति है ।

प्रश्न— 166. सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि में क्या अन्तर है ?

उत्तर— सम्यग्दृष्टि— 1. ज्ञानी होता है । 2. सर्वज्ञकथित तत्त्वों पर पूर्ण श्रद्धा होती है । 3. मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्यपूर्वक धार्मिक क्रिया करता है । 4. आत्मिक विकास के साधन मिलने पर आनन्द का अनुभव करता है । 5. स्याद्वाद दृष्टि वाला होता है । 6. आत्मा और शरीर के भेद ज्ञान वाला होता है ।

मिथ्यादृष्टि— 1. अज्ञानी होता है । 2. सर्वज्ञ कथित तत्त्वों पर श्रद्धा नहीं होती । 3. सांसारिक सुख सामग्री के लक्ष्य को लेकर धार्मिक क्रिया करता है । 4. सांसारिक सुख सामग्री मिलने पर आनन्दित होता है । 5. एकान्तवादी होता है । 6. आत्मा और शरीर को एक समझता है ।

प्रश्न— 167. ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म तथा आयुष्य कर्म में क्या अन्तर है ?

उत्तर— ज्ञानावरणीय आदि 7 कर्म— 1. ज्ञानावरणीय आदि सातों कर्मों को जीव समय—समय बान्धता है ।

2. सातों ही कर्मों को रसोदय तथा प्रदेशोदय से भोगा जाता है ।

3. सातों कर्मों में स्थिति और रस का उद्वर्तना (बढ़ना) तथा घटना (अपवर्तना) हो सकता है ।

4. ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोटा—कोटि सागरोपम, मोहनीय की 70 कोटा—कोटि सागरोपम, नाम गोत्र की 20 कोटा—कोटि सागरोपम है ।

आयुष्य कर्म— 1. आयुष्य कर्म केवल एक भव में एक बार ही बान्धा जाता है ।

2. आयुष्य कर्म रसोदय से ही भोगा जाता है ।

3. आयुष्य कर्म में अपवर्तनीय आयुष्य हो तो स्थिति घट सकती है परन्तु बढ़ नहीं सकती ।

4. आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागरोपम ही है ।

प्रश्न— 168. क्या बान्धे हुए सभी कर्म भोगने ही पड़ते हैं ?

उत्तर— नहीं ! कर्म भी दो प्रकार के होते हैं ।

1. निकाचित कर्म, 2. अनिकाचित कर्म ।

1. निकाचित कर्म— निकाचित कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । इन निकाचित कर्मों को आठ करण में से एक भी करण (उपक्रम) लागू नहीं होता । परन्तु जब जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़े तो निकाचित कर्मों को समाप्त कर सकता है ।

2. अनिकाचित कर्म— अनिकाचित कर्मों का अबाधाकाल के दौरान तप, त्याग, वैराग्य, समताभाव, प्रभु भक्ति द्वारा समाप्त किया जा सकता है ।

प्रश्न— 169. अबाधाकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर— सामान्य रूप से कर्म स्थिति दो प्रकार की होती है ।

1. अबाधाकाल स्थिति, 2. बिपाककाल स्थिति ।

कर्म बान्धने के पश्चात् जब तक वह उदय में नहीं आते आत्मा में शान्तभाव से पड़े रहते हैं वह अबाधाकाल कहा जाता है ।



जब वह कर्म उदय में आ जाते हैं उन्हें विपाककाल कहा जाता है ।

प्रश्न- 170. अबाधाकाल में कर्मों का फेरफार कैसे होता है ?

उत्तर- जो कर्म निकाचित न बना हो तो अबाधाकाल में बहुत ही फेरफार हो सकता है । जैसे- साता वेदनीय के रूप में बान्धा हुआ कर्म अशाता वेदनीय कर्म के रूप में संक्रमण हो सकता है । बान्धे हुए सजातीय कर्म में ही संक्रमण होता है । साता का असाता में, असाता का साता में । आयु कर्म में सजातीय में यह नियम लागू नहीं होता । जैसे मोहनीय कर्म का अन्तराय में, नामकर्म का गोत्र में ऐसे मूल प्रकृतियों में परस्पर संक्रमण नहीं होता । परन्तु उसी कर्म की उत्तरप्रकृतियों के साथ फेरफार हो सकता है ।

प्रश्न- 171. कर्मों की स्थिति को बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है ?

उत्तर- हाँ ! जिस रूप में कर्म को बान्धा उसका समय (स्थिति) तथा रस को बढ़ाया भी जा सकता है । स्थिति और रस का बढ़ना उद्वर्तना करण कहलाता है तथा स्थिति और रस का घटना (घट जाना) अपवर्तना करण कहलाता है ।

प्रश्न- 172. कर्मों का बढ़ना (उद्वर्तना) घटना (अपवर्तना) कैसे होता है ?

उत्तर- निकाचित कर्मों के बिना (जो कि बहुत थोड़े होते हैं) शेष अनिकाचित कर्मों को पुरुषार्थ द्वारा घटाया-बढ़ाया जा सकता है । ट्रांसफर न हो तो 100 वर्ष की स्थिति को 10 वर्ष की कर सकते हैं । पाप पुरुषार्थ से 10 वर्ष की स्थिति को 100 वर्ष की भी कर सकते हैं ।

जैसे 50 वर्ष तक बीमारी को भोगना या और तीव्रता पूर्वक वेदना को सहना था । परन्तु शान्तिकाल (अबाधाकाल) के समय गुरु वैयावच्च कर, प्रभु-भक्ति कर उन कर्मों की तीव्रता और वेदना में

फेरफार हो सकता है । 50 के बदले 5 वर्ष रह सकते हैं, तीव्रता के बदले मन्दरूप में वेदना होगी ।

अतः धर्मारधना-सत्कार्यों को करने के बाद उनकी बारम्बार अनुमोदना-प्रशंसा करने से पुण्य कर्म में वृद्धि होती है, पाप करने के बाद शान्तिकाल में पाप की प्रशंसा करने में आए तो पाप बढ़ जाएगा ।

जैसे कृष्ण महाराजा ! भावपूर्वक 18000 साधुओं को वन्दन करने से सातवीं नरक में ले जाने वाले तीव्र दुःख केवल तीसरी नरक के दुखों देने की ताकत वाले रह गए ।

प्रश्न- 173. कर्मों को समय से पहले भी उदय में लाया जा सकता है ?

उत्तर- हाँ ! जब कर्मों का शान्ति काल चल रहा हो उस शान्ति काल (अबाधाकाल) के पूर्ण होने से पहले ही कर्मों को उदय में लाकर, कर्मों का अनुभव करना उदीरणा करण कहलाता है ।

बाद में आने वाले कर्मों को, जल्दी ही उदय में ले आना यह कर्मों की उदीरणा कही जाती है । जैसे कि मान लीजिए- छुट्टी का दिन हो, पत्नी ने मन इच्छित रसोई बनाई उसमें गर्म-गर्म भजिया बनाया अनादिकाल से जीव को खाने के संस्कार तो हैं ही बस मनोनुकूल भजिया खाते रहो-खाते रहो, पेट पूरा भर लिया आसक्ति पूर्वक खाया तो क्या परिणाम आएगा ?

अब स्वास्थ्य बिगड़ेगा । पेट में वेदना होगी । पुष्कल प्रमाण में भजिया खाने से अशाता वेदनीय कर्म का उदय चालू हो गया जो अशातावेदनीय बहुत समय के बाद उदय में आना था जिसका अभी अबाधाकाल चल रहा था । उस आशातावेदनीय कर्म को खींचकर उदय में शीघ्र ले आए यानि कर्म की उदीरणा हुई ।

अगर पुष्कल प्रमाण में भजिया न खाया होता तो अशातावेदनीय कर्म की उदीरणा न होती । आबाधाकाल पूर्ण होता तभी अशाता-वेदनीय कर्म अपना प्रभाव दिखाता । इसलिए कर्मों को पहले भी उदय में लाया जा सकता है ।

प्रश्न- 174. उपशमना करण की व्याख्या समझाएँ ?

उत्तर- उपशमना कर्म केवल मोहनीय कर्म में ही असर करता है । जैसे कि आत्मा सबसे पहली बार जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है उसे उपशमन समकित कहते हैं । उस समय मिथ्यात्व को लाने वाला मिथ्यात्व मोहनीय कर्म है उस मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की एक अन्तमुहूर्त समय तक आत्मा ने जो उपशमना की अर्थात् उस समय तक मिथ्यात्व मोहनीय कर्म उदय में नहीं आया । उतने समय तक आत्मा मिथ्यात्वी नहीं बन सकता । उस कर्मदलिकों में जो अपरिवर्तनशील अवस्था पैदा हुई उसे उपशमना कहा जाता है ।

इस उपशमना करण में संक्रमण करण, उदवर्तना करण, अपवर्तना करण सिवाय अन्य कोई भी करण नहीं लगता ।

प्रश्न- 175. निद्धति करण किसे कहते हैं ?

उत्तर- कर्मों के बन्ध जाने के बाद जब शान्तिकाल चल रहा हो उस समय आत्मा में इस प्रकार के अध्यवसाय (भाव) पैदा हो जाएँ जिसके कारण कर्मों के समय में तीव्रता को घटाया या बढ़ाया जा सकता है परन्तु संक्रमण करण से कोई भी फेरफार नहीं होता । इसमें उदवर्तना और अपवर्तना ही करण लगते हैं इसके सिवाय कोई भी करण नहीं लगता । निद्धति करण में उदवर्तना और अपवर्तना ये दो करण जबकि उपशमना में इन दो के उपरान्त संक्रमण करण भी लग सकता है । उपशमना करण और निद्धति करण में यही अन्तर है ।

प्रश्न- 176. निद्धति किसे कहते हैं ?

उत्तर- कर्मों को बन्ध करते समय जितना-जितना रस (तीव्रता) अधिक होता है उतना-उतना कर्म का बन्ध गाढ़ होता है । रस के चार विभाग होते हैं ।

1. एकठाणिओ रस, 2. दो स्थानिय रस, 3. तीन ठाणिओ रस, 4. चार ठाणिओ रस ।

शुभ कर्मों में जघन्य से भी दो ठाणिओ रस होता है जबकि अशुभ कर्मों में जघन्य से एकठाणिओ रस भी हो सकता है । दोनों का उत्कृष्ट से 4 स्थानीय रस हो सकता है । आत्मा के साथ कर्मों का बन्ध 4 प्रकार का होता है ।

1. स्पृष्ट बन्ध- आत्मा के साथ कर्मस्कन्धों का केवल स्पर्श करके रहना । ऐसे कर्मों को अलग होते देर नहीं लगती । ऐसे कर्मों को स्पृष्ट बन्ध कहा जाता है ।

2. आत्मा के साथ कर्मों की अच्छी तरह चिपक जाना जिसे निकालते थोड़ी मुश्किल होती हैं ऐसे कर्मों को बद्ध बन्ध कहा जाता है ।

3. आत्मा के साथ गाढ़ पूर्वक अधिक रस वाले कर्मों का चिपकना निद्धत कहलाता है ।

4. निकाचित- आत्मा के साथ कर्मों का एकमेक हो जाना जिसे कोई करण भी न लगे और भोगना ही पड़े उसे निकाचित बन्ध कहते हैं ।

प्रश्न- 177. इन चार प्रकार के बन्ध को दृष्टान्त से समझाएँ ।

उत्तर- स्पृष्ट- जैसे लोहे का टुकड़ा हो उसके ऊपर सोयस्पर्श करके रखी हो तो कितना समय लगेगा अलग होने में ? तनिक भी नहीं । इसे कहते हैं स्पृष्ट ।

2. बद्ध— लोहे के टुकड़े के साथ सोय धागे से बान्ध कर रखी हो उसको अलग करते थोड़ा समय लगेगा जब धागा टूटेगा तभी सोय अलग होगी ।

इसे कहते हैं बद्ध बन्ध ।

3. निद्धत— लोहे के टुकड़े के साथ सोय को हथोड़ी से अच्छी तरह जमा कर रखी हो उसे अलग करते अधिक समय चाहिए ?

4. निकाचित— लोहे के टुकड़े के साथ सोय को भट्टी में गर्म करके एक रूप बना देना निकाचित बन्ध कहा जाता है ।

पहली तीन सोय तो ज्यादा से ज्यादा मेहनत से अलग की जा सकती है परन्तु चौथी सोय कैसे अलग हो सकती है ? ऐसा है निकाचित कर्म ।

प्रश्न— 178. आठवें करण निकाचना करण की व्याख्या समझाएँ ।

उत्तर— किए गए कर्म भोगने ही पड़ेंगे, भोगे बिना कर्मों का छुटकारा नहीं होता ऐसा जो सुनने में आता है वह निकाचित कर्मों के लिए समझना चाहिए ।

कर्मों को बान्धते समय, अथवा बान्धने के पश्चात् जब कर्मों का अबाधाकाल चल रहा हो उस समय आत्मा में क्लिष्ट भाव पैदा हो जाए तो कर्म निकाचित हो जाते हैं । अब उन कर्मों में अब कोई भी फेरफार नहीं हो सकता । भोगे बिना छुटकारा ही नहीं । भले कितना भी पश्चात्ताप क्यों न कर लें, कितनी भी उत्कृष्ट धर्माराधना क्यों न कर लें, उस पूर्व के निकाचित कर्मों में कोई भी फर्क नहीं पड़ेगा ।

प्रश्न— 179. क्या की गई धर्माराधना अथवा पश्चात्ताप निकाचित कर्मों के समय निष्फल हो जाता है ?

उत्तर— की गई धर्माराधना अथवा किया गया पश्चात्ताप निष्फल नहीं जाता । उससे नए पुण्य कर्म का बन्ध होगा तथा आत्मा में रहे अनिकाचित अशुभ कर्म नष्ट हो जाएँगे । परन्तु हो चुके निकाचित कर्मों में फेरफार नहीं होता ।

प्रश्न— 180. निकाचित कर्मों के कुछ दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर— 1. भगवान महावीरस्वामीजी ने समकित के बाद तीसरे भव में, मरिची के भव में कुल का अभिमान कर नीच गोत्र निकाचित बान्धा था, उन्हें भोगना ही पड़ा । 27वें भव में भी 82 दिन तक देवानन्दा नामक ब्राह्मणी की कुक्षी में रहना पड़ा । दो माता बनने का कलंक स्वीकारना पड़ा ।

25वें भव, नन्दनराजर्षि के भव में 11 लाख 80 हजार 645 मासक्षमण किए तो भी यह कर्म नाश न हुआ कारण कि वह निकाचित हो चुका था ।

2. 18वें त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में संगीत के स्वर बन्द न करने वाले शय्यापालक के कान में गर्म-गर्म सीसा तीव्र दुष्ट भाव से डलवाया कि कर्म निकाचित बान्ध लिया । प्रभु वीर के भव में साधना द्वारा कोई फेरफार न हुआ, कर्म उदय में आया कि कानों में कीले गढ़वाने पड़े ।

3. अरे ! केवलज्ञान के पश्चात् भगवान बन जाने के बाद भी निकाचित कर्मों ने नहीं छोड़ा । केवलज्ञान से 14 वर्ष पश्चात् मोक्ष जाने में अभी 16 वर्ष शेष हैं तब प्रभु के ऊपर गौशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी, जिससे प्रभु वीर को 6 मास तक खून के दस्त हुए निकाचित कर्म भगवान बन जाने पर भी नहीं छोड़ते ।

4. श्रेणिक महाराजा का नरक में जाना, सीता पर कलंक आना,

द्रोपदी के पाँच पति होना, पाण्डवों का वनवास आदि निकाचित कर्मों का ही फल है ।

प्रश्न- 181. निकाचित कर्मों का बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर-

1. जब अपने कोई भी अच्छा या बुरा कार्य करें तब उसमें मन वचन काया तीनों ही तल्लीन बन जाए, एकमेव हो जाए उस समय वह कर्म निकाचित बन सकता है ।

2. कोई शुभ अथवा अशुभ कार्य करने के पश्चात् उसकी अत्यन्त प्रशंसा करें तो शान्तिकाल में रहा वह कर्म निकाचित हो सकता है ।

3. वैसे तो पाप करना ही नहीं चाहिए परन्तु कभी किसी कारण करना ही पड़े तो वह पाप हँस-हँसकर नहीं करना उस पाप को अपने मन से नहीं करना । जब तक शरीर ही पाप करता है तब तक कर्म निकाचित नहीं बनता । अगर उसमें तीव्रता पूर्वक मन मिल गया तो कर्म निकाचित बनने की पूर्ण शक्यता है ।

अतः पाप करना पड़े तो तीव्र भाव से नहीं करना तथा पाप हो जाने के बाद पाप की कभी प्रशंसा भी नहीं करना ।

प्रश्न- 182. भ. महावीरस्वामीजी का परमभक्त श्रेणिक नरक में गया और गौशालक 12वें देवलोक में गया । क्या कारण होगा ?

उत्तर-

कर्म विज्ञान समझने के बाद कुछ भी आश्चर्य नहीं लगता । कर्म विज्ञान कहता है गौशाला इसलिए 12वें देवलोक में नहीं गया परन्तु भगवान की आशातना करने के बाद मुझसे घोरतिघोर पाप हो गया, अत्यन्त तीव्रभाव से ऐसा पश्चात्ताप किया कि अन्तिम समय समकित को प्राप्त कर लिया और पश्चात्ताप की तीव्रता के कारण 12वें देवलोक की भेंट प्राप्त हुई ।

श्रेणिक महावीर भगवान का भक्त था इसलिए नरक में नहीं गया परन्तु शिकार के शौकीन होने से हरिणी को तीर मारा हरिणी के पेट में रहा बच्चा भी निकल कर मर गया । हरिणी और बच्चा दोनों मरण की शरण को प्राप्त हुए । दो जीवों की हिंसा देख पश्चात्ताप तो दूर रहा उल्टा स्वयं को शाबासी देते हुए मैं कैसा उत्तम शिकारी ! एक तीर से दो को खत्म किया स्वयं के पाप की प्रशंसा करने से नरक में ले जाने वाला निकाचित कर्म बान्धा ।

अतः पाप करते समय सावधान रहना जरूरी है । खाते समय भोजन की, पहनते समय वस्त्र की, मौज-शौक की वस्तुओं की भूल से भी प्रशंसा न हो जाए, ध्यान रखें । स्कन्धक मुनिवर ने पूर्व भव में चीबड़े के फल की छाल उतार उसकी प्रशंसा की तो अगले भव में साधु बने तो शरीर की चमड़ी उतारनी पड़ी ।

प्रश्न- 183. जैन दर्शन का कर्मवाद किसकी प्रेरणा देता है ?

उत्तर- जैन दर्शन का कर्मवाद भव्य पुरुषार्थ की प्रेरणा देता है । कर्म में जो लिखा है वही होगा ऐसी निष्क्रियता का प्रेरक कर्मवाद नहीं है परन्तु सक्रिय बनाने वाला है ।

जैनधर्म का कर्मवाद हमें जीवन जीने की सही कला सिखाता है । दुःख में से बचने का और सुख प्राप्त का मार्ग दिखाता है । विनाश की खाई में से निकाल कर ऐवरेस्ट शिखर तक पहुँचने में सहायता करता है ।

कर्मवाद कहता है कि हे आत्मन् ! तुझे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है । जब तक कर्माणुओं का शान्ति काल चल रहा है तब तक बाजी तेरे हाथ में है । तू जैसा चाहे वैसा भावि निर्माण कर सकता है । तेरे जीवन का भाग्यविधाता तू स्वयं है ।

प्रश्न- 184. अबाधाकाल का श्रेष्ठ उपयोग किसमें करना चाहिए ?



उत्तर— अबाधाकाल यानि जब तक पाप कर्म उदय में नहीं आए हों तब तक धर्म में तीव्र पुरुषार्थ कर लेना चाहिए । अबाधाकाल में अशुभ कर्मों को तप-संयम की जोरदार साधना के द्वारा क्षीण कर देना चाहिए । मानव जीवन की सफलता हेतु सद्गुरु की सेवामें सदैव तत्पर रहना, परमात्मा की भावपूर्वक भक्ति करनी, सभी जीव सुखी बने ऐसी सतत भावना करनी जिससे परलोक में नारक-तिर्यचादि दुर्गतियों में नहीं जाना पड़ेगा ।

प्रश्न— 185. किस कर्म का कितना अबाधाकाल होता है ?

उत्तर— जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति जितने कोटा-कोटि सागरोपम प्रमाण होती है उस कर्म का उतने ही सौ वर्ष का अबाधाकाल होता है । जैसे किसी कर्म की स्थिति एक कोटा-कोटि सागरोपम की है तो उसकी स्थिति में 100 वर्ष का अबाधाकाल होता है । अर्थात् वह कर्म 100 वर्ष के बाद उदय में आएगा । वह 100 वर्ष का समय हमारे लिए ( Golden Peried ) अत्यन्त उपयोगी कहा जाएगा । उस 100 वर्ष में ही कर्मों का फेरफार कर सकते हैं ।

प्रश्न— 186. आठों कर्मों का स्वरूप समझने के बाद आत्मा में स्थिर कैसे बन सकते हैं ?

उत्तर— आठों कर्मों का विवेचन जानने के बाद कैसी भी परिस्थिति का सामना क्यों न करना पड़े, आत्मा में इस प्रकार चिन्तन करना—

1. हे आत्मन् ! तू वास्तव में अनन्तज्ञानी होने पर भी वर्तमान में जो अज्ञानता, मूर्खता का अनुभव कर रहा है बहुत-बहुत परिश्रम करने के बावजूद भी याद नहीं रहता । हे जीव ! उसका कारण ज्ञाना-वरणीय कर्म का विपाक है । इसे तोड़ने के लिए ज्ञान-ज्ञानी-ज्ञान के साधनों की भक्ति कर ।

2. हे चेतन ! तू वास्तव में अनन्तदर्शनी है । परन्तु वर्तमान में अन्धत्व, बहिरत्व, पेरेलीसीस-निद्रादि का अनुभव कर रहा है उसका कारण दर्शनावरणीय कर्म का विपाक है ।

3. हे आत्मन् ! तू वास्तव में परमानन्दी है तो भी तू शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख का अनुभव कर रहा है उसका कारण है वेदनीय कर्म का विपाक ।

4. हे आत्मन् ! तू तो वीतरागी है, तो भी इस समय वर्तमान में राग-द्वेष में फँसा हुआ है इसका कारण है मोहनीय कर्म का विपाक ।

प्रश्न- 187. चार कर्मों को बताने के बाद अन्य 4 कर्मों से आत्मा को कैसे स्थिर कर सकते हैं ?

उत्तर- हे चेतन ! तू तो अक्षय-अखण्ड जीवन का मालिक है तो भी जन्म और मरण के चक्र में पड़ा हुआ है इसका कारण आयुष्य कर्म का विपाक है ।

हे आत्मन् ! तू तो अरूपी-अनामी होने पर भी मनुष्य आदि रूपों को प्राप्त कर रहा है । लोगों का उपकार करने पर भी अप्रिय बना हुआ है । बहुत काम करने पर भी अपयश मिलता है । इन सबका कारण नामकर्म का विपाक है ।

हे चेतन ! तू तो अगुरु-लघु (ऊँच-नीच के भेद रहित) है तो भी कभी ऊँच कुल में तो कभी नीच कुल में जन्म ले रहा है उसका कारण है गोत्रकर्म का विपाक !

हे आत्मन् ! तू तो अनन्त शक्ति का मालिक है । तो भी दरिद्रता, अशक्ति, अनुत्साह का अनुभव कर रहा है उसमें कारण है अन्तराय कर्म का विपाक !

इन कर्मों को जानने के बाद कर्म रोग का निदान ही नहीं प्रत्युत कर्मों से मुक्त बनने का उपचार भी बताया गया है ।

प्रश्न- 188. कर्म स्वरूप की विचारणा पश्चात् अब क्या-क्या लाभ होंगे ?

उत्तर-

1. कर्म स्वरूप के चिन्तन के बाद जीव नए कर्मों के बन्ध को समाप्त कर पुराने कर्मों को समाप्त करने के लिए सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की आराधना अधिक से अधिक करेगा ।
2. आत्मिक गुणों का प्रगटीकरण होगा ।
3. आत्मा विभावदशा से स्वभावदशा की ओर सन्मुख बनेगी ।
4. प्रत्येक शुभक्रिया भावपूर्वक भी करेगा ।
5. सुन्दर आराधना द्वारा घातीकर्मों के नाश का ही प्रयास करेगा ।
6. अन्त में घाती-अघाती दोनों प्रकार के कर्मों को क्षपित कर मुक्ति सुख का भोक्ता बनेगा ।

प्रश्न- 189. घाती कर्म किसे कहते हैं ? वह कौन-कौन से हैं ?

उत्तर-

आठों कर्मों को दो भागों में विभाजित किया जाता है ।

1. घाती कर्म, 2. अघाती कर्म ।

घाती कर्म- जिनका सीधा सम्बन्ध आत्मा के साथ होता है तथा जो आत्मा के गुणों का घात (नाश) करते हैं उन्हें घाती कर्म कहते हैं वह 4 हैं । 1. ज्ञानावरणीय कर्म, 2. दर्शनावरणीय कर्म, 3. मोहनीय कर्म, 4. अन्तराय कर्म इन चारों घाती कर्मों के नाश से ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । इन चारों में से सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का नाश होता है तत्पश्चात् शेष तीनों कर्मों का ।

प्रश्न- 190. अघाती कर्म किसे कहते हैं ? वह कौन-कौन से हैं ?

उत्तर— अघाती कर्म— जिन कर्मों का सम्बन्ध शरीर के साथ होता है उन्हें अघाती कर्म कहते हैं । वह भी चार हैं ।

1. वेदनीय कर्म, 2. आयुष्य कर्म, 3. नाम कर्म, 4. गोत्र कर्म ।

घाती—अघाती इन आठों कर्मों के नाश से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न— 191. करण किसे कहते हैं ?

उत्तर— करण अर्थात् साधन । कर्मों को तोड़ने के लिए साधनों की आवश्यकता रहती है । इन करणों द्वारा ही कर्मों को तोड़ा जा सकता है ।

प्रश्न— 192. करण कितने होते हैं ? उनके नाम बताएँ ?

उत्तर— करण आठ होते हैं ।

1. बन्ध करण
2. संकमण करण
3. उदीरणा करण
4. उपशमना करण
5. उद्वर्तना करण
6. अपवर्तना करण
7. निघत्ति करण
8. निकाचना करण

प्रश्न— 193. बन्धन करण किसे कहते हैं ?

उत्तर— मन-वचन-काया द्वारा राग-द्वेष के अध्यवसायों से आत्मा कर्मण रजकणों को खींच कर अपने ऊपर चिपका लेती है तो आत्मा स्वयं कर्मों को बान्धती है । इन कर्मों को बान्धने में बन्धन करण कारण कहा जाता है ।

अर्थात् कर्मबन्ध में जो अध्यवसाय वहीं बन्धन करण ।

प्रश्न- 194. बन्धन करण के बाद दूसरे करण का वर्णन करें ?

उत्तर— बन्धन करण द्वारा जो आत्मा में कर्मों का बन्ध हुआ, उससे जो सुख-दुःख का अनुभव होना था उस कर्म के स्वभाव में आत्मा के अध्यवसायों से जो परिवर्तन आता है उन अध्यवसायों को संक्रमण करण कहते हैं ।

प्रश्न- 195. संक्रमण का परिभाषित अर्थ कहें ?

उत्तर— संक्रमण यानि परिवर्तन होना । सुख का दुःख में, दुःख का सुख में । संक्रमण सदैव अपने ही प्रकृतियों में होता है । साता का असाता में हो सकता है परन्तु वेदनीय का मोहनीय या नामकर्म में नहीं हो सकता । परन्तु दुःख को सुख में और सुख को दुःख में बदला जा सकता है ।

प्रश्न- 196. उदाहरण देकर समझाएँ संक्रमण करण को ?

उत्तर— मान लीजिए किसी व्यक्ति ने रात्रि के समय बारम्बार आ रहे मच्छर से परेशान होकर मच्छर पर जोर से हाथ मारा कि वह मच्छर तड़प-तड़प कर मर गया, उस समय तो बन्धन करण हुआ । उसका परिणाम यह आयेगा कि उसे भी बड़ी बिमारी द्वारा तड़प कर मरना पड़ेगा । यह निश्चित सिद्धान्त है किसी को पीड़ा दी, दुःख दिया उसके परिणाम स्वरूप तुम्हें भी अवश्य दुःख मिलेगा ही । परन्तु उसके पश्चात् मन को बहुत ग्लानि पैदा हुई अरे-रे-

मैंने उसे क्यों मार डाला ? खूब पश्चात्ताप दिल से हुआ मन-तन रोने लगा । इसका परिणाम यह होगा जब कर्म उदय में आयेगा तब अपना प्रभाव बहुत कम दिखायेगा । इतना ही नहीं कर्म बन्ध के बाद अगर उस निमित्त से दान-पुण्य-प्रभु भक्ति की तो वह दुःख, दुःख रूप में न रहकर सुख रूप में परिवर्तित हो जाएगा । दुःख का सुख में बदल जाना संक्रमण करण, सुख का दुःख में बदल जाना वह भी संक्रमण करण ।

प्रश्न- 197. शुभ-अशुभ सुख-दुःख में कैसे परिवर्तित होता है ?

उत्तर- मान लीजिये, परमात्म-भक्ति, गुरु-वैयावच्च, सुपात्रदान, सामायिक-प्रतिक्रमणादि शुभ क्रियाओं से बन्ध करण हुआ उस समय सुख-आदेय-यश की प्राप्ति हो ऐसा कर्म बान्धा परन्तु कर्म बान्धने पर तुरन्त उदय में नहीं आते बीच में (Golden Peried) शान्तिकाल मिलता है । उस शान्तिकाल में अगर किए हुए धर्म कार्यों का पश्चात्ताप कर लिया, परमात्मा की आशातना-गुरुभगवन्तों की निन्दा-धर्मक्रियाओं में अनादर आदि कार्य करने में आ गये तो संक्रमण करण द्वारा शाता-अशाता में- आदेय-अनादेय में- यश-अपयश में बदल जाएगा । इसीलिए तो परमात्मा ने कहा है कि 'समयं गोयम मा पमायए' । इसी रहस्य को उद्घाटित किया है ।

प्रश्न- 198. तीसरे करण की व्याख्या समझाएँ ?

उत्तर- तीसरे करण का नाम है उदीरणा ।

उदीरणा अर्थात् कर्मों को समय से पहले ही उदय में लाने के अध्यवसाय को उदीरणा कहते हैं । आत्मा के उत्तम पुरुषार्थ से ही उदीरणा होती है ।

प्रश्न- 199. किस कर्म की उदीरणा करने का प्रयत्न करना चाहिए ?

उत्तर— जब अपना शरीर अनुकूल हो, सशक्त हो, मन समाधिस्थ रह सकता हो तब दुःखों को, प्रतिकूलताओं को सामने से निमन्त्रण देकर ढेर सारे पापकर्मों की उदीरणा कर लेनी चाहिए । ताकि अपनी अनुकूल परिस्थिति में उदीरणा द्वारा कर्मों का उदय में लाकर पापकर्मों को समताभाव से भोग कर समाप्त कर सकते हैं ।

जैसे भगवान महावीरस्वामीजी ने 12½ वर्ष के साधना काल में 11½ वर्ष से अधिक चौविहार उपवास किए । अब मेरा शरीर स्वस्थ है चलो सामने से पापकर्मों को उदय में लाकर प्रसन्नता से सहन करूँ जिससे नए कर्मों का बन्ध नहीं होगा तथा पुराने कर्म नष्ट हो जाएँगे ।

प्रश्न— 200. भगवान महावीरस्वामीजी ने उदीरणा हेतु कौन-कौन से दुःख सहे ?

उत्तर— 1. लोगों के ना कहने पर भी चण्डकौशिक को तारने के लिए परमात्मा वहाँ गए । डंक की वेदना को सहा ।

2. शूलपाणी यक्ष के, संगम देवता के, ग्वालों के उपसर्गों को समताभाव से सहन किया ।

3. कर्मों की विशेष उदीरणा हेतु अनार्य देश में गए । लोगों ने पत्थर मारे, गालियाँ दी, भयानक दुःखों को जानबूझकर सहन किया । अतः शान्तिकाल (Golden Peried) में प्रभु ने अनेकानेक कर्मों की निर्जरा की ।

प्रश्न— 201. पापकर्मों की उदीरणा के लिए क्या-क्या कार्य करने चाहिए ?

उत्तर— पापकर्मों की उदीरणा के लिए आज से ही शक्यतानुसार तप धर्म की आराधना करें । जीवन को त्याग मय बनाएँ । नंगे पाँव चलकर मन्दिर-उपाश्रय जाएँ । गर्मी-सर्दी को सहन करें । हो सके तो

साधु जीवन स्वीकार करें। तप, त्याग, तितिक्षा (सहनशीलता) मय जीवन जीने की आदत डालें।

प्रश्न- 202. प्रतिकूलता को सहने के ओर कौन-कौन से लाभ हैं ?

उत्तर- प्रतिकूलता को सहने से अनेकों ही लाभ हैं।

1. प्रतिकूलता सहने से पाप कर्म उदीरणा से भोग कर नाश हो जाते हैं।
2. प्रतिकूलता में शक्तियाँ खिल उठती हैं।
3. सत्व प्रगट होता है।
4. सात्विकता बढ़ जाती है।
5. शौर्य प्रगट होता है।
6. जीवन में उल्लास पैदा होता है।

प्रश्न- 203. क्या पुण्य कर्म की भी उदीरणा करनी चाहिए ?

उत्तर- ना ! अगर पुण्य कर्म की उदीरणा करके पुण्य को उदय में नहीं लाएँगे तो बेलेन्स में पड़े पुण्य कर्म शान्तिकाल पूर्ण होते ही उदय में आकर सुख देने वाले ही हैं। अगर जीवन सुखपूर्वक चल रहा है, सभी प्रकार की अनुकूलताएँ हैं तो भविष्य में आने वाले पुण्य को अभी शीघ्र लाने की क्या आवश्यकता है ?

जैसे बैंक में पैसा पड़ा हो आवश्यकता न हो तो पड़ा रहने देना चाहिए, कभी जरूरत पड़े तो उपयोग में ले सकते हैं।

प्रश्न- 204. पुण्य कर्म की उदीरणा कैसे होती है ?

उत्तर- खूब प्रयत्न करके अनुकूलताओं को प्राप्त किया यानि अनुकूलता,



पुण्य की उदीरणा करके प्राप्त की है । एक सब्जी से काम चलता हो तो दूसरी सब्जी की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए । दो जोड़ी वस्त्र से काम चलता हो तो उतने से काम चला लेना चाहिए । सोने के लिए जितनी जगह प्राप्त हुई हो उसमें ही सन्तोष मान लेना चाहिए । अगर फैशन और व्यसनों को जीवन में अग्रिम स्थान दिया । मौज शौक, सौन्दर्य के प्रसाधनों को अधिक महत्त्व दिया तो पुण्य कर्मों की उदीरणा होगी । धीरे-धीरे पुण्य समाप्त होता जाएगा ।

प्रश्न- 205. किन-किन आत्माओं ने उदीरणा कर केवलज्ञान पाया ?

उत्तर-

1. गजसुकुमाल मुनि- प्रभु नेमिनाथजी की आज्ञा लेकर दीक्षा के दिन ही कर्मों को शीघ्र क्षपित करने के लिए श्मशान भूमि में गए । सोमिल ससुर द्वारा सिर पर मिट्टी की पाल बान्धकर अंगारे रखे । उपसर्ग आते ही ध्यान में आगे बढ़े । घाती-अघाती कर्मों का नाश कर उसी दिन मुक्ति को पाए । यह कर्मक्षय उदीरणा से हुआ ।

2. मेतारज मुनि- क्रौंच पक्षी द्वारा यव खाने से सोनी ने पूछा- यव कहाँ गए? क्रौंच पक्षी की रक्षा खातिर चुप रहकर सामने से कष्टों को सहन किया । जोरदार कर्मों की उदीरणा कर मुक्ति को प्राप्त किया ।

झाँझरिया मुनि, खंधक मुनि आदि ।

प्रश्न- 206. उदीरणा करण को जानने से क्या-क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर-

1. प्रतिकूलता आने पर किसी के द्वारा दुःख दिए जाने पर भी मन प्रसन्नतामय बना रहता है ।

2. अनुकूलताओं का आकर्षण बहुत कम हो जाता है ।

3. काम, क्रोध, निन्दा, ईर्ष्या, लालसा आदि दोषों का नाश होता है ।

प्रश्न- 207. चौथे-पाँचवें करण की व्याख्या समझाएँ ?

उत्तर- चौथे करण का नाम उद्वर्तना है । उद्वर्तना का अर्थ है बढ़ना । जब आत्मा में कर्म बन्ध जाते हैं तो कर्मों के स्वभाव में फेरफार संक्रमण करण से हुआ तथा कर्मों के समय में वृद्धि होना । समय की मात्रा बढ़ जाना उद्वर्तना कहलाता है । समय की मात्रा घट जाना पाँचवाँ अपवर्तना करण है ।

जो कर्म 10 वर्ष तक दुःख देने वाले थे । शान्तिकाल में हिसादि के कार्यों में तत्पर रहने से वह कर्म 10 वर्ष के बदले 20 वर्ष तक भी दुःख दे सकता है कर्मों की तीव्रता में भी वृद्धि होती है । कोई बुखार 100 डीग्री तक रहने वाला हो तो उद्वर्तना करण से वह बुखार 5 डीग्री तक भी आ सकता है । सदैव मन में शुभ अध्यवसायों की वृद्धि होनी चाहिये न कि घटौती ।

प्रश्न- 208. उद्वर्तना करण को दृष्टान्त से समझाएँ ?

उत्तर- मान लीजिये आप परमात्मा की पूजा खूब भावों से दो घण्टे लगा कर, करके आये । खूब आनन्द आया । जब घर पर वापिस आये तो पता चला कि ग्राहक आया था, वह राह देख-देख कर चला गया । सौदा जो हो रहा था, वह रह गया तब मन में विचार आ जाए कि मैं जल्दी आ गया होता तो कितना अच्छा होता ! आज क्यों पूजा-भक्ति में इतना समय मैंने लगा दिया ? खूब अफसोस हुआ । तो आप ही कहें कि बान्धे कर्मों में पुण्य बढ़ेगा या पाप । ज्ञानी भगवन्त कहते हैं- अब पुण्य कर्म की तीव्रता में कमी आ जाएगी । पाप वृद्धि होगी ।

आपने तप किया और विशिष्ट प्रभावना न मिले तो तप का पश्चात्ताप

करलें तो पुण्य में न्यूनता आयेगी ।

पाँचवाँ करण यानि अपवर्तना करण । पुण्य में कमी और पाप में वृद्धि होगी ।

संगम ग्वाले ने पूर्वजन्म में खीर का दान देकर उसकी सतत अनुमोदना करते रहने से पुण्य कर्म में खूब वृद्धि हुई परिणाम स्वरूप शालीभद्र बना ।

अतः धर्माराधना के पश्चात् अवश्य बारम्बार अनुमोदन करने में आये तो पुण्य में वृद्धि होगी । पाप करने के पश्चात् शान्तिकाल में पाप की प्रशंसा करने में आये तो पाप की तीव्रता बढ़ जाएगी । अतः सदैव सत्कार्यों की प्रशंसा करने से समय और तीव्रता में वृद्धि होती है । निन्दा और पश्चात्ताप करने से समय-तीव्रता में घटौतरी होती है ।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने अध्यवसायों के बल से ही नरक प्रायोग्य कर्मों को क्षपित कर निर्वाण योग्य बना लिये । पाप कर्मों की अपवर्तना हुई तथा पुण्य कर्मों की उद्वर्तना हुई ।

प्रश्न- 209. निद्धति और निकाचना करण समझाएँ ?

उत्तर- दोनों करण की व्याख्या प्रश्न संख्या 175 में दी जा चुकी है ।

(इस प्रकार कर्म और करण की व्याख्या संक्षेप से सम्पूर्ण हुई ।)

स्वयं सिद्ध बनकर दिया, जन-मानस को ज्ञान ।  
कर्म 'पारदर्शी' करो, बनो वीर भगवान ॥



# संयम पर्याय



शासन-प्रभाविका पंजाबी साध्वीश्री जसवन्तश्रीजी म. सा. की शिष्या

**विदुषी मातृवत्सला साध्वी  
श्री प्रगुणाश्रीजी म. सा.  
का संक्षिप्त मिताक्षरी जीवन-परिचय**

जन्म स्थल	- पट्टी (जिला- अमृतसर) पंजाब
माता का नाम	- श्रीमती गंगादेवी जैन
पिता का नाम	- श्री मथुरादासजी जैन
बचपन का नाम	- सुभाषकुमारी जैन
भाई-बहिनें	- दो भाई, दो बहिनें
दीक्षा	- 17 वर्ष की आयु में माघ शुक्ला 3, दि. 4-2-1965, लुधियाना (पंजाब)
दीक्षादाता गुरु	- पू. बाबा श्री शिवविजयजी, पू. श्री बलवन्तविजयजी म.
बड़ी दीक्षादाता गुरु	- शान्त-तपोमूर्ति, राष्ट्रसन्त प. पू. आ. भ. श्रीमद्विजय समुद्रसूरिजी म. सा., जंडियाला गुरु पंजाब
गुरु का नाम	- शासन-प्रभाविका पंजाबी साध्वी श्री जसवन्तश्रीजी म. सा.
दीक्षा का नाम	- साध्वीश्री प्रगुणाश्रीजी म.

**प्रवचन-प्रभाविका साध्वी  
श्री प्रियधर्माश्रीजी म. सा.  
का संक्षिप्त मिताक्षरी जीवन-परिचय**

जन्म स्थल	- जंडियाला गुरु (जिला- अमृतसर) पंजाब, कार्तिक वदि 4, सन् 1959
माता का नाम	- श्रीमती कमलारानी जैन
पिता का नाम	- श्री किशोरीलालजी जैन
बचपन का नाम	- नूतन जैन
भाई-बहिनें	- एक भाई, चार बहिनें
दीक्षा	- 15 वर्ष की अल्पवय में मगसर वदि 4, सन् 1974, भायखला-मुम्बई
दीक्षादाता गुरु	- पू. श्री नेमीसूरिजी म. के समुदाय-वर्ती पू. श्री देवसूरिजी म. सा.
बड़ी दीक्षादाता गुरु	- पू. श्री मेकप्रभसूरिजी म. सा. भायखला-मुम्बई
दीक्षा का नाम	- साध्वीश्री प्रियधर्माश्रीजी म.

**स्वाध्याय-** प्रकरण-भाष्य, कर्मग्रन्थ, कम्म पयड़ी, क्षेत्र समास, बृहत् संग्रहणी, योग शास्त्र, षट्-दर्शन समुच्चय, स्याद्वाद मंजरी, न्याय के ग्रन्थ, उत्तराध्ययन, विशेषावश्यक-भाष्य, सम्यक्त्व संप्रति टीका, पंच सूत्र सटीक, पू. श्री हरिभद्रसूरिजी म. द्वारा रचित सभी योग ग्रन्थ-योगविंशति, योग शतक, योग दृष्टि समुच्चय, योग बिन्दु, षोडशक प्रकरण, अध्यात्म कल्पद्रुम, प्रशमरति, ज्ञानसार आदि तथा महोपाध्याय पू. श्री यशोविजयजी म. द्वारा रचित विशिष्ट ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया।

**विचरण क्षेत्र-** पंजाब, राजस्थान, मारवाड़, गोडवाल, यू. पी., गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, मेवाड़ आदि।